AA Jhgfj AA

Hkkxor egkijk.k

¼ Hkkx&nk ½

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	नवम स्कन्ध	
१	वैवस्वत मनुके पुत्र राजा सुद्युम्नकी कथा	१
२	पृषध्र आदि मनुके पाँच पुत्रोंका वंश	५
३	महर्षि च्यवन और सुकन्याका चरित्र, राजा शर्यातिका वंश	९
४	नाभाग और अम्बरीषकी कथा	१२
५	दुर्वासाजीकी दुःखनिवृत्ति	२०
६	इक्ष्वाकुके वंशका वर्णन, मान्धाता और सौभरि ऋषिकी कथा	२३
७	राजा त्रिशंकु और हरिश्चन्द्रकी कथा	२९
८	सगर-चरित्र	३२
९	भगीरथ-चरित्र और गंगावतरण	३५
१०	भगवान् श्रीरामकी लीलाओंका वर्णन	४०
११	भगवान् श्रीरामकी शेष लीलाओंका वर्णन	४७
१२	इक्ष्वाकुवंशके शेष राजाओंका वर्णन	५१
१३	राजा निमिके वंशका वर्णन	५३
१४	चन्द्रवंशका वर्णन	५५
१५	ऋचीक, जमदग्नि और परशुरामजीका चरित्र	६०
१६	परशुरामजीके द्वारा क्षत्रिय-संहार और विश्वामित्रजीके वंशकी कथा	६५
१७	क्षत्रवृद्ध, रजि आदि राजाओंके वंशका वर्णन	६९
१८	ययाति-चरित्र	७१
१९	ययातिका गृहत्याग	७६
२०	पूरुके वंश, राजा दुष्यन्त और भरतके चरित्रका वर्णन	७९
२१	भरतवंशका वर्णन, राजा रन्तिदेवकी कथा	८३
२२	पांचाल, कौरव और मगधदेशीय राजाओंके वंशका वर्णन	८७
२३	अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु और यदुके वंशका वर्णन	९२
२४	विदर्भके वंशका वर्णन	९५
	दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध)	
१	भगवान्‌के द्वारा पृथ्वीको आश्वासन, वसुदेव-देवकीका विवाह और कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रोंकी हत्या	१०३
२	भगवान्‌का गर्भ-प्रवेश और देवताओंद्वारा गर्भस्तुति	११०
३	भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य	११६
४	कंसके हाथसे छूटकर योगमायाका आकाशमें जाकर भविष्यवाणी करना	१२६
५	गोकुलमें भगवान्‌का जन्ममहोत्सव	१३०
६	पूतना-उद्धार	१३४
७	शकट-भंजन और तृणावर्त-उद्धार	१४०
८	नामकरण-संस्कार और बाललीला	१४५
९	श्रीकृष्णका ऊखलसे बाँधा जाना	१५८
१०	यमलार्जुनका उद्धार	१६५
११	गोकुलसे वृन्दावन जाना तथा वत्सासुर और बकासुरका उद्धार	१७०
१२	अघासुरका उद्धार	१७६
१३	ब्रह्माजीका मोह और उसका नाश	१८१
१४	ब्रह्माजीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति	१८९
१५	धेनुकासुरका उद्धार और ग्वालबालोंको कालियनागके विषसे बचाना	१९७
१६	कालियपर कृपा	२०३
१७	कालियके कालियदहमें आनेकी कथा तथा भगवान्‌का व्रजवासियोंको दावानलसे बचाना	२११
१८	प्रलम्बासुर-उद्धार	२१४
१९	गौओं और गोपोंको दावानलसे बचाना	२१८
२०	वर्षा और शरद्ऋतुका वर्णन	२२०
२१	वेणुगीत	२२५
२२	चीरहरण	२२९
२३	यज्ञपत्नियोंपर कृपा	२३७
२४	इन्द्रयज्ञ-निवारण	२४३
२५	गोवर्धनधारण	२४७
२६	नन्दबाबासे गोपोंकी श्रीकृष्णके प्रभावके विषयमें बातचीत	२५१
२७	श्रीकृष्णका अभिषेक	२५४
२८	वरुणलोकसे नन्दजीको छुड़ाकर लाना	२५७
२९	रासलीलाका आरम्भ	२५९

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
३०-	श्रीकृष्णके विरहमें गोपियोंकी दशा	२६६
३१-	गोपिकागीत	२७१
३२-	भगवान्‌का प्रकट होकर गोपियोंको सान्त्वना देना	२७४
३३-	महारास	२७८
३४-	सुदर्शन और शंखचूडका उद्धार	२९१
३५-	युगलगीत	२९४
३६-	अरिष्टासुरका उद्धार और कंसका श्रीअक्रूरजीको व्रजमें भेजना	२९९
३७-	केशी और व्योमासुरका उद्धार तथा नारदजीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति	३०३
३८-	अक्रूरजीकी व्रजयात्रा	३०७
३९-	श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरागमन	३१२
४०-	अक्रूरजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति	३१९
४१-	श्रीकृष्णका मथुराजीमें प्रवेश	३२३
४२-	कुब्जापर कृपा, धनुषभंग और कंसकी घबड़ाहट	३२९
४३-	कुवलयापीडका उद्धार और अखाड़ेमें प्रवेश	३३३
४४-	चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानोंका तथा कंसका उद्धार	३३७
४५-	श्रीकृष्ण-बलरामका यज्ञोपवीत और गुरुकुल-प्रवेश	३४३
४६-	उद्धवजीकी व्रजयात्रा	३४९
४७-	उद्धव तथा गोपियोंकी बातचीत और भ्रमरगीत	३५४
४८-	भगवान्‌का कुब्जा और अक्रूरजीके घर जाना	३६५
४९-	अक्रूरजीका हस्तिनापुर जाना	३६९

दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध)

५०-	जरासन्धसे युद्ध और द्वारकापुरीका निर्माण	३७३
५१-	कालयवनका भस्म होना, मुचुकुन्दकी कथा	३७९
५२-	द्वारकागमन, श्रीबलरामजीका विवाह तथा श्रीकृष्णके पास रुक्मिणीजीका सन्देशा लेकर ब्राह्मणका आना	३८७
५३-	रुक्मिणीहरण	३९२
५४-	शिशुपालके साथी राजाओंकी और रुक्मीकी हार तथा श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह	३९८
५५-	प्रद्युम्नका जन्म और शम्बरासुरका वध	४०४
५६-	स्यमन्तकमणिकी कथा, जाम्बवती और सत्यभामाके साथ श्रीकृष्णका विवाह	४०८
५७-	स्यमन्तक-हरण, शतधन्वाका उद्धार और अक्रूरजीको फिरसे द्वारका बुलाना	४१२
५८-	भगवान् श्रीकृष्णके अन्यान्य विवाहोंकी कथा	४१७
५९-	भौमासुरका उद्धार और सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंके साथ भगवान्‌का विवाह	४२३
६०-	श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-संवाद	४२९
६१-	भगवान्‌की सन्ततिका वर्णन तथा अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका मारा जाना	४३७
६२-	ऊषा-अनिरुद्ध-मिलन	४४२
६३-	भगवान् श्रीकृष्णके साथ बाणासुरका युद्ध	४४६
६४-	नृग राजाकी कथा	४५२
६५-	श्रीबलरामजीका व्रजगमन	४५७
६६-	पौण्ड्रक और काशिराजका उद्धार	४६०
६७-	द्विविदका उद्धार	४६५
६८-	कौरवोंपर बलरामजीका कोप और साम्बका विवाह	४६८
६९-	देवर्षि नारदजीका भगवान्‌की गृहचर्या देखना	४७३
७०-	भगवान् श्रीकृष्णकी नित्यचर्या और उनके पास जरासन्धके कैदी राजाओंके दूतका आना	४७८
७१-	श्रीकृष्णभगवान्‌का इन्द्रप्रस्थ पधारना	४८४
७२-	पाण्डवोंके राजसूययज्ञका आयोजन और जरासन्धका उद्धार	४९०
७३-	जरासन्धके जेलसे छूटे हुए राजाओंकी विदाई और भगवान्‌का इन्द्रप्रस्थ लौट आना	४९५
७४-	भगवान्‌की अग्रपूजा और शिशुपालका उद्धार	४९९
७५-	राजसूययज्ञकी पूर्ति और दुर्योधनका अपमान	५०४
७६-	शाल्वके साथ यादवोंका युद्ध	५०९
७७-	शाल्व-उद्धार	५१२
७८-	दन्तवक्त्र और विदूरथका उद्धार तथा तीर्थ-यात्रामें बलरामजीके हाथसे सूतजीका वध	५१६
७९-	बल्वलका उद्धार और बलरामजीकी तीर्थयात्रा	५२०
८०-	श्रीकृष्णके द्वारा सुदामाजीका स्वागत	५२४
८१-	सुदामाजीको ऐश्वर्यकी प्राप्ति	५२९
८२-	भगवान् श्रीकृष्ण-बलरामसे गोप-गोपियोंकी भेंट	५३३
८३-	भगवान्‌की पटरानियोंके साथ द्रौपदीकी बातचीत	५३९
८४-	वसुदेवजीका यज्ञोत्सव	५४४
८५-	श्रीभगवान्‌के द्वारा वसुदेवजीको ब्रह्मज्ञानका उपदेश तथा देवकीजीके छः पुत्रोंको लौटा लाना	५५२
८६-	सुभद्राहरण और भगवान्‌का मिथिलापुरीमें राजा जनक और श्रुतदेव ब्राह्मणके घर एक ही साथ जाना	५५९

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
८७	वेदस्तुति	५६५
८८	शिवजीका संकटमोचन	५८१
८९	भृगुजीके द्वारा त्रिदेवोंकी परीक्षा तथा भगवान्‌का मरे हुए ब्राह्मण-बालकोंको वापस लाना	५८६
९०	भगवान् कृष्णके लीला-विहारका वर्णन	५९३

एकादश स्कन्ध

१	यदुवंशको ऋषियोंका शाप	६०१
२	वसुदेवजीके पास श्रीनारदजीका आना और उन्हें राजा जनक तथा नौ योगीश्वरोंका संवाद सुनाना	६०४
३	माया, मायासे पार होनेके उपाय तथा ब्रह्म और कर्मयोगका निरूपण	६११
४	भगवान्‌के अवतारोंका वर्णन	६१९
५	भक्तिहीन पुरुषोंकी गति और भगवान्‌की पूजाविधिका वर्णन	६२३
६	देवताओंकी भगवान्‌से स्वधाम सिधारनेके लिये प्रार्थना तथा यादवोंको प्रभासक्षेत्र जानेकी तैयारी करते देखकर उद्धवका भगवान्‌के पास आना	६२९
७	अवधूतोपाख्यान—पृथ्वीसे लेकर कबूतरतक आठ गुरुओंकी कथा	६३६
८	अवधूतोपाख्यान—अजगरसे लेकर पिंगलातक नौ गुरुओंकी कथा	६४५
९	अवधूतोपाख्यान—कुररसे लेकर भृंगीतक सात गुरुओंकी कथा	६५०
१०	लौकिक तथा पारलौकिक भोगोंकी असारताका निरूपण	६५४
११	बद्ध, मुक्त और भक्तजनोंके लक्षण	६६०
१२	सत्संगकी महिमा और कर्म तथा कर्मत्यागकी विधि	६६५
१३	हंसरूपसे सनकादिको दिये हुए उपदेशका वर्णन	६६९
१४	भक्तियोगकी महिमा तथा ध्यानविधिका वर्णन	६७४
१५	भिन्न-भिन्न सिद्धियोंके नाम और लक्षण	६८०
१६	भगवान्‌की विभूतियोंका वर्णन	६८४
१७	वर्णाश्रम-धर्म-निरूपण	६८८
१८	वानप्रस्थ और संन्यासीके धर्म	६९५
१९	भक्ति, ज्ञान और यम-नियमादि साधनोंका वर्णन	७००
२०	ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग	७०५
२१	गुण-दोष-व्यवस्थाका स्वरूप और रहस्य	७१०
२२	तत्त्वोंकी संख्या और पुरुष-प्रकृति-विवेक	७१५
२३	एक तितिक्षु ब्राह्मणका इतिहास	७२३
२४	सांख्ययोग	७३०
२५	तीनों गुणोंकी वृत्तियोंका निरूपण	७३३
२६	पुरूरवाकी वैराग्योक्ति	७३७
२७	क्रियायोगका वर्णन	७४१
२८	परमार्थनिरूपण	७४७
२९	भागवत-धर्मोंका निरूपण और उद्धवजीका बदरिकाश्रमगमन	७५४
३०	यदुकुलका संहार	७६०
३१	श्रीभगवान्‌का स्वधामगमन	७६५

द्वादश स्कन्ध

१	कलियुगके राजवंशोंका वर्णन	७६९
२	कलियुगके धर्म	७७३
३	राज्य, युगधर्म और कलियुगके दोषोंसे बचनेका उपाय—नामसंकीर्तन	७७८
४	चार प्रकारके प्रलय	७८४
५	श्रीशुकदेवजीका अन्तिम उपदेश	७८९
६	परीक्षित्‌की परमगति, जनमेजयका सर्पसत्र और वेदोंके शाखाभेद	७९१
७	अथर्ववेदकी शाखाएँ और पुराणोंके लक्षण	८००
८	मार्कण्डेयजीकी तपस्या और वर-प्राप्ति	८०३
९	मार्कण्डेयजीका माया-दर्शन	८१०
१०	मार्कण्डेयजीको भगवान् शंकरका वरदान	८१४
११	भगवान्‌के अंग, उपांग और आयुधोंका रहस्य तथा विभिन्न सूर्यगणोंका वर्णन	८१९
१२	श्रीमद्भागवतकी संक्षिप्त विषय-सूची	८२४
१३	विभिन्न पुराणोंकी श्लोक-संख्या और श्रीमद्भागवतकी महिमा	८३१

श्रीमद्भागवतमाहात्म्य

१	परीक्षित् और वज्रनाभका समागम, शाण्डिल्य मुनिके मुखसे भगवान्‌की लीलाके रहस्य और व्रजभूमिके महत्त्वका वर्णन	८३५
२	यमुना और श्रीकृष्णपत्नियोंका संवाद, कीर्तनोत्सवमें उद्धवजीका प्रकट होना	८३९
३	श्रीमद्भागवतकी परम्परा और उसका माहात्म्य, भागवत-श्रवणसे श्रोताओंको भगवद्धामकी प्राप्ति	८४३
४	श्रीमद्भागवतका स्वरूप, प्रमाण, श्रोता-वक्ताके लक्षण, श्रवणविधि और माहात्म्य	८५०
५	श्रीमद्भागवतमें विशुद्ध भक्ति	८६७

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमद्भागवतकी आरती

आरति अतिपावन पुरानकी ।
धर्म-भक्ति-विज्ञान-खानकी ॥
महापुरान भागवत निरमल ।
शुक-मुख-विगलित निगम-कल्प-फल ।
परमानन्द-सुधा-रसमय कल ।
लीला-रति-रस रस-निधानकी ॥आ०
कलि-मल-मथनि त्रिताप-निवारिनि ।
जन्म-मृत्युमय भव-भय-हारिनि ।
सेवत सतत सकल सुखकारिनि ।
सुमहौषधि हरि-चरित-गानकी ॥आ०
विषय-विलास-विमोह-विनाशिनि ।
विमल विराग विवेक विकाशिनि ।
भगवत्तत्त्व-रहस्य प्रकाशिनि ।
परम ज्योति परमात्म-ज्ञानकी ॥आ०
परमहंस-मुनि-मन उल्लासिनि ।
रसिक-हृदय रस-रास-विलासिनि ।
भुक्ति, मुक्ति, रतिप्रेम-सुदासिनि ।
कथा अकिञ्चनप्रिय सुजानकी ॥आ०

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

नवमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

वैवस्वत मनुके पुत्र राजा सुद्युम्नकी कथा

राजोवाच

मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च॥ १

योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः।
ज्ञानं योऽतीतकल्पान्ते लेभे पुरुषसेवया॥ २

स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम्।
त्वत्तस्तस्य सुताश्चोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः॥ ३

तेषां वंशं पृथग् ब्रह्मन् वंश्यानुचरितानि[1] च।
कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः॥ ४

ये भूता ये भविष्याश्च भवन्त्यद्यतनाश्च ये।
तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषां वद[2] विक्रमान्॥ ५

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! आपने सब मन्वन्तरों और उनमें अनन्त शक्तिशाली भगवान्‌के द्वारा किये हुए ऐश्वर्यपूर्ण चरित्रोंका वर्णन किया और मैंने उनका श्रवण भी किया॥ १॥ आपने कहा कि पिछले कल्पके अन्तमें द्रविड़ देशके स्वामी राजर्षि सत्यव्रतने भगवान्‌की सेवासे ज्ञान प्राप्त किया और वही इस कल्पमें वैवस्वत मनु हुए। आपने उनके इक्ष्वाकु आदि नरपति पुत्रोंका भी वर्णन किया॥ २-३॥ ब्रह्मन्! अब आप कृपा करके उनके वंश और वंशमें होनेवालोंका अलग-अलग चरित्र वर्णन कीजिये। महाभाग! हमारे हृदयमें सर्वदा ही कथा सुननेकी उत्सुकता बनी रहती है॥ ४॥ वैवस्वत मनुके वंशमें जो हो चुके हों, इस समय विद्यमान हों और आगे होनेवाले हों—उन सब पवित्रकीर्ति पुरुषोंके पराक्रमका वर्णन कीजिये॥ ५॥

सूत उवाच

एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम्।
पृष्टः प्रोवाच भगवाञ्छुकः परमधर्मवित्॥ ६

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! ब्रह्मवादी ऋषियोंकी सभामें राजा परीक्षित्‌ने जब यह प्रश्न किया, तब धर्मके परम मर्मज्ञ भगवान् श्रीशुकदेवजीने कहा॥ ६॥

श्रीशुक उवाच

श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतप।
न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि॥ ७

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! तुम मनुवंशका वर्णन संक्षेपसे सुनो। विस्तारसे तो सैकड़ों वर्षमें भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ७॥

---

१. वंश्यादिचरि०। २. त्वमनुक्रमात्।

परावरेषां भूतानामात्मा[1] यः पुरुषः परः ।
स एवासीदिदं विश्वं कल्पान्तेऽन्यन्न किञ्चन ॥ ८

जो परम पुरुष परमात्मा छोटे-बड़े सभी प्राणियोंके आत्मा हैं, प्रलयके समय केवल वही थे; यह विश्व तथा और कुछ भी नहीं था ॥ ८ ॥

तस्य नाभेः समभवत् पद्मकोशो हिरण्मयः ।
तस्मिञ्जज्ञे महाराज स्वयंभूश्चतुराननः ॥ ९

महाराज ! उनकी नाभिसे एक सुवर्णमय कमलकोष प्रकट हुआ। उसीमें चतुर्मुख ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ ॥ ९ ॥

मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः ।
दाक्षायण्यां ततोऽदित्यां विवस्वानभवत् सुतः ॥ १०

ब्रह्माजीके मनसे मरीचि और मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। उनकी धर्मपत्नी दक्षनन्दिनी अदितिसे विवस्वान् (सूर्य) का जन्म हुआ ॥ १० ॥

ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत ।
श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान् स आत्मवान् ॥ ११

विवस्वान्की संज्ञा नामक पत्नीसे श्राद्धदेव मनुका जन्म हुआ। परीक्षित् ! परम मनस्वी राजा श्राद्धदेवने अपनी पत्नी श्रद्धाके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम थे—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि ॥ ११-१२ ॥

इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् ।
नरिष्यन्तं पृषध्रं[2] च नभगं च कविं विभुः ॥ १२

अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठो भगवान् किल ।
मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत् प्रभुः ॥ १३

वैवस्वत मनु पहले सन्तानहीन थे। उस समय सर्वसमर्थ भगवान् वसिष्ठने उन्हें सन्तान-प्राप्ति करानेके लिये मित्रावरुणका यज्ञ कराया था ॥ १३ ॥ यज्ञके आरम्भमें केवल दूध पीकर रहनेवाली वैवस्वत मनुकी धर्मपत्नी श्रद्धाने अपने होताके पास जाकर प्रणामपूर्वक

तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत ।
दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥ १४

याचना की कि मुझे कन्या ही प्राप्त हो ॥ १४ ॥ तब अध्वर्युकी प्रेरणासे होता बने हुए ब्राह्मणने श्रद्धाके कथनका स्मरण करके एकाग्र चित्तसे वषट्कारका उच्चारण करते हुए यज्ञकुण्डमें आहुति दी ॥ १५ ॥ जब होताने इस

प्रेषितोऽध्वर्युणा होता ध्यायंस्तत् सुसमाहितः ।
हविषि[3] व्यचरत् तेन वषट्कारं गृणन्द्विजः ॥ १५

होतुस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम साभवत् ।
तां विलोक्य मनुः प्राह नातिहृष्टमना गुरुम् ॥ १६

प्रकार विपरीत कर्म किया, तब यज्ञके फलस्वरूप पुत्रके स्थानपर इला नामकी कन्या हुई। उसे देखकर श्राद्धदेव मनुका मन कुछ विशेष प्रसन्न नहीं हुआ। उन्होंने अपने गुरु वसिष्ठजीसे कहा— ॥ १६ ॥ 'भगवन् ! आपलोग

भगवन् किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम् ।
विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद् ब्रह्मविक्रिया ॥ १७

तो ब्रह्मवादी हैं, आपका कर्म इस प्रकार विपरीत फल देनेवाला कैसे हो गया ? अरे, यह तो बड़े दुःखकी बात है। वैदिक कर्मका ऐसा विपरीत फल तो कभी नहीं होना चाहिये ॥ १७ ॥ आप लोगोंका मन्त्रज्ञान तो पूर्ण है ही; इसके अतिरिक्त आपलोग जितेन्द्रिय भी हैं तथा

यूयं मन्त्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ।
कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥ १८

तपस्याके कारण निष्पाप हो चुके हैं। देवताओंमें असत्यकी प्राप्तिके समान आपके संकल्पका यह उलटा फल कैसे हुआ ?' ॥ १८ ॥

---

१. मात्मैष पु० । २. पृथुं वस्वं नाभागं । ३. गृहीते हविषि वाचं वष० ।

तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान् प्रपितामहः ।
होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे रविनन्दनम् ॥ १९

एतत् संकल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः ।
तथापि साधयिष्ये ते सुप्रजास्त्वं स्वतेजसा ॥ २०

एवं व्यवसितो राजन् भगवान् स महायशाः ।
अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥ २१

तस्मै कामवरं[1] तुष्टो भगवान् हरिरीश्वरः ।
ददाविलाभवत् तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥ २२

स एकदा महाराज विचरन् मृगयां वने ।
वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य[2] सैन्धवम् ॥ २३

प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् ।
दंशितोऽनुमृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २४

स कुमारो वनं मेरोरधस्तात् प्रविवेश ह ।
यत्रास्ते भगवाञ्छर्वो रममाणः सहोमया ॥ २५

तस्मिन् प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा ।
अपश्यत् स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप ॥ २६

तथा तदनुगाः सर्वे आत्मलिङ्गविपर्ययम् ।
दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन् वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ २७

राजोवाच

कथमेवंगुणो देशः केन वा भगवन् कृतः ।
प्रश्नमेनं समाचक्ष्व परं कौतूहलं हि नः ॥ २८

परीक्षित् ! हमारे वृद्धप्रपितामह भगवान् वसिष्ठने उनकी यह बात सुनकर जान लिया कि होताने विपरीत संकल्प किया है। इसलिये उन्होंने वैवस्वत मनुसे कहा— ॥ १९ ॥ 'राजन् ! तुम्हारे होताके विपरीत संकल्पसे ही हमारा संकल्प ठीक-ठीक पूरा नहीं हुआ। फिर भी अपने तपके प्रभावसे मैं तुम्हें श्रेष्ठ पुत्र दूँगा' ॥ २० ॥

परीक्षित् ! परम यशस्वी भगवान् वसिष्ठने ऐसा निश्चय करके उस इला नामकी कन्याको ही पुरुष बना देनेके लिये पुरुषोत्तम भगवान् नारायणकी स्तुति की ॥ २१ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरिने सन्तुष्ट होकर उन्हें मुँहमाँगा वर दिया, जिसके प्रभावसे वह कन्या ही सुद्युम्न नामक श्रेष्ठ पुत्र बन गयी ॥ २२ ॥

महाराज ! एक बार राजा सुद्युम्न शिकार खेलनेके लिये सिन्धुदेशके घोड़ेपर सवार होकर कुछ मन्त्रियोंके साथ वनमें गये ॥ २३ ॥ वीर सुद्युम्न कवच पहनकर और हाथमें सुन्दर धनुष एवं अत्यन्त अद्भुत बाण लेकर हरिनोंका पीछा करते हुए उत्तर दिशामें बहुत आगे बढ़ गये ॥ २४ ॥ अन्तमें सुद्युम्न मेरुपर्वतकी तलहटीके एक वनमें चले गये। उस वनमें भगवान् शङ्कर पार्वतीके साथ विहार करते रहते हैं ॥ २५ ॥ उसमें प्रवेश करते ही वीरवर सुद्युम्नने देखा कि मैं स्त्री हो गया हूँ और घोड़ा घोड़ी हो गया है ॥ २६ ॥ परीक्षित् ! साथ ही उनके सब अनुचरोंने भी अपनेको स्त्रीरूपमें देखा। वे सब एक-दूसरेका मुँह देखने लगे, उनका चित्त बहुत उदास हो गया ॥ २७ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन् ! उस भूखण्डमें ऐसा विचित्र गुण कैसे आ गया ? किसने उसे ऐसा बना दिया था ? आप कृपा कर हमारे इस प्रश्नका उत्तर दीजिये; क्योंकि हमें बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥ २८ ॥

---

१. काम्य० । २. रथ० ।

श्रीशुक उवाच

एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः ।
दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन् ॥ २९

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! एक दिन भगवान् शङ्करका दर्शन करनेके लिये बड़े-बड़े व्रतधारी ऋषि अपने तेजसे दिशाओंका अन्धकार मिटाते हुए उस वनमें गये ॥ २९ ॥ उस समय अम्बिका देवी वस्त्रहीन थीं। ऋषियोंको सहसा आया देख वे अत्यन्त लज्जित हो गयीं। झटपट उन्होंने भगवान् शङ्करकी गोदसे उठकर वस्त्र धारण कर लिया ॥ ३० ॥

तान् विलोक्याम्बिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् ।
भर्तुरङ्कात् समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥ ३०

ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसङ्गं रममाणयोः ।
निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥ ३१

ऋषियोंने भी देखा कि भगवान् गौरी-शङ्कर इस समय विहार कर रहे हैं, इसलिये वहाँसे लौटकर वे भगवान् नर-नारायणके आश्रमपर चले गये ॥ ३१ ॥ उसी समय भगवान् शङ्करने अपनी प्रिया भगवती अम्बिकाको प्रसन्न करनेके लिये कहा कि 'मेरे सिवा जो भी पुरुष इस स्थानमें प्रवेश करेगा, वही स्त्री हो जायेगा' ॥ ३२ ॥ परीक्षित्! तभीसे पुरुष उस स्थानमें प्रवेश नहीं करते। अब सुद्युम्न स्त्री हो गये थे। इसलिये वे अपने स्त्री बने हुए अनुचरोंके साथ एक वनसे दूसरे वनमें विचरने लगे ॥ ३३ ॥

तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ।
स्थानं यः प्रविशेदेतत् स वै योषिद् भवेदिति ॥ ३२

तत ऊर्ध्वं वनं तद् वै पुरुषा वर्जयन्ति हि ।
सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद् वनम् ॥ ३३

अथ तामाश्रमाभ्याशे चरन्तीं प्रमदोत्तमाम् ।
स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान् बुधः ॥ ३४

उसी समय शक्तिशाली बुधने देखा कि मेरे आश्रमके पास ही बहुत-सी स्त्रियोंसे घिरी हुई एक सुन्दरी स्त्री विचर रही है। उन्होंने इच्छा की कि यह मुझे प्राप्त हो जाय ॥ ३४ ॥ उस सुन्दरी स्त्रीने भी चन्द्रकुमार बुधको पति बनाना चाहा। इसपर बुधने उसके गर्भसे पुरूरवा नामका पुत्र उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥ इस प्रकार मनुपुत्र राजा सुद्युम्न स्त्री हो गये। ऐसा सुनते हैं कि उन्होंने उस अवस्थामें अपने कुलपुरोहित वसिष्ठजीका स्मरण किया ॥ ३६ ॥

सापि तं चकमे सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम् ।
स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥ ३५

एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः ।
सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठमिति शुश्रुम ॥ ३६

सुद्युम्नकी यह दशा देखकर वसिष्ठजीके हृदयमें कृपावश अत्यन्त पीड़ा हुई। उन्होंने सुद्युम्नको पुनः पुरुष बना देनेके लिये भगवान् शङ्करकी आराधना की ॥ ३७ ॥ भगवान् शङ्कर वसिष्ठजीपर प्रसन्न हुए। परीक्षित्! उन्होंने उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये अपनी वाणीको सत्य रखते हुए ही यह बात कही— ॥ ३८ ॥

स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृशपीडितः ।
सुद्युम्नस्याशयन् पुंस्त्वमुपाधावत शङ्करम् ॥ ३७

तुष्टस्तस्मै स भगवानृषये प्रियमावहन् ।
स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशाम्पते ॥ ३८

मासं पुमान् स भविता मासं[1] स्त्री तव गोत्रजः ।
इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम् ॥ ३९

'वसिष्ठ ! तुम्हारा यह यजमान एक महीनेतक पुरुष रहेगा और एक महीनेतक स्त्री। इस व्यवस्थासे सुद्युम्न इच्छानुसार पृथ्वीका पालन करे' ॥ ३९ ॥

आचार्यानुग्रहात् कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ।
पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दन् स्म तं प्रजाः ॥ ४०

इस प्रकार वसिष्ठजीके अनुग्रहसे व्यवस्थापूर्वक अभीष्ट पुरुषत्व लाभ करके सुद्युम्न पृथ्वीका पालन करने लगे। परंतु प्रजा उनका अभिनन्दन नहीं करती थी ॥ ४० ॥

तस्योत्कलो गयो राजन् विमलश्च सुतास्त्रयः ।
दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः ॥ ४१

उनके तीन पुत्र हुए—उत्कल, गय और विमल। परीक्षित् ! वे सब दक्षिणापथके राजा हुए ॥ ४१ ॥

ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः ।
पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥ ४२

बहुत दिनोंके बाद वृद्धावस्था आनेपर प्रतिष्ठान नगरीके अधिपति सुद्युम्नने अपने पुत्र पुरूरवाको राज्य दे दिया और स्वयं तपस्या करनेके लिये वनकी यात्रा की ॥ ४२ ॥

—★—

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे इलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

—★—

अथ द्वितीयोऽध्यायः

पृषध्र, आदि मनुके पाँच पुत्रोंका वंश

श्रीशुक उवाच

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार जब सुद्युम्न तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये, तब वैवस्वत मनुने पुत्रकी कामनासे यमुनाके तटपर सौ वर्षतक तपस्या की ॥ १ ॥ इसके बाद उन्होंने सन्तानके लिये सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरिकी आराधना की और अपने ही समान दस पुत्र प्राप्त किये, जिनमें सबसे बड़े इक्ष्वाकु थे ॥ २ ॥

एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते ।
पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥ १

ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम् ।
इक्ष्वाकुपूर्वजान् पुत्राँल्लेभे स्वसदृशान् दश ॥ २

उन मनुपुत्रोंमेंसे एकका नाम था पृषध्र। गुरु वसिष्ठजीने उसे गायोंकी रक्षामें नियुक्त कर रखा था, अतः वह रात्रिके समय बड़ी सावधानीसे वीरासनसे बैठा रहता और गायोंकी रक्षा करता ॥ ३ ॥ एक दिन रातमें वर्षा हो रही थी। उस समय गायोंके झुंडमें एक बाघ घुस आया। उससे डरकर सोयी हुई गौएँ उठ खड़ी हुईं। वे गोशालामें ही इधर-उधर भागने लगीं ॥ ४ ॥

पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ।
पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥ ३

एकदा प्राविशद् गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति ।
शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥ ४

---

१. स्त्री मासं ।

एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भयातुरा ।
तस्यास्तत् क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह ॥ ५

खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि ।
अजानन्नहनद् बभ्रोः शिरः शार्दूलशङ्कया ॥ ६

व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाग्राहतस्ततः[1] ।
निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन् ॥ ७

मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा ।
अद्राक्षीत् स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥ ८

तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसमकामतः ।
न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भवितामुना ॥ ९

एवं शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात् कृताञ्जलिः ।
अधारयद् व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥ १०

वासुदेवे भगवति सर्वात्मनि परेऽमले ।
एकान्तित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत् समः ॥ ११

विमुक्तसङ्गः शान्तात्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः ।
यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन् वृत्तिमात्मनः ॥ १२

आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः[2] समाहितः ।
विचचार महीमेतां जडान्धबधिराकृतिः ॥ १३

एवंवृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम् ।
तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥ १४

कविः कनीयान् विषयेषु निःस्पृहो
विसृज्य राज्यं सह बन्धुभिर्वनम् ।

बलवान् बाघने एक गायको पकड़ लिया । वह अत्यन्त भयभीत होकर चिल्लाने लगी । उसका वह क्रन्दन सुनकर पृषध्र गायके पास दौड़ आया ॥ ५ ॥ एक तो रातका समय और दूसरे घनघोर घटाओंसे आच्छादित होनेके कारण तारे भी नहीं दीखते थे। उसने हाथमें तलवार उठाकर अनजानमें ही बड़े वेगसे गायका सिर काट दिया । वह समझ रहा था कि यही बाघ है ॥ ६ ॥ तलवारकी नोकसे बाघका भी कान कट गया, वह अत्यन्त भयभीत होकर रास्तेमें खून गिराता हुआ वहाँसे निकल भागा ॥ ७ ॥ शत्रुदमन पृषध्रने यह समझा कि बाघ मर गया । परंतु रात बीतनेपर उसने देखा कि मैंने तो गायको ही मार डाला है, इससे उसे बड़ा दुःख हुआ ॥ ८ ॥ यद्यपि पृषध्रने जान-बूझकर अपराध नहीं किया था, फिर भी कुलपुरोहित वसिष्ठजीने उसे शाप दिया कि 'तुम इस कर्मसे क्षत्रिय नहीं रहोगे; जाओ, शूद्र हो जाओ' ॥ ९ ॥ पृषध्रने अपने गुरुदेवका यह शाप अञ्जलि बाँधकर स्वीकार किया और इसके बाद सदाके लिये मुनियोंको प्रिय लगनेवाले नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-व्रतको धारण किया ॥ १० ॥ वह समस्त प्राणियोंका अहैतुक हितैषी एवं सबके प्रति समान भावसे युक्त होकर भक्तिके द्वारा परम विशुद्ध सर्वात्मा भगवान् वासुदेवका अनन्य प्रेमी हो गया ॥ ११ ॥ उसकी सारी आसक्तियाँ मिट गयीं । वृत्तियाँ शान्त हो गयीं । इन्द्रियाँ वशमें हो गयीं । वह कभी किसी प्रकारका संग्रह-परिग्रह नहीं रखता था । जो कुछ दैववश प्राप्त हो जाता, उसीसे अपना जीवन-निर्वाह कर लेता ॥ १२ ॥ वह आत्मज्ञानसे सन्तुष्ट एवं अपने चित्तको परमात्मामें स्थित करके प्रायः समाधिस्थ रहता । कभी-कभी जड, अंधे और बहरेके समान पृथ्वीपर विचरण करता ॥ १३ ॥ इस प्रकारका जीवन व्यतीत करता हुआ वह एक दिन वनमें गया । वहाँ उसने देखा कि दावानल धधक रहा है । मननशील पृषध्र अपनी इन्द्रियोंको उसी अग्निमें भस्म करके परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो गया ॥ १४ ॥

मनुका सबसे छोटा पुत्र था कवि । विषयोंसे वह अत्यन्त निःस्पृह था । वह राज्य छोड़कर अपने बन्धुओंके साथ वनमें चला गया और अपने हृदयमें स्वयंप्रकाश

---

१. शाग्रहत० । २. ज्ञानहृष्टः ।

निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं
विवेश कैशोरवयाः परं गतः ॥ १५

परमात्माको विराजमान कर किशोर अवस्थामें ही परम पदको प्राप्त हो गया ॥ १५ ॥

करूषान्मानवादासन् कारूषाः क्षत्रजातयः ।
उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः ॥ १६

मनुपुत्र करूषसे कारूष नामक क्षत्रिय उत्पन्न हुए। वे बड़े ही ब्राह्मणभक्त, धर्मप्रेमी एवं उत्तरापथके रक्षक थे ॥ १६ ॥ धृष्टके धार्ष्ट नामक क्षत्रिय हुए। अन्तमें वे इस शरीरसे ही ब्राह्मण बन गये। नृगका पुत्र हुआ सुमति, उसका पुत्र भूतज्योति और भूतज्योतिका पुत्र वसु था ॥ १७ ॥ वसुका पुत्र प्रतीक और प्रतीकका पुत्र ओघवान्। ओघवान्के पुत्रका नाम भी ओघवान् ही था। उनके एक ओघवती नामकी कन्या भी थी, जिसका विवाह सुदर्शनसे हुआ ॥ १८ ॥ मनुपुत्र नरिष्यन्तसे चित्रसेन, उससे ऋक्ष, ऋक्षसे मीढ्वान्, मीढ्वान्से कूर्च और उससे इन्द्रसेनकी उत्पत्ति हुई ॥ १९ ॥ इन्द्रसेनसे वीतिहोत्र, उससे सत्यश्रवा, सत्यश्रवासे उरुश्रवा और उससे देवदत्तकी उत्पत्ति हुई ॥ २० ॥

धृष्टाद् धार्ष्टमभूत् क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ ।
नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥ १७

वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानोघवत्पिता ।
कन्या चौघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥ १८

चित्रसेनो नरिष्यन्तादृक्षस्तस्य सुतोऽभवत् ।
तस्य मीढ्वांस्ततः कूर्च इन्द्रसेनस्तु तत्सुतः ॥ १९

वीतिहोत्रस्त्विन्द्रसेनात् तस्य सत्यश्रवा अभूत् ।
उरुश्रवाः सुतस्तस्य देवदत्तस्ततोऽभवत् ॥ २०

देवदत्तके अग्निवेश्य नामक पुत्र हुए, जो स्वयं अग्निदेव ही थे। आगे चलकर वे ही कानीन एवं महर्षि जातूकर्ण्यके नामसे विख्यात हुए ॥ २१ ॥ परीक्षित्! ब्राह्मणोंका 'आग्निवेश्यायन' गोत्र उन्हींसे चला है। इस प्रकार नरिष्यन्तके वंशका मैंने वर्णन किया, अब दिष्टका वंश सुनो ॥ २२ ॥

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत् सुतः ।
कानीन इति विख्यातो जातूकर्ण्यो महानृषिः ॥ २१

ततो ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप ।
नरिष्यन्तान्वयः प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु ॥ २२

दिष्टके पुत्रका नाम था नाभाग। यह उस नाभागसे अलग है, जिसका मैं आगे वर्णन करूँगा। वह अपने कर्मके कारण वैश्य हो गया। उसका पुत्र हुआ भलन्दन और उसका वत्सप्रीति ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतिका प्रांशु और प्रांशुका पुत्र हुआ प्रमति। प्रमतिके खनित्र, खनित्रके चाक्षुष और उनके विविंशति हुए ॥ २४ ॥ विविंशतिके पुत्र रम्भ और रम्भके पुत्र खनिनेत्र—दोनों ही परम धार्मिक हुए। उनके पुत्र करन्धम और करन्धमके अवीक्षित्। महाराज परीक्षित्! अवीक्षित्के पुत्र मरुत्त चक्रवर्ती राजा हुए। उनसे अङ्गिराके पुत्र महायोगी

नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः ।
भलन्दनः सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलन्दनात् ॥ २३

वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः ।
खनित्रः प्रमतेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथ विविंशतिः ॥ २४

विविंशतिसुतो रम्भः खनिनेत्रोऽस्य धार्मिकः ।
करन्धमो महाराज तस्यासीदात्मजो नृप ॥ २५

तस्यावीक्षित् सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् ।
संवर्तोऽयाजयद् यं वै महायोग्यङ्गिरःसुतः ॥ २६

मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथान्यस्य कश्चन ।
सर्वं हिरण्मयं त्वासीद् यत् किञ्चिच्चास्य[1] शोभनम् ॥ २७

अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥ २८

संवर्त ऋषिने यज्ञ कराया था ॥ २५-२६ ॥ मरुत्तका यज्ञ जैसा हुआ, वैसा और किसीका नहीं हुआ। उस यज्ञके समस्त छोटे-बड़े पात्र अत्यन्त सुन्दर एवं सोनेके बने हुए थे ॥ २७ ॥ उस यज्ञमें इन्द्र सोमपान करके मतवाले हो गये थे और दक्षिणाओंसे ब्राह्मण तृप्त हो गये थे। उसमें परसनेवाले थे मरुद्गण और विश्वेदेव सभासद् थे ॥ २८ ॥

मरुत्तस्य दमः पुत्रस्तस्यासीद् राज्यवर्धनः[2] ।
सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः ॥ २९

तत्सुतः केवलस्तस्माद् बन्धुमान् वेगवांस्ततः ।
बन्धुस्तस्याभवद् यस्य तृणबिन्दुर्महीपतिः ॥ ३०

तं भेजेऽलम्बुषा देवी भजनीयगुणालयम् ।
वराप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेडविडाभवत् ॥ ३१

मरुत्तके पुत्रका नाम था दम। दमसे राज्यवर्धन, उससे सुधृति और सुधृतिसे नर नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई ॥ २९ ॥ नरसे केवल, केवलसे बन्धुमान्, बन्धुमान्‌से वेगवान्, वेगवान्‌से बन्धु और बन्धुसे राजा तृणबिन्दुका जन्म हुआ ॥ ३० ॥ तृणबिन्दु आदर्श गुणोंके भण्डार थे। अप्सराओंमें श्रेष्ठ अलम्बुषा देवीने उनको वरण किया, जिससे उनके कई पुत्र और इडविडा नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३१ ॥ मुनिवर विश्रवाने अपने योगेश्वर पिता पुलस्त्यजीसे उत्तम विद्या प्राप्त करके इडविडाके गर्भसे लोकपाल कुबेरको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ महाराज तृणबिन्दुके अपनी धर्मपत्नीसे तीन पुत्र हुए—विशाल, शून्यबन्धु और धूम्रकेतु। उनमेंसे राजा विशाल वंशधर हुए और उन्होंने वैशाली नामकी नगरी बसायी ॥ ३३ ॥ विशालसे हेमचन्द्र, हेमचन्द्रसे धूम्राक्ष, धूम्राक्षसे संयम और संयमसे दो पुत्र हुए—कृशाश्व और देवज ॥ ३४ ॥ कृशाश्वके पुत्रका नाम था सोमदत्त। उसने अश्वमेध यज्ञोंके द्वारा यज्ञपति भगवान्‌की आराधना की और योगेश्वर संतोंका आश्रय लेकर उत्तम गति प्राप्त की ॥ ३५ ॥ सोमदत्तका पुत्र हुआ सुमति और सुमतिसे जनमेजय। ये सब तृणबिन्दुकी कीर्तिको बढ़ानेवाले विशालवंशी राजा हुए ॥ ३६ ॥

तस्यामुत्पादयामास[3] विश्रवा धनदं सुतम् ।
प्रादाय विद्यां परमामृषिर्योगेश्वरात् पितुः ॥ ३२

विशालः शून्यबन्धुश्च धूम्रकेतुश्च[4] तत्सुताः ।
विशालो वंशकृद् राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम् ॥ ३३

हेमचन्द्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः ।
ततपुत्रात् संयमादासीत् कृशाश्वः सहदेवजः ॥ ३४

कृशाश्वात् सोमदत्तोऽभूद् योऽश्वमेधैरिडस्पतिम् ।
इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रितः ॥ ३५

सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः ।
एते वैशालभूपालास्तृणबिन्दोर्यशोधराः ॥ ३६

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

१. चात्र । २. द्राजवर्ध० । ३. यस्या० । ४. धूम्रकेशश्च ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

महर्षि च्यवन और सुकन्याका चरित्र, राजा शर्यातिका वंश

श्रीशुक उवाच

शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स[1] बभूव ह ।
यो वा अङ्गिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान् ॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! मनुपुत्र राजा शर्याति वेदोंका निष्ठावान् विद्वान् था । उसने अङ्गिरा-गोत्रके ऋषियोंके यज्ञमें दूसरे दिनका कर्म बतलाया था ॥ १ ॥

सुकन्या नाम तस्यासीत् कन्या कमललोचना ।
तया सार्धं वनगतो ह्यगमच्च्यवनाश्रमम् ॥ २

उसकी एक कमललोचना कन्या थी । उसका नाम था सुकन्या । एक दिन राजा शर्याति अपनी कन्याके साथ वनमें घूमते-घूमते च्यवन ऋषिके आश्रमपर जा पहुँचे ॥ २ ॥ सुकन्या अपनी सखियोंके साथ वनमें घूम-घूमकर वृक्षोंका सौन्दर्य देख रही थी । उसने एक स्थानपर देखा कि बाँबी (दीमकोंकी एकत्रित की हुई मिट्टी) के छेदमेंसे जुगनूकी तरह दो ज्योतियाँ दीख रही हैं ॥ ३ ॥ दैवकी कुछ ऐसी ही प्रेरणा थी, सुकन्याने बालसुलभ चपलतासे एक काँटेके द्वारा उन ज्योतियोंको बेध दिया । इससे उनमेंसे बहुत-सा खून बह चला ॥ ४ ॥ उसी समय राजा शर्यातिके सैनिकोंका मल-मूत्र रुक गया । राजर्षि शर्यातिको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने अपने सैनिकोंसे कहा ॥ ५ ॥ 'अरे, तुमलोगोंने कहीं महर्षि च्यवनजीके प्रति कोई अनुचित व्यवहार तो नहीं कर दिया ? मुझे तो यह स्पष्ट जान पड़ता है कि हमलोगोंमेंसे किसी-न-किसीने उनके आश्रममें कोई अनर्थ किया है' ॥ ६ ॥ तब सुकन्याने अपने पितासे डरते-डरते कहा कि 'पिताजी ! मैंने कुछ अपराध अवश्य किया है । मैंने अनजानमें दो ज्योतियोंको काँटेसे छेद दिया है' ॥ ७ ॥ अपनी कन्याकी यह बात सुनकर शर्याति घबरा गये । उन्होंने धीरे-धीरे स्तुति करके बाँबीमें छिपे हुए च्यवन मुनिको प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर च्यवन मुनिका अभिप्राय जानकर उन्होंने अपनी कन्या उन्हें समर्पित कर दी और इस संकटसे छूटकर बड़ी सावधानीसे उनकी अनुमति लेकर वे अपनी राजधानीमें चले आये ॥ ९ ॥

सा सखीभिः परिवृता विचिन्वत्यङ्घ्रिपान् वने ।
वल्मीकरन्ध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी ॥ ३

ते दैवचोदिता बाला ज्योतिषी कण्टकेन वै ।
अविध्यन्मुग्धभावेन सुस्रावासृक् ततो बहु ॥ ४

शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत् सैनिकानां च तत्क्षणात् ।
राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान् विस्मितोऽब्रवीत् ॥ ५

अप्यभद्रं न[2] युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम् ।
व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम् ॥ ६

सुकन्या प्राह पितरं भीता किञ्चित् कृतं मया ।
द्वे ज्योतिषी अजानन्त्या निर्भिन्ने कण्टकेन वै ॥ ७

दुहितुस्तद् वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः ।
मुनिं प्रसादयामास वल्मीकान्तर्हितं शनैः ॥ ८

तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद् दुहितरं मुनेः ।
कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामन्त्र्य पुरं प्रायात् समाहितः ॥ ९

इधर सुकन्या परम क्रोधी च्यवन मुनिको अपने पतिके रूपमें प्राप्त करके बड़ी सावधानीसे उनकी सेवा करती हुई उन्हें प्रसन्न करने लगी । वह उनकी मनोवृत्तिको जानकर उसके अनुसार ही बर्ताव करती थी ॥ १० ॥

सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम् ।
प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्तानुवृत्तिभिः ॥ १०

---

१. संबभूव । २. च ।

कस्यचित् त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ ।
तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ ॥ ११

ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः ।
क्रियतां मे वयो रूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ॥ १२

बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनन्द्य भिषक्तमौ ।
निमज्जतां भवानस्मिन् ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥ १३

इत्युक्त्वा जरया ग्रस्तदेहो धमनिसन्ततः ।
ह्रदं प्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविप्रियः ॥ १४

पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या[1] वनिताप्रियाः ।
पद्मस्त्रजः कुण्डलिनस्तुल्यरूपाः सुवाससः ॥ १५

तान् निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान्[2] सूर्यवर्चसः ।
अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥ १६

दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ ।
ऋषिमामन्त्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम् ॥ १७

यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं गतः ।
ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥ १८

राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवन्दनाम् ।
आशिषश्चाप्रयुञ्जानो[3] नातिप्रीतमना इव ॥ १९

चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया
प्रलम्भितो लोकनमस्कृतो मुनिः ।
यत्[4] त्वं जराग्रस्तमसत्यसम्मतं
विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥ २०

कथं मतिस्तेऽवगतान्यथा सतां
कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विदम् ।

कुछ समय बीत जानेपर उनके आश्रमपर दोनों अश्विनीकुमार आये। च्यवन मुनिने उनका यथोचित सत्कार किया और कहा कि 'आप दोनों समर्थ हैं, इसलिये मुझे युवा-अवस्था प्रदान कीजिये। मेरा रूप एवं अवस्था ऐसी कर दीजिये, जिसे युवती स्त्रियाँ चाहती हैं। मैं जानता हूँ कि आपलोग सोमपानके अधिकारी नहीं हैं, फिर भी मैं आपको यज्ञमें सोमरसका भाग दूँगा' ॥ ११-१२ ॥ वैद्यशिरोमणि अश्विनीकुमारोंने महर्षि च्यवनका अभिनन्दन करके कहा, 'ठीक है।' और इसके बाद उनसे कहा कि 'यह सिद्धोंके द्वारा बनाया हुआ कुण्ड है, आप इसमें स्नान कीजिये' ॥ १३ ॥ च्यवन मुनिके शरीरको बुढ़ापेने घेर रखा था। सब ओर नसें दीख रही थीं, झुर्रियाँ पड़ जाने एवं बाल पक जानेके कारण वे देखनेमें बहुत भद्दे लगते थे। अश्विनीकुमारोंने उन्हें अपने साथ लेकर कुण्डमें प्रवेश किया ॥ १४ ॥ उसी समय कुण्डसे तीन पुरुष बाहर निकले। वे तीनों ही कमलोंकी माला, कुण्डल और सुन्दर वस्त्र पहने एक-से मालूम होते थे। वे बड़े ही सुन्दर एवं स्त्रियोंको प्रिय लगनेवाले थे ॥ १५ ॥ परम साध्वी सुन्दरी सुकन्याने जब देखा कि ये तीनों ही एक आकृतिके तथा सूर्यके समान तेजस्वी हैं, तब अपने पतिको न पहचानकर उसने अश्विनीकुमारोंकी शरण ली ॥ १६ ॥ उसके पातिव्रत्यसे अश्विनीकुमार बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उसके पतिको बतला दिया और फिर च्यवन मुनिसे आज्ञा लेकर विमानके द्वारा वे स्वर्गको चले गये ॥ १७ ॥

कुछ समयके बाद यज्ञ करनेकी इच्छासे राजा शर्याति च्यवन मुनिके आश्रमपर आये। वहाँ उन्होंने देखा कि उनकी कन्या सुकन्याके पास एक सूर्यके समान तेजस्वी पुरुष बैठा हुआ है ॥ १८ ॥ सुकन्याने उनके चरणोंकी वन्दना की। शर्यातिने उसे आशीर्वाद नहीं दिया और कुछ अप्रसन्न-से होकर बोले ॥ १९ ॥ 'दुष्टे ! यह तूने क्या किया ? क्या तूने सबके वन्दनीय च्यवन मुनिको धोखा दे दिया ? अवश्य ही तूने उनको बूढ़ा और अपने कामका न समझकर छोड़ दिया और अब तू इस राह चलते जार पुरुषकी सेवा कर रही है ॥ २० ॥ तेरा जन्म तो बड़े ऊँचे कुलमें हुआ था। यह उलटी बुद्धि तुझे कैसे प्राप्त हुई ? तेरा यह व्यवहार तो कुलमें कलङ्क लगानेवाला है। अरे राम-राम ! तू निर्लज्ज होकर जार पुरुषकी सेवा कर

१. रापीच्या। २. पुरुषान् सू०। ३. आशिषो न प्रयु०। ४. त्वं यज०।

बिभर्षि जारं यदपत्रपा कुलं
पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥ २१

रही है और इस प्रकार अपने पिता और पति दोनोंके वंशको घोर नरकमें ले जा रही है' ॥ २१ ॥ राजा शर्यातिके इस प्रकार कहनेपर पवित्र मुसकानवाली सुकन्याने मुसकराकर कहा—'पिताजी ! ये आपके जामाता स्वयं भृगुनन्दन महर्षि च्यवन ही हैं' ॥ २२ ॥ इसके बाद उसने अपने पितासे महर्षि च्यवनके यौवन और सौन्दर्यकी प्राप्तिका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वह सब सुनकर राजा शर्याति अत्यन्त विस्मित हुए। उन्होंने बड़े प्रेमसे अपनी पुत्रीको गलेसे लगा लिया ॥ २३ ॥

एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता ।
उवाच तात[1] जामाता तवैष भृगुनन्दनः ॥ २२

शशंस पित्रे तत् सर्वं वयोरूपाभिलम्भनम् ।
विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे ॥ २३

सोमेन याजयन् वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् ।
असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा ॥ २४

महर्षि च्यवनने वीर शर्यातिसे सोमयज्ञका अनुष्ठान करवाया और सोमपानके अधिकारी न होनेपर भी अपने प्रभावसे अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराया ॥ २४ ॥ इन्द्र बहुत जल्दी क्रोध कर बैठते हैं। इसलिये उनसे यह सहा न गया। उन्होंने चिढ़कर शर्यातिको मारनेके लिये वज्र उठाया। महर्षि च्यवनने वज्रके साथ उनके हाथको वहीं स्तम्भित कर दिया ॥ २५ ॥ तब सब देवताओंने अश्विनीकुमारोंको सोमका भाग देना स्वीकार कर लिया। उन लोगोंने वैद्य होनेके कारण पहले अश्विनीकुमारोंका सोमपानसे बहिष्कार कर रखा था ॥ २६ ॥

हन्तुं तमाददे वज्रं सद्योमन्युरमर्षितः ।
सवज्रं स्तम्भयामास भुजमिन्द्रस्य भार्गवः ॥ २५

अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः ।
भिषजाविति यत् पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ॥ २६

उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः ।
शर्यातिरभवन् पुत्रा आनर्ताद् रेवतोऽभवत् ॥ २७

परीक्षित् ! शर्यातिके तीन पुत्र थे—उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण। आनर्तसे रेवत हुए ॥ २७ ॥ महाराज ! रेवतने समुद्रके भीतर कुशस्थली नामकी एक नगरी बसायी थी। उसीमें रहकर वे आनर्त आदि देशोंका राज्य करते थे ॥ २८ ॥ उनके सौ श्रेष्ठ पुत्र थे, जिनमें सबसे बड़े थे ककुद्मी। ककुद्मी अपनी कन्या रेवतीको लेकर उसके लिये वर पूछनेके उद्देश्यसे ब्रह्माजीके पास गये। उस समय ब्रह्मलोकका रास्ता ऐसे लोगोंके लिये बेरोक-टोक था। ब्रह्मलोकमें गाने-बजानेकी धूम मची हुई थी। बातचीतके लिये अवसर न मिलनेके कारण वे कुछ क्षण वहीं ठहर गये ॥ २९-३० ॥ उत्सवके अन्तमें ब्रह्माजीको नमस्कार करके उन्होंने अपना अभिप्राय निवेदन किया। उनकी बात सुनकर भगवान् ब्रह्माजीने हँसकर उनसे कहा —॥ ३१ ॥

सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ।
आस्थितोऽभुङ्क्त विषयानानर्तादीनरिन्दम ॥ २८

तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्म्यिज्येष्ठमुत्तमम् ।
ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥ २९

कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् ।
आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ॥ ३०

तदन्त आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ।
तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥ ३१

१. तातं ।

अहो राजन् निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ।
तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ॥ ३२

कालोऽभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः ।
तद् गच्छ देवदेवांशो बलदेवो महाबलः ॥ ३३

कन्यारत्नमिदं राजन् नररत्नाय देहि भोः ।
भुवो भारावताराय भगवान् भूतभावनः ॥ ३४

अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
इत्यादिष्टोऽभिवन्द्याजं नृपः स्वपुरमागतः ।
त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद् भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ॥ ३५

सुतां दत्त्वानवद्याङ्गीं बलाय बलशालिने ।
बदर्याख्यं गतो[1] राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६

'महाराज ! तुमने अपने मनमें जिन लोगोंके विषयमें सोच रखा था, वे सब तो कालके गालमें चले गये। अब उनके पुत्र, पौत्र अथवा नातियोंकी तो बात ही क्या है, गोत्रोंके नाम भी नहीं सुनायी पड़ते ॥ ३२ ॥ इस बीचमें सत्ताईस चतुर्युगीका समय बीत चुका है। इसलिये तुम जाओ। इस समय भगवान् नारायणके अंशावतार महाबली बलदेवजी पृथ्वीपर विद्यमान हैं ॥ ३३ ॥ राजन् ! उन्हीं नररत्नको यह कन्यारत्न तुम समर्पित कर दो। जिनके नाम, लीला आदिका श्रवण-कीर्तन बड़ा ही पवित्र है—वे ही प्राणियोंके जीवनसर्वस्व भगवान् पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपने अंशसे अवतीर्ण हुए हैं।' राजा ककुद्मीने ब्रह्माजीका यह आदेश प्राप्त करके उनके चरणोंकी वन्दना की और अपने नगरमें चले आये। उनके वंशजोंने यक्षोंके भयसे वह नगरी छोड़ दी थी और जहाँ-तहाँ यों ही निवास कर रहे थे ॥ ३४-३५ ॥ राजा ककुद्मीने अपनी सर्वाङ्गसुन्दरी पुत्री परम बलशाली बलरामजीको सौंप दी और स्वयं तपस्या करनेके लिये भगवान् नर-नारायणके आश्रम बदरीवनकी ओर चल दिये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नाभाग और अम्बरीषकी कथा

श्रीशुक उवाच

नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातरः कविम् ।
यविष्ठं व्यभजन् दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥ १

भ्रातरोऽभाङ्क्त किं मह्यं भजाम पितरं तव ।
त्वां ममार्यास्तताभाङ्क्षुर्मा पुत्रक तदादृथाः ॥ २

इमे अङ्गिरसः सत्रमासतेऽद्य सुमेधसः ।
षष्ठं षष्ठमुपेत्याहः कवे मुह्यन्ति कर्मणि ॥ ३

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! मनुपुत्र नभगका पुत्र था नाभाग। जब वह दीर्घकालतक ब्रह्मचर्यका पालन करके लौटा, तब बड़े भाइयोंने अपनेसे छोटे किन्तु विद्वान् भाईको हिस्सेमें केवल पिताको ही दिया (सम्पत्ति तो उन्होंने पहले ही आपसमें बाँट ली थी) ॥ १ ॥ उसने अपने भाइयोंसे पूछा—'भाइयो ! आपलोगोंने मुझे हिस्सेमें क्या दिया है ?' तब उन्होंने उत्तर दिया कि 'हम तुम्हारे हिस्सेमें पिताजीको ही तुम्हें देते हैं।' उसने अपने पितासे जाकर कहा—'पिताजी ! मेरे बड़े भाइयोंने हिस्सेमें मेरे लिये आपको ही दिया है।' पिताने कहा—'बेटा ! तुम उनकी बात न मानो ॥ २ ॥ देखो, ये बड़े बुद्धिमान् आङ्गिरस-गोत्रके ब्राह्मण इस समय एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। परन्तु मेरे

१. ययौ ।

तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः ।
ते स्वर्यन्तो धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः ॥ ४

दास्यन्ति तेऽथ तान् गच्छ तथा स कृतवान् यथा ।
तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं ते सत्रपरिशेषितम्[1] ॥ ५

तं कश्चित् स्वीकरिष्यन्तं पुरुषः कृष्णदर्शनः ।
उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु ॥ ६

ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि स्म मानवः ।
स्यान्नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान् पितरं तथा ॥ ७

यज्ञवास्तुगतं सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित् ।
चक्रुर्विभागं रुद्राय स देवः सर्वमर्हति ॥ ८

नाभागस्तं प्रणम्याह तवेश किल वास्तुकम् ।
इत्याह मे पिता ब्रह्मञ्छिरसा त्वां प्रसादये ॥ ९

यत् ते पितावदद् धर्मं त्वं च सत्यं प्रभाषसे ।
ददामि ते मन्त्रदृशो ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥ १०

गृहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रे परिशेषितम् ।
इत्युक्त्वान्तर्हितो[2] रुद्रो भगवान् सत्यवत्सलः ॥ ११

य एतत् संस्मरेत् प्रातः सायं च सुसमाहितः ।
कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिं चैव तथाऽऽत्मनः ॥ १२

नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती ।
नास्पृशद् ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित् ॥ १३

राजोवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः ।
न प्राभूद् यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदण्डो दुरत्ययः ॥ १४

विद्वान् पुत्र ! वे प्रत्येक छठे दिन अपने कर्ममें भूल कर बैठते हैं ॥ ३ ॥ तुम उन महात्माओंके पास जाकर उन्हें वैश्वदेवसम्बन्धी दो सूक्त बतला दो; जब वे स्वर्ग जाने लगेंगे, तब यज्ञसे बचा हुआ अपना सारा धन तुम्हें दे देंगे । इसलिये अब तुम उन्हींके पास चले जाओ ।' उसने अपने पिताके आज्ञानुसार वैसा ही किया । उन आङ्गिरस-गोत्री ब्राह्मणोंने भी यज्ञका बचा हुआ धन उसे दे दिया और वे स्वर्गमें चले गये ॥ ४-५ ॥

जब नाभाग उस धनको लेने लगा, तब उत्तर दिशासे एक काले रंगका पुरुष आया । उसने कहा—'इस यज्ञ-भूमिमें जो कुछ बचा हुआ है, वह सब धन मेरा है ' ॥ ६ ॥

नाभागने कहा—'ऋषियोंने यह धन मुझे दिया है, इसलिये मेरा है ।' इसपर उस पुरुषने कहा—'हमारे विवादके विषयमें तुम्हारे पितासे ही प्रश्न किया जाय ।' तब नाभागने जाकर पितासे पूछा ॥ ७ ॥ पिताने कहा—'एक बार दक्षप्रजापतिके यज्ञमें ऋषिलोग यह निश्चय कर चुके हैं कि यज्ञभूमिमें जो कुछ बच रहता है, वह सब रुद्रदेवका हिस्सा है । इसलिये वह धन तो महादेवजीको ही मिलना चाहिये' ॥ ८ ॥ नाभागने जाकर उन काले रंगके पुरुष रुद्रभगवान्‌को प्रणाम किया और कहा कि 'प्रभो ! यज्ञभूमिकी सभी वस्तुएँ आपकी हैं, मेरे पिताने ऐसा ही कहा है । भगवन् ! मुझसे अपराध हुआ, मैं सिर झुकाकर आपसे क्षमा माँगता हूँ' ॥ ९ ॥ तब भगवान् रुद्रने कहा—'तुम्हारे पिताने धर्मके अनुकूल निर्णय दिया है और तुमने भी मुझसे सत्य ही कहा है । तुम वेदोंका अर्थ तो पहलेसे ही जानते हो । अब मैं तुम्हें सनातन ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान देता हूँ ॥ १० ॥ यहाँ यज्ञमें बचा हुआ मेरा जो अंश है, यह धन भी मैं तुम्हें ही दे रहा हूँ; तुम इसे स्वीकार करो ।' इतना कहकर सत्यप्रेमी भगवान् रुद्र अन्तर्धान हो गये ॥ ११ ॥ जो मनुष्य प्रातः और सायंकाल एकाग्रचित्तसे इस आख्यानका स्मरण करता है, वह प्रतिभाशाली एवं वेदज्ञ तो होता ही है, साथ ही अपने स्वरूपको भी जान लेता है ॥ १२ ॥ नाभागके पुत्र हुए अम्बरीष । वे भगवान्‌के बड़े प्रेमी एवं उदार धर्मात्मा थे । जो ब्रह्मशाप कभी कहीं रोका नहीं जा सका, वह भी अम्बरीषका स्पर्श न कर सका ॥ १३ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! मैं परमज्ञानी राजर्षि अम्बरीषका चरित्र सुनना चाहता हूँ । ब्राह्मणने क्रोधित होकर उन्हें ऐसा दण्ड दिया, जो किसी प्रकार टाला

---

१. शेषणम् । २. न्तर्दधे ।

श्रीशुक उवाच

अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ।
अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥ १५

मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत् स्वप्नसंस्तुतम् ।
विद्वान् विभवनिर्वाणं तमो विशति यत् पुमान् ॥ १६

वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु ।
प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्टवत् स्मृतम् ॥ १७

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ १८

मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ
तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसङ्गमम् ।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे
श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥ १९

पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे[1]
शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने ।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया
यथोत्तमश्लोकजनाश्रया[2] रतिः ॥ २०

एवं सदा कर्मकलापमात्मनः
परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ।
सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां
तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह ॥ २१

ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं
महाविभूत्योपचिताङ्गदक्षिणैः ।

नहीं जा सकता; परन्तु वह भी उनका कुछ न बिगाड़ सका ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! अम्बरीष बड़े भाग्यवान् थे। पृथ्वीके सातों द्वीप, अचल सम्पत्ति और अतुलनीय ऐश्वर्य उनको प्राप्त था। यद्यपि ये सब साधारण मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ वस्तुएँ हैं, फिर भी वे इन्हें स्वप्नतुल्य समझते थे। क्योंकि वे जानते थे कि जिस धन-वैभवके लोभमें पड़कर मनुष्य घोर नरकमें जाता है, वह केवल चार दिनकी चाँदनी है। उसका दीपक तो बुझा-बुझाया है ॥ १५-१६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णमें और उनके प्रेमी साधुओंमें उनका परम प्रेम था। उस प्रेमके प्राप्त हो जानेपर तो यह सारा विश्व और इसकी समस्त सम्पत्तियाँ मिट्टीके ढेलेके समान जान पड़ती हैं ॥ १७ ॥ उन्होंने अपने मनको श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दयुगलमें, वाणीको भगवद्गुणानुवर्णनमें, हाथोंको श्रीहरिमन्दिरके मार्जन-सेचनमें और अपने कानोंको भगवान् अच्युतकी मङ्गलमयी कथाके श्रवणमें लगा रखा था ॥ १८ ॥ उन्होंने अपने नेत्र मुकुन्दमूर्ति एवं मन्दिरोंके दर्शनोंमें, अङ्ग-सङ्ग भगवद्-भक्तोंके शरीर-स्पर्शमें, नासिका उनके चरणकमलोंपर चढ़ी श्रीमती तुलसीके दिव्य गन्धमें और रसना (जिह्वा) को भगवान्‌के प्रति अर्पित नैवेद्य-प्रसादमें संलग्न कर दिया था ॥ १९ ॥ अम्बरीषके पैर भगवान्‌के क्षेत्र आदिकी पैदल यात्रा करनेमें ही लगे रहते और वे सिरसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी वन्दना किया करते। राजा अम्बरीषने माला, चन्दन आदि भोग-सामग्रीको भगवान्‌की सेवामें समर्पित कर दिया था। भोगनेकी इच्छासे नहीं, बल्कि इसलिये कि इससे वह भगवत्प्रेम प्राप्त हो, जो पवित्रकीर्ति भगवान्‌के निज-जनोंमें ही निवास करता है ॥ २० ॥ इस प्रकार उन्होंने अपने सारे कर्म यज्ञपुरुष, इन्द्रियातीत भगवान्‌के प्रति उन्हें सर्वात्मा एवं सर्वस्वरूप समझकर समर्पित कर दिये थे और भगवद्भक्त ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनुसार वे इस पृथ्वीका शासन करते थे ॥ २१ ॥ उन्होंने 'धन्व' नामके निर्जल देशमें सरस्वती नदीके प्रवाहके सामने वसिष्ठ, असित, गौतम आदि भिन्न-भिन्न आचार्योंद्वारा महान् ऐश्वर्यके कारण सर्वाङ्गपरिपूर्ण तथा बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले अनेकों

१. पथानुसर्पणे। २. तथो०।

ततैर्वसिष्ठासितगौतमादिभि-[1]
र्धन्वन्यभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥ २२

अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञाधिपति भगवान्‌की आराधना की थी ॥ २२ ॥ उनके यज्ञोंमें देवताओंके साथ जब सदस्य और ऋत्विज् बैठ जाते थे, तब उनकी पलकें नहीं पड़ती थीं और वे अपने सुन्दर वस्त्र और वैसे ही रूपके कारण देवताओंके समान दिखायी पड़ते थे ॥ २३ ॥ उनकी प्रजा महात्माओंके द्वारा गाये हुए भगवान्‌के उत्तम चरित्रोंका किसी समय बड़े प्रेमसे श्रवण करती और किसी समय उनका गान करती। इस प्रकार उनके राज्यके मनुष्य देवताओंके अत्यन्त प्यारे स्वर्गकी भी इच्छा नहीं करते ॥ २४ ॥ वे अपने हृदयमें अनन्त प्रेमका दान करनेवाले श्रीहरिका नित्य-निरन्तर दर्शन करते रहते थे। इसलिये उन लोगोंको वह भोग-सामग्री भी हर्षित नहीं कर पाती थी, जो बड़े-बड़े सिद्धोंको भी दुर्लभ है। वे वस्तुएँ उनके आत्मानन्दके सामने अत्यन्त तुच्छ और तिरस्कृत थीं ॥ २५ ॥ राजा अम्बरीष इस प्रकार तपस्यासे युक्त भक्तियोग और प्रजापालनरूप स्वधर्मके द्वारा भगवान्‌को प्रसन्न करने लगे और धीरे-धीरे उन्होंने सब प्रकारकी आसक्तियोंका परित्याग कर दिया ॥ २६ ॥ घर, स्त्री, पुत्र, भाई-बन्धु, बड़े-बड़े हाथी, रथ, घोड़े एवं पैदलोंकी चतुरङ्गिणी सेना, अक्षय रत्न, आभूषण और आयुध आदि समस्त वस्तुओं तथा कभी समाप्त न होनेवाले कोशोंके सम्बन्धमें उनका ऐसा दृढ़ निश्चय था कि वे सब-के-सब असत्य हैं ॥ २७ ॥ उनकी अनन्य प्रेममयी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उनकी रक्षाके लिये सुदर्शन चक्रको नियुक्त कर दिया था, जो विरोधियोंको भयभीत करनेवाला एवं भगवद्भक्तोंकी रक्षा करनेवाला है ॥ २८ ॥

यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजो जनाः ।
तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यन्त सुवाससः ॥ २३

स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रियः ।
शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम् ॥ २४

समर्द्धयन्ति तान् कामाः स्वाराज्यपरिभाविताः[2] ।
दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुन्दं हृदि पश्यतः[3] ॥ २५

स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः ।
स्वधर्मेण हरिं प्रीणन् सङ्गान् सर्वाञ्छनैर्जहौ ॥ २६

गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु
द्विपोत्तमस्यन्दनवाजिपत्तिषु[4] ।
अक्षय्यरत्नाभरणायुधादि-
ष्वनन्तकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥ २७

तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम् ।
एकान्तभक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम्[5] ॥ २८

राजा अम्बरीषकी पत्नी भी उन्हींके समान धर्मशील, संसारसे विरक्त एवं भक्तिपरायण थीं। एक बार उन्होंने अपनी पत्नीके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करनेके लिये एक वर्षतक द्वादशीप्रधान एकादशी-व्रत करनेका नियम ग्रहण किया ॥ २९ ॥ व्रतकी समाप्ति होनेपर कार्तिक महीनेमें उन्होंने तीन रातका उपवास किया और एक दिन यमुनाजीमें स्नान करके मधुवनमें भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की ॥ ३० ॥ उन्होंने महाभिषेककी विधिसे सब प्रकारकी सामग्री और सम्पत्तिद्वारा भगवान्‌का अभिषेक किया और हृदयसे तन्मय होकर वस्त्र, आभूषण, चन्दन, माला एवं अर्घ्य आदिके द्वारा उनकी पूजा की। यद्यपि महाभाग्यवान् ब्राह्मणोंको इस पूजाकी कोई आवश्यकता नहीं थी, स्वयं ही उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं—वे सिद्ध थे—तथापि राजा अम्बरीषने भक्तिभावसे उनका पूजन किया। तत्पश्चात् पहले

आरिराधयिषुः[6] कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया ।
युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥ २९

व्रतान्ते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः ।
स्नातः कदाचित् कालिन्द्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत् ॥ ३०

महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसम्पदा ।
अभिषिच्याम्बराकल्पैर्गन्धमाल्यार्हणादिभिः[7] ॥ ३१

तद्भक्तान्तरभावेन पूजयामास केशवम् ।
ब्राह्मणांश्च महाभागान् सिद्धार्थानपि भक्तितः ॥ ३२

---

१. भिः स्वर्धुन्यभिस्रोतवतीं सर० । २. वेष्टिताः । ३. पश्यताम् । ४. जिषत्सुषु । ५. भृताभि० । ६. पुरिष्णुं । ७. र्लब्ध० ।

गवां रुक्मविषाणीनां रूप्याङ्घ्रीणां सुवाससाम् ।
पयःशीलवयोरूपवत्सोपस्करसम्पदाम् ॥ ३३

प्राहिणोत् साधु विप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि षट् ।
भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम्[1] ॥ ३४

लब्धकामैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे ।
तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद् दुर्वासा भगवानभूत् ॥ ३५

तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः ।
ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः ॥ ३६

प्रतिनन्द्य स तद्याच्ञां[2] कर्तुमावश्यकं गतः ।
निममज्ज[3] बृहद् ध्यायन् कालिन्दीसलिले शुभे[4] ॥ ३७

मुहूर्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति ।
चिन्तयामास धर्मज्ञो द्विजैस्तद्धर्मसङ्कटे ॥ ३८

ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे ।
यत् कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वा न मां स्पृशेत् ॥ ३९

अम्भसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतपारणम् ।
प्राहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत् ॥ ४०

इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिन्तयन् मनसाच्युतम् ।
प्रत्यचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव सः ॥ ४१

दुर्वासा यमुनाकूलात् कृतावश्यक आगतः ।
राज्ञाभिनन्दितस्तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया ॥ ४२

मन्युना प्रचलद्गात्रो भ्रुकुटीकुटिलाननः ।
बुभुक्षितश्च सुतरां कृताञ्जलिमभाषत ॥ ४३

ब्राह्मणोंको स्वादिष्ट और अत्यन्त गुणकारी भोजन कराकर उन लोगोंके घर साठ करोड़ गौएँ सुसज्जित करके भेज दीं। उन गौओंके सींग सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े हुए थे। सुन्दर-सुन्दर वस्त्र उन्हें ओढ़ा दिये गये थे। वे गौएँ बड़ी सुशील, छोटी अवस्थाकी, देखनेमें सुन्दर, बछड़ेवाली और खूब दूध देनेवाली थीं। उनके साथ दुहनेकी उपयुक्त सामग्री भी उन्होंने भेजवा दी थी ॥ ३१—३४ ॥ जब ब्राह्मणोंको सब कुछ मिल चुका, तब राजाने उन लोगोंसे आज्ञा लेकर व्रतका पारण करनेकी तैयारी की। उसी समय शाप और वरदान देनेमें समर्थ स्वयं दुर्वासाजी भी उनके यहाँ अतिथिके रूपमें पधारे ॥ ३५ ॥

राजा अम्बरीष उन्हें देखते ही उठकर खड़े हो गये, आसन देकर बैठाया और विविध सामग्रियोंसे अतिथिके रूपमें आये हुए दुर्वासाजीकी पूजा की। उनके चरणोंमें प्रणाम करके अम्बरीषने भोजनके लिये प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ दुर्वासाजीने अम्बरीषकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और इसके बाद आवश्यक कर्मोंसे निवृत्त होनेके लिये वे नदीतटपर चले गये। वे ब्रह्मका ध्यान करते हुए यमुनाके पवित्र जलमें स्नान करने लगे ॥ ३७ ॥ इधर द्वादशी केवल घड़ीभर शेष रह गयी थी। धर्मज्ञ अम्बरीषने धर्म-सङ्कटमें पड़कर ब्राह्मणोंके साथ परामर्श किया ॥ ३८ ॥ उन्होंने कहा—'ब्राह्मणदेवताओ ! ब्राह्मणको बिना भोजन कराये स्वयं खा लेना और द्वादशी रहते पारण न करना—दोनों ही दोष हैं। इसलिये इस समय जैसा करनेसे मेरी भलाई हो और मुझे पाप न लगे, ऐसा काम करना चाहिये ॥ ३९ ॥ तब ब्राह्मणोंके साथ विचार करके उन्होंने कहा— 'ब्राह्मणो ! श्रुतियोंमें ऐसा कहा गया है कि जल पी लेना भोजन करना भी है, नहीं भी करना है। इसलिये इस समय केवल जलसे पारण किये लेता हूँ ॥ ४० ॥ ऐसा निश्चय करके मन-ही-मन भगवान्‌का चिन्तन करते हुए राजर्षि अम्बरीषने जल पी लिया और परीक्षित् ! वे केवल दुर्वासाजीके आनेकी बाट देखने लगे ॥ ४१ ॥ दुर्वासाजी आवश्यक कर्मोंसे निवृत्त होकर यमुनातटसे लौट आये। जब राजाने आगे बढ़कर उनका अभिनन्दन किया तब उन्होंने अनुमानसे ही समझ लिया कि राजाने पारण कर लिया है ॥ ४२ ॥ उस समय दुर्वासाजी बहुत भूखे थे। इसलिये यह जानकर कि राजाने पारण कर लिया है, वे क्रोधसे थर-थर काँपने लगे। भौंहोंके चढ़ जानेसे उनका मुँह विकट हो गया। उन्होंने हाथ जोड़कर खड़े अम्बरीषसे डाँटकर कहा ॥ ४३ ॥

---

१. गुणवन्मधु । २. तद्वाक्यं । ३. निर्म० । ४. शुचौ ।

अहो अस्य नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य[1] पश्यत ।
धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः[2] ॥ ४४

यो मामतिथिमायातमातिथ्येन निमन्त्र्य च ।
अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम् ॥ ४५

एवं ब्रुवाण उत्कृत्य जटां रोषविदीपितः ।
तया[3] स निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम् ॥ ४६

तामापतन्तीं ज्वलतीमसिहस्तां[4] पदा भुवम् ।
वेपयन्तीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः ॥ ४७

प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना ।
ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः ॥ ४८

तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य[5] स्वप्रयासं च निष्फलम् ।
दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया ॥ ४९

तमन्वधावद् भगवद्रथाङ्गं
दावाग्निरुद्धूतशिखो[6] यथाहिम् ।
तथानुषक्तं[7] मुनिरीक्षमाणो
गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः ॥ ५०

दिशो नभः क्ष्मां विवरान् समुद्रां-
ल्लोकान् सपालांस्त्रिदिवं गतः सः ।
यतो यतो धावति तत्र तत्र
सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श ॥ ५१

अलब्धनाथः स यदा कुतश्चित्
संत्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः ।
देवं विरिञ्चं समगाद् विधात-
स्त्राह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥ ५२

'अहो ! देखो तो सही, यह कितना क्रूर है ! यह धनके मदमें मतवाला हो रहा है । भगवान्‌की भक्ति तो इसे छूतक नहीं गयी और यह अपनेको बड़ा समर्थ मानता है । आज इसने धर्मका उल्लङ्घन करके बड़ा अन्याय किया है ॥ ४४ ॥ देखो, मैं इसका अतिथि होकर आया हूँ । इसने अतिथि-सत्कार करनेके लिये मुझे निमन्त्रण भी दिया है, किन्तु फिर भी मुझे खिलाये बिना ही खा लिया है । अच्छा देख, 'तुझे अभी इसका फल चखाता हूँ' ॥ ४५ ॥ यों कहते-कहते वे क्रोधसे जल उठे । उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़ी और उससे अम्बरीषको मार डालनेके लिये एक कृत्या उत्पन्न की । वह प्रलयकालकी आगके समान दहक रही थी ॥ ४६ ॥ वह आगके समान जलती हुई, हाथमें तलवार लेकर राजा अम्बरीषपर टूट पड़ी । उस समय उसके पैरोंकी धमकसे पृथ्वी काँप रही थी । परन्तु राजा अम्बरीष उसे देखकर उससे तनिक भी विचलित नहीं हुए । वे एक पग भी नहीं हटे, ज्यों-के-त्यों खड़े रहे ॥ ४७ ॥ परमपुरुष परमात्माने अपने सेवककी रक्षाके लिये पहलेसे ही सुदर्शन चक्रको नियुक्त कर रखा था । जैसे आग क्रोधसे गुर्राते हुए साँपको भस्म कर देती है, वैसे ही चक्रने दुर्वासाजीकी कृत्याको जलाकर राखका ढेर कर दिया ॥ ४८ ॥ जब दुर्वासाजीने देखा कि मेरी बनायी हुई कृत्या तो जल रही है और चक्र मेरी ओर आ रहा है, तब वे भयभीत हो अपने प्राण बचानेके लिये जी छोड़कर एकाएक भाग निकले ॥ ४९ ॥ जैसे ऊँची-ऊँची लपटोंवाला दावानल साँपके पीछे दौड़ता है, वैसे ही भगवान्‌का चक्र उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा । जब दुर्वासाजीने देखा कि चक्र तो मेरे पीछे लग गया है, तब सुमेरु पर्वतकी गुफामें प्रवेश करनेके लिये वे उसी ओर दौड़ पड़े ॥ ५० ॥ दुर्वासाजी दिशा, आकाश, पृथ्वी, अतल-वितल आदि नीचेके लोक, समुद्र, लोकपाल और उनके द्वारा सुरक्षित लोक एवं स्वर्गतकमें गये; परन्तु जहाँ-जहाँ वे गये, वहीं-वहीं उन्होंने असह्य तेजवाले सुदर्शन चक्रको अपने पीछे लगा देखा ॥ ५१ ॥ जब उन्हें कहीं भी कोई रक्षक न मिला, तब तो वे और भी डर गये । अपने लिये त्राण ढूँढ़ते हुए वे देवशिरोमणि ब्रह्माजीके पास गये और बोले—'ब्रह्माजी ! आप स्वयम्भू हैं । भगवान्‌के इस तेजोमय चक्रसे मेरी रक्षा कीजिये' ॥ ५२ ॥

---

१. श्रिया मत्तस्य । २. स्येशमानिनः । ३. तपसा निर्० । ४. ल्लन्तीमसि० । ५. द्रवमुद्वी० । ६. दवाग्नि० । ७. धावसक्तं ।

ब्रह्मोवाच

स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत्
क्रीडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे ।
भ्रूभङ्गमात्रेण हि संदिधक्षोः
कालात्मनो यस्य तिरोभविष्यति ॥ ५३

अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः
प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः ।
सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना
मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितं वहामः ॥ ५४

प्रत्याख्यातो विरिञ्चेन विष्णुचक्रोपतापितः ।
दुर्वासाः शरणं यातः शर्वं कैलासवासिनम् ॥ ५५

श्रीरुद्र उवाच

वयं न तात प्रभवाम भूम्नि
यस्मिन् परेऽन्येऽप्यजजीवकोशाः ।
भवन्ति काले न भवन्ति हीदृशाः
सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥ ५६

अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः ।
कपिलोऽपान्तरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥ ५७

मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः ।
विदाम न वयं सर्वे यन्मायां माययाऽऽवृताः ॥ ५८

तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः ।
तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥ ५९

ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ ।
वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥ ६०

संदह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना
तत्पादमूले पतितः सवेपथुः ।

ब्रह्माजीने कहा—'जब मेरी दो परार्धकी आयु समाप्त होगी और कालस्वरूप भगवान् अपनी यह सृष्टिलीला समेटने लगेंगे और इस जगत्को जलाना चाहेंगे, उस समय उनके भ्रूभङ्गमात्रसे यह सारा संसार और मेरा यह लोक भी लीन हो जायगा ॥ ५३ ॥

मैं, शङ्करजी, दक्ष-भृगु आदि प्रजापति, भूतेश्वर, देवेश्वर आदि सब जिनके बनाये नियमोंमें बँधे हैं तथा जिनकी आज्ञा शिरोधार्य करके हमलोग संसारका हित करते हैं, (उनके भक्तके द्रोहीको बचानेके लिये हम समर्थ नहीं हैं) ' ॥ ५४ ॥ जब ब्रह्माजीने इस प्रकार दुर्वासाको निराश कर दिया, तब भगवान्के चक्रसे संतप्त होकर वे कैलासवासी भगवान् शङ्करकी शरणमें गये ॥ ५५ ॥

श्रीमहादेवजीने कहा—'दुर्वासाजी ! जिन अनन्त परमेश्वरमें ब्रह्मा-जैसे जीव और उनके उपाधिभूत कोश, इस ब्रह्माण्डके समान ही अनेकों ब्रह्माण्ड समयपर पैदा होते हैं और समय आनेपर फिर उनका पता भी नहीं चलता, जिनमें हमारे-जैसे हजारों चक्कर काटते रहते हैं—उन प्रभुके सम्बन्धमें हम कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते ॥ ५६ ॥

मैं, सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्मा, कपिलदेव, अपान्तरतम, देवल, धर्म, आसुरि तथा मरीचि आदि दूसरे सर्वज्ञ सिद्धेश्वर—ये हम सभी भगवान्की मायाको नहीं जान सकते। क्योंकि हम उसी मायाके घेरेमें हैं ॥ ५७-५८ ॥ यह चक्र उन विश्वेश्वरका शस्त्र है। यह हमलोगोंके लिये असह्य है। तुम उन्हींकी शरणमें जाओ। वे भगवान् ही तुम्हारा मङ्गल करेंगे' ॥ ५९ ॥ वहाँसे भी निराश होकर दुर्वासा भगवान्के परमधाम वैकुण्ठमें गये। लक्ष्मीपति भगवान् लक्ष्मीके साथ वहीं निवास करते हैं ॥ ६० ॥ दुर्वासाजी भगवान्के चक्रकी आगसे जल रहे थे। वे काँपते हुए भगवान्के चरणोंमें गिर पड़े। उन्होंने कहा—'हे अच्युत ! हे अनन्त ! आप संतोंके एकमात्र वाञ्छनीय हैं। प्रभो ! विश्वके जीवनदाता ! मैं अपराधी हूँ।

आहाच्युतानन्त सदीप्सित प्रभो
कृतागसं माव[1] हि विश्वभावन ॥ ६१

अजानता ते परमानुभावं
कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम्।
विधेहि तस्यापचितिं विधात-
र्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥ ६२

श्रीभगवानुवाच

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ ६३

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥ ६४

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ६५

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः[2]।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥ ६६

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम् ॥ ६७

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्[3]।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥ ६८

उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत्।
अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान्।
साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ॥ ६९

आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ ६१ ॥ आपका परम प्रभाव न जाननेके कारण ही मैंने आपके प्यारे भक्तका अपराध किया है। प्रभो ! आप मुझे उससे बचाइये। आपके तो नामका ही उच्चारण करनेसे नारकी जीव भी मुक्त हो जाता है' ॥ ६२ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—दुर्वासाजी ! मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है। मेरे सीधे-सादे सरल भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें कर रखा है। भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे ॥ ६३ ॥ ब्रह्मन् ! अपने भक्तोंका एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ। इसलिये अपने साधुस्वभाव भक्तोंको छोड़कर मैं न तो अपने-आपको चाहता हूँ और न अपनी अर्द्धाङ्गिनी विनाशरहित लक्ष्मीको ॥ ६४ ॥ जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण, धन, इहलोक और परलोक—सबको छोड़कर केवल मेरी शरणमें आ गये हैं, उन्हें छोड़नेका सङ्कल्प भी मैं कैसे कर सकता हूँ ? ॥ ६५ ॥ जैसे सती स्त्री अपने पातिव्रत्यसे सदाचारी पतिको वशमें कर लेती है, वैसे ही मेरे साथ अपने हृदयको प्रेम-बन्धनसे बाँध रखनेवाले समदर्शी साधु भक्तिके द्वारा मुझे अपने वशमें कर लेते हैं ॥ ६६ ॥ मेरे अनन्यप्रेमी भक्त सेवासे ही अपनेको परिपूर्ण—कृतकृत्य मानते हैं। मेरी सेवाके फलस्वरूप जब उन्हें सालोक्य, सारूप्य आदि मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं, तब वे उन्हें भी स्वीकार करना नहीं चाहते; फिर समयके फेरसे नष्ट हो जानेवाली वस्तुओंकी तो बात ही क्या है ॥ ६७ ॥ दुर्वासाजी ! मैं आपसे और क्या कहूँ, मेरे प्रेमी भक्त तो मेरे हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तोंका हृदय स्वयं मैं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता ॥ ६८ ॥ दुर्वासाजी ! सुनिये, मैं आपको एक उपाय बताता हूँ। जिसका अनिष्ट करनेसे आपको इस विपत्तिमें पड़ना पड़ा है, आप उसीके पास जाइये। निरपराध साधुओंके अनिष्टकी चेष्टासे अनिष्ट करनेवालेका ही अमङ्गल होता है ॥ ६९ ॥

---

१. मामव विश्व। २. दर्शिनः। ३. ह्यहम्।

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥ ७०

ब्रह्मंस्तद् गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ।
क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥ ७१

इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मणोंके लिये तपस्या और विद्या परम कल्याणके साधन हैं। परन्तु यदि ब्राह्मण उद्दण्ड और अन्यायी हो जाय, तो वे ही दोनों उलटा फल देने लगते हैं ॥ ७० ॥ दुर्वासाजी ! आपका कल्याण हो। आप नाभागनन्दन परम भाग्यशाली राजा अम्बरीषके पास जाइये और उनसे क्षमा माँगिये। तब आपको शान्ति मिलेगी ॥ ७१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे-
ऽम्बरीषचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

दुर्वासाजीकी दुःखनिवृत्ति

श्रीशुक उवाच

एवं भगवताऽऽदिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः ।
अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥ १

तस्य सोद्यमनं[1] वीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः[2] ।
अस्तावीत् तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥ २

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब भगवान्‌ने इस प्रकार आज्ञा दी, तब सुदर्शन चक्रकी ज्वालासे जलते हुए दुर्वासा लौटकर राजा अम्बरीषके पास आये और उन्होंने अत्यन्त दुःखी होकर राजाके पैर पकड़ लिये ॥ १ ॥ दुर्वासाजीकी यह चेष्टा देखकर और उनके चरण पकड़नेसे लज्जित होकर राजा अम्बरीष भगवान्‌के चक्रकी स्तुति करने लगे। उस समय उनका हृदय दयावश अत्यन्त पीड़ित हो रहा था ॥ २ ॥

अम्बरीष उवाच

त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः ।
त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥ ३

सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ।
सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥ ४

त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ।
त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥ ५

नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे
ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ।

अम्बरीषने कहा—प्रभो सुदर्शन ! आप अग्निस्वरूप हैं। आप ही परम समर्थ सूर्य हैं। समस्त नक्षत्रमण्डलके अधिपति चन्द्रमा भी आपके स्वरूप हैं। जल, पृथ्वी, आकाश, वायु, पञ्चतन्मात्रा और सम्पूर्ण इन्द्रियोंके रूपमें भी आप ही हैं ॥ ३ ॥ भगवान्‌के प्यारे, हजार दाँतवाले चक्रदेव ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको नष्ट कर देनेवाले एवं पृथ्वीके रक्षक ! आप इन ब्राह्मणकी रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥ आप ही धर्म हैं, मधुर एवं सत्य वाणी हैं; आप ही समस्त यज्ञोंके अधिपति और स्वयं यज्ञ भी हैं। आप समस्त लोकोंके रक्षक एवं सर्वलोकस्वरूप भी हैं। आप परमपुरुष परमात्माके श्रेष्ठ तेज हैं ॥ ५ ॥ सुनाभ ! आप समस्त धर्मोंकी मर्यादाके रक्षक हैं। अधर्मका आचरण करनेवाले असुरोंको भस्म करनेके लिये आप साक्षात् अग्नि हैं। आप ही तीनों लोकोंके रक्षक एवं विशुद्ध तेजोमय हैं। आपकी गति मनके वेगके समान है और आपके कर्म अद्भुत हैं।

---

१. तद्व्यसनं । २. स्पर्शेन लज्जि० ।

त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे
मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥ ६

त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं
तमः प्रकाशश्च धृतो[1] महात्मनाम्।
दुरत्ययस्ते महिमा गिरां पते
त्वद्रूपमेतत् सदसत् परावरम् ॥ ७

यदा विसृष्टस्त्वमनञ्जनेन वै
बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम्।
बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि
वृक्णन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥ ८

स त्वं जगत्त्राण खलप्रहाणये
निरूपितः सर्वसहो गदाभृता।
विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे
विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥ ९

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः।
कुलं नो विप्रदैवं चेद् द्विजो भवतु विज्वरः ॥ १०

यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः।
सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥ ११

श्रीशुक उवाच

इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम्।
अशाम्यत् सर्वतो विप्रं प्रदहद् राजयाच्ञया ॥ १२

स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः।
प्रशशंस तमुर्वीशं युञ्जानः परमाशिषः ॥ १३

मैं आपको नमस्कार करता हूँ, आपकी स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥ वेदवाणीके अधीश्वर ! आपके धर्ममय तेजसे अन्धकारका नाश होता है और सूर्य आदि महापुरुषोंके प्रकाशकी रक्षा होती है। आपकी महिमाका पार पाना अत्यन्त कठिन है। ऊँचे-नीचे और छोटे-बड़ेके भेदभावसे युक्त यह समस्त कार्यकारणात्मक संसार आपका ही स्वरूप है ॥ ७ ॥ सुदर्शन चक्र ! आपपर कोई विजय नहीं प्राप्त कर सकता। जिस समय निरञ्जन भगवान् आपको चलाते हैं और आप दैत्य एवं दानवोंकी सेनामें प्रवेश करते हैं, उस समय युद्धभूमिमें उनकी भुजा, उदर, जंघा, चरण और गरदन आदि निरन्तर काटते हुए आप अत्यन्त शोभायमान होते हैं ॥ ८ ॥ विश्वके रक्षक ! आप रणभूमिमें सबका प्रहार सह लेते हैं, आपका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। गदाधारी भगवान्‌ने दुष्टोंके नाशके लिये ही आपको नियुक्त किया है। आप कृपा करके हमारे कुलके भाग्योदयके लिये दुर्वासाजीका कल्याण कीजिये। हमारे ऊपर यह आपका महान् अनुग्रह होगा ॥ ९ ॥ यदि मैंने कुछ भी दान किया हो, यज्ञ किया हो अथवा अपने धर्मका पालन किया हो, यदि हमारे वंशके लोग ब्राह्मणोंको ही अपना आराध्यदेव समझते रहे हों, तो दुर्वासाजीकी जलन मिट जाय ॥ १० ॥ भगवान् समस्त गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। यदि मैंने समस्त प्राणियोंके आत्माके रूपमें उन्हें देखा हो और वे मुझपर प्रसन्न हों तो दुर्वासाजीके हृदयकी सारी जलन मिट जाय ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब राजा अम्बरीषने दुर्वासाजीको सब ओरसे जलानेवाले भगवान्‌के सुदर्शन चक्रकी इस प्रकार स्तुति की, तब उनकी प्रार्थनासे चक्र शान्त हो गया ॥ १२ ॥ जब दुर्वासा चक्रकी आगसे मुक्त हो गये और उनका चित्त स्वस्थ हो गया, तब वे राजा अम्बरीषको अनेकानेक उत्तम आशीर्वाद देते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १३ ॥

---

१. भृतो।

दुर्वासा उवाच

अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे ।
कृतागसोऽपि यद् राजन् मङ्गलानि समीहसे ॥ १४

दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् ।
यैः संगृहीतो भगवान् सात्वतामृषभो हरिः ॥ १५

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः ।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥ १६

राजन्ननुगृहीतोऽहं[1] त्वयातिकरुणात्मना ।
मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः ॥ १७

राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकाङ्क्षया ।
चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥ १८

सोऽशित्वाऽऽदृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् ।
तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥ १९

प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै ।
दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥ २०

कर्मावदातमेतत् ते गायन्ति स्वःस्त्रियो मुहुः ।
कीर्तिं[2] परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम् ॥ २१

श्रीशुक उवाच

एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः ।
ययौ विहायसाऽऽमन्त्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥ २२

संवत्सरोऽत्यगात् तावद् यावता नागतो गतः ।
मुनिस्तद्दर्शनाकाङ्क्षो राजाऽब्भक्षो बभूव ह ॥ २३

दुर्वासाजीने कहा—धन्य है! आज मैंने भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका महत्त्व देखा। राजन्! मैंने आपका अपराध किया, फिर भी आप मेरे लिये मङ्गल-कामना ही कर रहे हैं॥ १४॥ जिन्होंने भक्तवत्सल भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंको दृढ़ प्रेमभावसे पकड़ लिया है—उन साधुपुरुषोंके लिये कौन-सा कार्य कठिन है? जिनका हृदय उदार है, वे महात्मा भला, किस वस्तुका परित्याग नहीं कर सकते?॥ १५॥ जिनके मङ्गलमय नामोंके श्रवणमात्रसे जीव निर्मल हो जाता है—उन्हीं तीर्थपाद भगवान्‌के चरणकमलोंके जो दास हैं, उनके लिये कौन-सा कर्तव्य शेष रह जाता है?॥ १६॥ महाराज अम्बरीष! आपका हृदय करुणाभावसे परिपूर्ण है। आपने मेरे ऊपर महान् अनुग्रह किया। अहो, आपने मेरे अपराधको भुलाकर मेरे प्राणोंकी रक्षा की है!॥ १७॥

परीक्षित्! जबसे दुर्वासाजी भागे थे, तबसे अबतक राजा अम्बरीषने भोजन नहीं किया था। वे उनके लौटनेकी बाट देख रहे थे। अब उन्होंने दुर्वासाजीके चरण पकड़ लिये और उन्हें प्रसन्न करके विधिपूर्वक भोजन कराया॥ १८॥ राजा अम्बरीष बड़े आदरसे अतिथिके योग्य सब प्रकारकी भोजन-सामग्री ले आये। दुर्वासाजी भोजन करके तृप्त हो गये। अब उन्होंने आदरसे कहा—'राजन्! अब आप भी भोजन कीजिये॥ १९॥ अम्बरीष! आप भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त हैं। आपके दर्शन, स्पर्श, बातचीत और मनको भगवान्‌की ओर प्रवृत्त करनेवाले आतिथ्यसे मैं अत्यन्त प्रसन्न और अनुगृहीत हुआ हूँ॥ २०॥ स्वर्गकी देवाङ्गनाएँ बार-बार आपके इस उज्ज्वल चरित्रका गान करेंगी। यह पृथ्वी भी आपकी परम पुण्यमयी कीर्तिका संकीर्तन करती रहेगी'॥ २१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—दुर्वासाजीने बहुत ही सन्तुष्ट होकर राजा अम्बरीषके गुणोंकी प्रशंसा की और उसके बाद उनसे अनुमति लेकर आकाशमार्गसे उस ब्रह्मलोककी यात्रा की, जो केवल निष्काम कर्मसे ही प्राप्त होता है॥ २२॥ परीक्षित्! जब सुदर्शन चक्रसे भयभीत होकर दुर्वासाजी भगे थे, तबसे लेकर उनके लौटनेतक एक वर्षका समय बीत गया। इतने दिनोंतक राजा अम्बरीष उनके दर्शनकी आकाङ्क्षासे केवल जल पीकर ही रहे॥ २३॥

---

१. तोऽस्मि। २. कीर्तिं तां परमां पुण्यां कीर्त०।

गते[1] च दुर्वाससि सोऽम्बरीषो
द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत्[2] ।
ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुद्ध्वा
मेने स्ववीर्यं च परानुभावम्[3] ॥ २४

एवंविधानेकगुणः स राजा
परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे ।
क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं
ययाऽऽविरिञ्च्यान् निरयांश्चकार ॥ २५

अथाम्बरीषस्तनयेषु राज्यं
समानशीलेषु विसृज्य धीरः[4] ।
वनं विवेशात्मनि वासुदेवे
मनो दधद् ध्वस्तगुणप्रवाहः ॥ २६

इत्येतत् पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः ।
संकीर्तयन्ननुध्यायन् भक्तो भगवतो भवेत् ॥ २७

जब दुर्वासाजी चले गये, तब उनके भोजनसे बचे हुए अत्यन्त पवित्र अन्नका उन्होंने भोजन किया। अपने कारण दुर्वासाजीका दुःखमें पड़ना और फिर अपनी ही प्रार्थनासे उनका छूटना—इन दोनों बातोंको उन्होंने अपनेद्वारा होनेपर भी भगवान्‌की ही महिमा समझा ॥ २४ ॥ राजा अम्बरीषमें ऐसे-ऐसे अनेकों गुण थे। अपने समस्त कर्मोंके द्वारा वे परब्रह्म परमात्मा श्रीभगवान्‌में भक्तिभावकी अभिवृद्धि करते रहते थे। उस भक्तिके प्रभावसे उन्होंने ब्रह्मलोकतकके समस्त भोगोंको नरकके समान समझा ॥ २५ ॥

तदनन्तर राजा अम्बरीषने अपने ही समान भक्त पुत्रोंपर राज्यका भार छोड़ दिया और स्वयं वे वनमें चले गये। वहाँ वे बड़ी धीरताके साथ आत्मस्वरूप भगवान्‌में अपना मन लगाकर गुणोंके प्रवाहरूप संसारसे मुक्त हो गये ॥ २६ ॥ परीक्षित्! महाराज अम्बरीषका यह परम पवित्र आख्यान है। जो इसका सङ्कीर्तन और स्मरण करता है, वह भगवान्‌का भक्त हो जाता है ॥२७॥

—★—

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धेऽम्बरीषचरितं[5]
नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

—★—

अथ षष्ठोऽध्यायः

इक्ष्वाकुके वंशका वर्णन, मान्धाता और सौभरि ऋषिकी कथा

श्रीशुक उवाच

विरूपः केतुमाञ्छम्भुरम्बरीषसुतास्त्रयः ।
विरूपात् पृषदश्वोऽभूत् तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अम्बरीषके तीन पुत्र थे—विरूप, केतुमान् और शम्भु। विरूपसे पृषदश्व और उसका पुत्र रथीतर हुआ ॥ १ ॥

रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तन्तवेऽर्थितः ।
अङ्गिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥ २

रथीतर सन्तानहीन था। वंश परम्पराकी रक्षाके लिये उसने अङ्गिरा ऋषिसे प्रार्थना की, उन्होंने उसकी पत्नीसे ब्रह्मतेजसे सम्पन्न कई पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥

---

१. गतेऽथ । २. गाभिपवि॰ । ३. महानुभावम् । ४. वीरः । ५. चरिते ।

एते क्षेत्रे[1] प्रसूता वै पुनस्त्वाङ्गिरसाः स्मृताः ।
रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥ ३

क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः ।
तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ॥ ४

तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप ।
पञ्चविंशतिः पश्चाच्च त्रयो मध्ये परेऽन्यतः ॥ ५

स एकदाष्टकाश्राद्धे इक्ष्वाकुः सुतमादिशत् ।
मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ माचिरम् ॥ ६

तथेति स वनं गत्वा मृगान् हत्वा क्रियार्हणान्[2] ।
श्रान्तो बुभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः ॥ ७

शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः ।
चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम् ॥ ८

ज्ञात्वा पुत्रस्य तत् कर्म गुरुणाभिहितं नृपः ।
देशान्निःसारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा ॥ ९

स तु विप्रेण संवादं जापकेन समाचरन् ।
त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत् परम् ॥ १०

पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम् ।
शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ॥ ११

पुरञ्जयस्तस्य सुत इन्द्रवाह इतीरितः ।
ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः[3] शृणु नामानि कर्मभिः ॥ १२

कृतान्त आसीत् समरो देवानां सह दानवैः ।
पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥ १३

यद्यपि ये सब रथीतरकी भार्यासे उत्पन्न हुए थे, इसलिये इनका गोत्र वही होना चाहिये था जो रथीतरका था, फिर भी वे आङ्गिरस ही कहलाये। ये ही रथीतर-वंशियोंके प्रवर (कुलमें सर्वश्रेष्ठ पुरुष) कहलाये। क्योंकि ये क्षत्रोपेत ब्राह्मण थे—क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों गोत्रोंसे इनका सम्बन्ध था ॥ ३ ॥

परीक्षित्! एक बार मनुजीके छींकनेपर उनकी नासिकासे इक्ष्वाकु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। इक्ष्वाकुके सौ पुत्र थे। उनमें सबसे बड़े तीन थे—विकुक्षि, निमि और दण्डक ॥ ४ ॥ परीक्षित्! उनसे छोटे पचीस पुत्र आर्यावर्तके पूर्वभागके और पचीस पश्चिमभागके तथा उपर्युक्त तीन मध्यभागके अधिपति हुए। शेष सैंतालीस दक्षिण आदि अन्य प्रान्तोंके अधिपति हुए ॥ ५ ॥ एक बार राजा इक्ष्वाकुने अष्टका-श्राद्धके समय अपने बड़े पुत्रको आज्ञा दी—'विकुक्षे! शीघ्र ही जाकर श्राद्धके योग्य पवित्र पशुओंका मांस लाओ' ॥ ६ ॥ वीर विकुक्षिने 'बहुत अच्छा' कहकर वनकी यात्रा की। वहाँ उसने श्राद्धके योग्य बहुत-से पशुओंका शिकार किया। वह थक तो गया ही था, भूख भी लग आयी थी; इसलिये यह बात भूल गया कि श्राद्धके लिये मारे हुए पशुको स्वयं न खाना चाहिये। उसने एक खरगोश खा लिया ॥ ७ ॥ विकुक्षिने बचा हुआ मांस लाकर अपने पिताको दिया। इक्ष्वाकुने अब अपने गुरुसे उसे प्रोक्षण करनेके लिये कहा, तब गुरुजीने बताया कि यह मांस तो दूषित एवं श्राद्धके अयोग्य है ॥ ८ ॥ परीक्षित्! गुरुजीके कहनेपर राजा इक्ष्वाकुको अपने पुत्रकी करतूतका पता चल गया। उन्होंने शास्त्रीय विधिका उल्लङ्घन करनेवाले पुत्रको क्रोधवश अपने देशसे निकाल दिया ॥ ९ ॥ तदनन्तर राजा इक्ष्वाकुने अपने गुरुदेव वसिष्ठसे ज्ञानविषयक चर्चा की। फिर योगके द्वारा शरीरका परित्याग करके उन्होंने परमपद प्राप्त किया ॥ १० ॥ पिताका देहान्त हो जानेपर विकुक्षि अपनी राजधानीमें लौट आया और इस पृथ्वीका शासन करने लगा। उसने बड़े-बड़े यज्ञोंसे भगवान्‌की आराधना की और संसारमें शशादके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ११ ॥ विकुक्षिके पुत्रका नाम था पुरञ्जय। उसीको कोई 'इन्द्रवाह' और कोई 'ककुत्स्थ' कहते हैं। जिन कर्मोंके कारण उसके ये नाम पड़े थे, उन्हें सुनो ॥ १२ ॥

सत्ययुगके अन्तमें देवताओंका दानवोंके साथ घोर संग्राम हुआ था। उसमें सब-के-सब देवता दैत्योंसे हार गये। तब उन्होंने वीर पुरञ्जयको सहायताके लिये अपना

---

१. क्षेत्रप्रसू० । २. ह्यापाहरन् । ३. च प्रोक्तः ।

वचनाद् देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः ।
वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेन्द्रो महावृषः ॥ १४

स संनद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखाञ्छितान् ।
स्तूयमानः समारुह्य[1] युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥ १५

तेजसाऽऽप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य परात्मनः ।
प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत् त्रिदशैः पुरम् ॥ १६

तैस्तस्य चाभूत्[2] प्रधनं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
यमाय भल्लैरनयद् दैत्यान् येऽभिययुर्मृधे ॥ १७

तस्येषुपाताभिमुखं युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ।
विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाः स्वमालयम् ॥ १८

जित्वा पुरं धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये ।
प्रत्ययच्छत् स राजर्षिरिति नामभिराहृतः ॥ १९

पुरञ्जयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः पृथुः ।
विश्वरन्धिस्ततश्चन्द्रो युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ २०

शाबस्तस्तत्सुतो येन शाबस्ती निर्ममे[3] पुरी ।
बृहदश्वस्तु शाबस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः ॥ २१

यः प्रियार्थमुतङ्कस्य धुन्धुनामासुरं बली ।
सुतानामेकविंशत्या सहस्रैरहनद् वृतः ॥ २२

धुन्धुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः ।
धुन्धोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः ॥ २३

दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत ।
दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो निकुम्भस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २४

मित्र बनाया ॥ १३ ॥ पुरञ्जयने कहा कि 'यदि देवराज इन्द्र मेरे वाहन बनें तो मैं युद्ध कर सकता हूँ।' पहले तो इन्द्रने अस्वीकार कर दिया, परन्तु देवताओंके आराध्यदेव सर्वशक्तिमान् विश्वात्मा भगवान्‌की बात मानकर पीछे वे एक बड़े भारी बैल बन गये ॥ १४ ॥ सर्वान्तर्यामी भगवान् विष्णुने अपनी शक्तिसे पुरञ्जयको भर दिया। उन्होंने कवच पहनकर दिव्य धनुष और तीखे बाण ग्रहण किये। इसके बाद बैलपर चढ़कर वे उसके ककुद् (डील) के पास बैठ गये। जब इस प्रकार वे युद्धके लिये तत्पर हुए, तब देवता उनकी स्तुति करने लगे। देवताओंको साथ लेकर उन्होंने पश्चिमकी ओरसे दैत्योंका नगर घेर लिया ॥ १५-१६ ॥ वीर पुरञ्जयका दैत्योंके साथ अत्यन्त रोमाञ्चकारी घोर संग्राम हुआ। युद्धमें जो-जो दैत्य उनके सामने आये, पुरञ्जयने बाणोंके द्वारा उन्हें यमराजके हवाले कर दिया ॥ १७ ॥ उनके बाणोंकी वर्षा क्या थी, प्रलयकालकी धधकती हुई आग थी। जो भी उसके सामने आता, छिन्न-भिन्न हो जाता। दैत्योंका साहस जाता रहा। वे रणभूमि छोड़कर अपने-अपने घरोंमें घुस गये ॥ १८ ॥ पुरञ्जयने उनका नगर, धन और ऐश्वर्य—सब कुछ जीतकर इन्द्रको दे दिया। इसीसे उन राजर्षिको पुर जीतनेके कारण 'पुरञ्जय', इन्द्रको वाहन बनानेके कारण 'इन्द्रवाह' और बैलके ककुद्पर बैठनेके कारण 'ककुस्थ' कहा जाता है ॥ १९ ॥

पुरञ्जयका पुत्र था अनेना। उसका पुत्र पृथु हुआ। पृथुके विश्वरन्धि, उसके चन्द्र और चन्द्रके युवनाश्व ॥ २० ॥ युवनाश्वके पुत्र हुए शावस्त, जिन्होंने शावस्तीपुरी बसायी। शावस्तके बृहदश्व और उसके कुवलयाश्व हुए ॥ २१ ॥ ये बड़े बली थे। इन्होंने उतङ्क ऋषिको प्रसन्न करनेके लिये अपने इक्कीस हजार पुत्रोंको साथ लेकर धुन्धु नामक दैत्यका वध किया ॥ २२ ॥ इसीसे उनका नाम हुआ 'धुन्धुमार'। धुन्धु दैत्यके मुखकी आगसे उनके सब पुत्र जल गये। केवल तीन ही बच रहे थे ॥ २३ ॥ परीक्षित्! बचे हुए पुत्रोंके नाम थे—दृढाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व। दृढाश्वसे हर्यश्व और उससे निकुम्भका जन्म हुआ ॥ २४ ॥

---

१. स गन्धर्वैः । २. भृत्सुमहत् । ३. निर्मिता ।

बर्हणाश्वो[1] निकुम्भस्य कृशाश्वोऽथास्य[2] सेनजित् ।
युवनाश्वोऽभवत् तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः ॥ २५

भार्याशतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः ।
इष्टिं स्म वर्तयाञ्चक्रुरैन्द्रीं ते सुसमाहिताः ॥ २६

राजा तद् यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः ।
दृष्ट्वा शयानान् विप्रांस्तान् पपौ मन्त्रजलं स्वयम् ॥ २७

उत्थितास्ते निशाम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो ।
पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम् ॥ २८

राज्ञा पीतं विदित्वाथ ईश्वरप्रहितेन ते ।
ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥ २९

ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् ।
युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान[3] ह ॥ ३०

कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्यं रोरूयते भृशम् ।
मां धाता वत्स मा रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात् ॥ ३१

न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः ।
युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ॥ ३२

त्रसद्दस्युरितीन्द्रोऽङ्ग विदधे नाम तस्य[4] वै ।
यस्मात् त्रसन्ति ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः ॥ ३३

यौवनाश्वोऽथ मान्धाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः ।
सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥ ३४

ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद् भूरिदक्षिणैः ।
सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतीन्द्रियम् ॥ ३५

निकुम्भके बर्हणाश्व, उसके कृशाश्व, कृशाश्वके सेनजित् और सेनजित्के युवनाश्व नामक पुत्र हुआ। युवनाश्व सन्तानहीन था, इसलिये वह बहुत दुःखी होकर अपनी सौ स्त्रियोंके साथ वनमें चला गया। वहाँ ऋषियोंने बड़ी कृपा करके युवनाश्वसे पुत्रप्राप्तिके लिये बड़ी एकाग्रताके साथ इन्द्रदेवताका यज्ञ कराया ॥ २५-२६ ॥ एक दिन राजा युवनाश्वको रात्रिके समय बड़ी प्यास लगी। वह यज्ञशालामें गया, किन्तु वहाँ देखा कि ऋषिलोग तो सो रहे हैं। तब जल मिलनेका और कोई उपाय न देख उसने वह मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल ही पी लिया ॥ २७ ॥ परीक्षित् ! जब प्रातःकाल ऋषिलोग सोकर उठे और उन्होंने देखा कि कलशमें तो जल ही नहीं है, तब उन लोगोंने पूछा कि 'यह किसका काम है ? पुत्र उत्पन्न करनेवाला जल किसने पी लिया ?' ॥ २८ ॥ अन्तमें जब उन्हें यह मालूम हुआ कि भगवान्‌की प्रेरणासे राजा युवनाश्वने ही उस जलको पी लिया है, तो उन लोगोंने भगवान्‌के चरणोंमें नमस्कार किया और कहा—'धन्य है ! भगवान्‌का बल ही वास्तवमें बल है' ॥ २९ ॥ इसके बाद प्रसवका समय आनेपर युवनाश्वकी दाहिनी कोख फाड़कर उसके एक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ उसे रोते देख ऋषियोंने कहा—'यह बालक दूधके लिये बहुत रो रहा है; अतः किसका दूध पियेगा ?' तब इन्द्रने कहा, 'मेरा पियेगा' '(मां धाता)' 'बेटा ! तू रो मत।' यह कहकर इन्द्रने अपनी तर्जनी अँगुली उसके मुँहमें डाल दी ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण और देवताओंके प्रसादसे उस बालकके पिता युवनाश्वकी भी मृत्यु नहीं हुई। वह वहीं तपस्या करके मुक्त हो गया ॥ ३२ ॥ परीक्षित् ! इन्द्रने उस बालकका नाम रखा त्रसद्दस्यु, क्योंकि रावण आदि दस्यु (लुटेरे) उससे उद्विग्न एवं भयभीत रहते थे ॥ ३३ ॥ युवनाश्वके पुत्र मान्धाता (त्रसद्दस्यु) चक्रवर्ती राजा हुए। भगवान्‌के तेजसे तेजस्वी होकर उन्होंने अकेले ही सातों द्वीपवाली पृथ्वीका शासन किया ॥ ३४ ॥ वे यद्यपि आत्मज्ञानी थे, उन्हें कर्मकाण्डकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी—फिर भी उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे उन यज्ञस्वरूप प्रभुकी आराधनाकी जो स्वयंप्रकाश, सर्वदेवस्वरूप, सर्वात्मा एवं इन्द्रियातीत हैं ॥ ३५ ॥

---

१. बार्हश्वासो । २. शाश्वश्वास्य । ३. ह्याजायत । ४. यस्य ।

द्रव्यं मन्त्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्त्विजः ।
धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद् यदात्मकम् ॥ ३६

यावत् सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ।
सर्वं तद् यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ३७

शशबिन्दोर्दुहितरि बिन्दुमत्यामधान्नृपः[1] ।
पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च योगिनम् ।
तेषां स्वसारः पञ्चाशत् सौभरिं वव्रिरे पतिम् ॥ ३८

यमुनान्तर्जले मग्नस्तप्यमानः परंतपः ।
निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य मैथुनधर्मिणः ॥ ३९

जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ।
सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन् कामं कन्या स्वयंवरे ॥ ४०

स विचिन्त्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽयमसम्मतः ।
वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः ॥ ४१

साधयिष्ये तथाऽऽत्मानं सुरस्त्रीणामपीप्सितम् ।
किं पुनर्मनुजेन्द्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ॥ ४२

मुनिः प्रवेशितः क्षत्त्रा कन्यान्तःपुरमृद्धिमत् ।
वृतश्च[2] राजकन्याभिरेकः पञ्चाशता वरः ॥ ४३

तासां कलिरभूद् भूयांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम् ।
ममानुरूपो नायं व इति तद्धृतचेतसाम् ॥ ४४

स बह्वृचस्ताभिरपारणीय-
तपःश्रियानर्घ्यपरिच्छदेषु ।
गृहेषु नानोपवनामलाम्भः-
सरस्सु सौगन्धिककाननेषु ॥ ४५

भगवान्‌के अतिरिक्त और है ही क्या ? यज्ञकी सामग्री, मन्त्र, विधि-विधान, यज्ञ, यजमान, ऋत्विज्, धर्म, देश और काल—यह सब-का-सब भगवान्‌का ही स्वरूप तो है ॥ ३६ ॥ परीक्षित् ! जहाँसे सूर्यका उदय होता है और जहाँ वे अस्त होते हैं, वह सारा-का-सारा भूभाग युवनाश्वके पुत्र मान्धाताके ही अधिकारमें था ॥ ३७ ॥

राजा मान्धाताकी पत्नी शशबिन्दुकी पुत्री बिन्दुमती थी। उसके गर्भसे उनके तीन पुत्र हुए—पुरुकुत्स, अम्बरीष (ये दूसरे अम्बरीष हैं) और योगी मुचुकुन्द। इनकी पचास बहनें थीं। उन पचासोंने अकेले सौभरि ऋषिको पतिके रूपमें वरण किया ॥ ३८ ॥ परम तपस्वी सौभरिजी एक बार यमुनाजलमें डुबकी लगाकर तपस्या कर रहे थे। वहाँ उन्होंने देखा कि एक मत्स्यराज अपनी पत्नियोंके साथ बहुत सुखी हो रहा है ॥ ३९ ॥ उसके इस सुखको देखकर ब्राह्मण सौभरिके मनमें भी विवाह करनेकी इच्छा जग उठी और उन्होंने राजा मान्धाताके पास आकर उनकी पचास कन्याओंमेंसे एक कन्या माँगी। राजाने कहा—'ब्रह्मन् ! कन्या स्वयंवरमें आपको चुन ले तो आप उसे ले लीजिये' ॥ ४० ॥ सौभरि ऋषि राजा मान्धाताका अभिप्राय समझ गये। उन्होंने सोचा कि 'राजाने इसलिये मुझे ऐसा सूखा जवाब दिया है कि अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, बाल पक गये हैं और सिर काँपने लगा है। अब कोई स्त्री मुझसे प्रेम नहीं कर सकती ॥ ४१ ॥ अच्छी बात है ! मैं अपनेको ऐसा सुन्दर बनाऊँगा कि राजकन्याएँ तो क्या, देवाङ्गनाएँ भी मेरे लिये लालायित हो जायँगी।' ऐसा सोचकर समर्थ सौभरिजीने वैसा ही किया ॥ ४२ ॥

फिर क्या था, अन्तःपुरके रक्षकने सौभरि मुनिको कन्याओंके सजे-सजाये महलमें पहुँचा दिया। फिर तो उन पचासों राजकन्याओंने एक सौभरिको ही अपना पति चुन लिया ॥ ४३ ॥ उन कन्याओंका मन सौभरिजीमें इस प्रकार आसक्त हो गया कि वे उनके लिये आपसके प्रेमभावको तिलाञ्जलि देकर परस्पर कलह करने लगीं और एक-दूसरीसे कहने लगी कि 'ये तुम्हारे योग्य नहीं, मेरे योग्य हैं ॥ ४४ ॥ ऋग्वेदी सौभरिने उन सभीका पाणिग्रहण कर लिया। वे अपनी अपार तपस्याके प्रभावसे बहुमूल्य सामग्रियोंसे सुसज्जित, अनेकों उपवनों और निर्मल जलसे परिपूर्ण सरोवरोंसे युक्त एवं सौगन्धिक पुष्पोंके बगीचोंसे घिरे महलोंमें बहुमूल्य शय्या, आसन वस्त्र, आभूषण, स्नान, अनुलेपन, सुस्वादु भोजन और

१. मजीजनत् । २. वृतः स ।

महार्हशय्यासनवस्त्रभूषण-
स्नानानुलेपाभ्यवहारमाल्यकैः ।
स्वलङ्कृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा
रेमेऽनुगायद्द्विजभृङ्गवन्दिषु ॥ ४६

पुष्पमालाओंके द्वारा अपनी पत्नियोंके साथ विहार करने लगे। सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये स्त्री-पुरुष सर्वदा उनकी सेवामें लगे रहते। कहीं पक्षी चहकते रहते तो कहीं भौंरे गुंजार करते रहते और कहीं-कहीं वन्दीजन उनकी विरदावलीका बखान करते रहते ॥ ४५-४६ ॥

यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः ।
विस्मितः स्तम्भमजहात् सार्वभौमश्रियान्वितम् ॥ ४७

सप्तद्वीपवती पृथ्वीके स्वामी मान्धाता सौभरिजीकी इस गृहस्थीका सुख देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उनका यह गर्व कि, मैं सार्वभौम सम्पत्तिका स्वामी हूँ, जाता रहा ॥ ४७ ॥

एवं गृहेष्वभिरतो विषयान् विविधैः सुखैः ।
सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥ ४८

इस प्रकार सौभरिजी गृहस्थीके सुखमें रम गये और अपनी नीरोग इन्द्रियोंसे अनेकों विषयोंका सेवन करते रहे। फिर भी जैसे घीकी बूँदोंसे आग तृप्त नहीं होती, वैसे ही उन्हें सन्तोष नहीं हुआ ॥ ४८ ॥

स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः ।
ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसङ्गसमुत्थितम् ॥ ४९

ऋग्वेदाचार्य सौभरिजी एक दिन स्वस्थ चित्तसे बैठे हुए थे। उस समय उन्होंने देखा कि मत्स्यराजके क्षणभरके सङ्गसे मैं किस प्रकार अपनी तपस्या तथा अपना आपातक खो बैठा ॥ ४९ ॥ वे सोचने लगे—'अरे, मैं तो बड़ा तपस्वी था। मैंने भलीभाँति अपने व्रतोंका अनुष्ठान भी किया था। मेरा यह अधःपतन तो देखो ! मैंने दीर्घकालसे अपने ब्रह्मतेजको अक्षुण्ण रखा था, परन्तु जलके भीतर विहार करती हुई एक मछलीके संसर्गसे मेरा वह ब्रह्मतेज नष्ट हो गया ॥ ५० ॥ अतः जिसे मोक्षकी इच्छा है, उस पुरुषको चाहिये कि वह भोगी प्राणियोंका सङ्ग सर्वथा छोड़ दे और एक क्षणके लिये भी अपनी इन्द्रियोंको बहिर्मुख न होने दे। अकेला ही रहे और एकान्तमें अपने चित्तको सर्वशक्तिमान् भगवान्‌में ही लगा दे। यदि सङ्ग करनेकी आवश्यकता ही हो तो भगवान्‌के अनन्यप्रेमी निष्ठावान् महात्माओंका ही सङ्ग करे ॥ ५१ ॥ मैं पहले एकान्तमें अकेला ही तपस्यामें संलग्न था। फिर जलमें मछलीका सङ्ग होनेसे विवाह करके पचास हो गया और फिर सन्तानोंके रूपमें पाँच हजार। विषयोंमें सत्यबुद्धि होनेसे मायाके गुणोंने मेरी बुद्धि हर ली। अब तो लोक और परलोकके सम्बन्धमें मेरा मन इतनी लालसाओंसे भर गया है कि मैं किसी तरह उनका पार ही नहीं पाता ॥ ५२ ॥ इस प्रकार विचार करते हुए वे कुछ दिनोंतक तो घरमें ही रहे। फिर विरक्त होकर उन्होंने संन्यास ले लिया और वे वनमें चले गये। अपने पतिको ही सर्वस्व माननेवाली उनकी पत्नियोंने भी उनके साथ ही वनकी यात्रा की ॥ ५३ ॥ वहाँ जाकर परम संयमी सौभरिजीने बड़ी घोर तपस्या की, शरीरको सुखा दिया तथा आहवनीय आदि अग्नियोंके साथ ही अपने-आपको परमात्मामें लीन कर दिया ॥ ५४ ॥

अहो इमं पश्यत मे[1] विनाशं
तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य ।
अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात्
प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥ ५०

सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः
सर्वात्मना न विसृजेद् बहिरिन्द्रियाणि ।
एकश्चरन् रहसि चित्तमनन्त ईशे
युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत् प्रसङ्गः ॥ ५१

एकस्तपस्व्यहमथाप्यसि मत्स्यसङ्गात्
पञ्चाशदासमुत पञ्चसहस्रसर्गः ।
नान्तं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां
मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः ॥ ५२

एवं वसन् गृहे कालं[2] विरक्तो न्यासमास्थितः ।
वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥ ५३

तत्र [3]तप्त्वातपस्तीक्ष्णमात्मकर्शनमात्मवान्[4] ।
सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥ ५४

१. सङ्गदोषं । २. कामं । ३. तीव्र° । ४. वित् ।

ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम् ।
अन्वीयुस्तत्प्रभावेण अग्निं शान्तमिवार्चिषः ॥ ५५

परीक्षित् ! उनकी पत्नियोंने जब अपने पति सौभरि मुनिकी आध्यात्मिक गति देखी, तब जैसे ज्वालाएँ शान्त अग्निमें लीन हो जाती हैं—वैसे ही वे उनके प्रभावसे सती होकर उन्हींमें लीन हो गयीं, उन्हींकी गतिको प्राप्त हुईं ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे
सौभर्याख्याने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

राजा त्रिशङ्कु और हरिश्चन्द्रकी कथा

श्रीशुक उवाच

मान्धातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः ।
पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च[1] तत्सुतः ।
हारीतस्तस्य[2] पुत्रोऽभून्मान्धातृप्रवरा इमे ॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! मैं वर्णन कर चुका हूँ कि मान्धाताके पुत्रोंमें सबसे श्रेष्ठ अम्बरीष थे। उनके दादा युवनाश्वने उन्हें पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया। उनका पुत्र हुआ यौवनाश्व और यौवनाश्वका हारीत। मान्धाताके वंशमें ये तीन अवान्तर गोत्रोंके प्रवर्तक हुए ॥ १ ॥ नागोंने अपनी बहिन नर्मदाका विवाह पुरुकुत्ससे कर दिया था। नागराज वासुकिकी आज्ञासे नर्मदा अपने पतिको रसातलमें ले गयी ॥ २ ॥ वहाँ भगवान्‌की शक्तिसे सम्पन्न होकर पुरुकुत्सने वध करनेयोग्य गन्धर्वोंको मार डाला। इसपर नागराजने प्रसन्न होकर पुरुकुत्सको वर दिया कि जो इस प्रसङ्गका स्मरण करेगा, वह सर्पोंसे निर्भय हो जायगा ॥ ३ ॥ राजा पुरुकुत्सका पुत्र त्रसदस्यु था। उसके पुत्र हुए अनरण्य। अनरण्यके हर्यश्व, उसके अरुण और अरुणके त्रिबन्धन हुए ॥ ४ ॥ त्रिबन्धनके पुत्र सत्यव्रत हुए। यही सत्यव्रत त्रिशङ्कुके नामसे विख्यात हुए। यद्यपि त्रिशङ्कु अपने पिता और गुरुके शापसे चाण्डाल हो गये थे, परन्तु विश्वामित्रजीके प्रभावसे वे सशरीर स्वर्गमें चले गये। देवताओंने उन्हें वहाँसे ढकेल दिया और वे नीचेको सिर किये हुए गिर पड़े; परन्तु विश्वामित्रजीने अपने तपोबलसे उन्हें आकाशमें ही स्थिर कर दिया। वे अब भी आकाशमें लटके हुए दीखते हैं ॥ ५-६ ॥

नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः ।
तया रसातलं नीतो भुजगेन्द्रप्रयुक्तया ॥ २

गन्धर्वानवधीत् तत्र वध्यान् वै विष्णुशक्तिधृक्[3] ।
नागाल्लब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम् ॥ ३

त्रसदस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत् ।
हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मादरुणोऽथ त्रिबन्धनः ॥ ४

तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशङ्कुरिति विश्रुतः ।
प्राप्तश्चाण्डालतां शापाद् गुरोः कौशिकतेजसा ॥ ५

सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते ।
पातितोऽवाक्शिरा देवैस्तेनैव स्तम्भितो बलात् ॥ ६

त्रैशङ्कवो हरिश्चन्द्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः ।
यन्निमित्तमभूद् युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥ ७

त्रिशङ्कुके पुत्र थे हरिश्चन्द्र। उनके लिए विश्वामित्र और वसिष्ठ एक-दूसरेको शाप देकर पक्षी हो गये और बहुत वर्षोंतक लड़ते रहे ॥ ७ ॥

१. युव० । २. हरीत० । ३. क्विभृत् ।

सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः ।
वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो ॥ ८

यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे इति ।
तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः ॥ ९

जातः सुतो ह्यनेनाङ्ग मां यजस्वेति सोऽब्रवीत् ।
यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो भवेदिति ॥ १०

निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ।
दन्ताः पशोर्यज्जायेरन्नथ मेध्यो भवेदिति ॥ ११

जाता दन्ता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ।
यदा पतन्त्यस्य दन्ता अथ मेध्यो भवेदिति ॥ १२

पशोर्निपतिता दन्ता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ।
यदा पशोः पुनर्दन्ता जायन्तेऽथ पशुः शुचिः ॥ १३

पुनर्जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ।
सान्नाहिको यदा राजन् राजन्योऽथ पशुः शुचिः ॥ १४

इति पुत्रानुरागेण स्नेहयन्त्रितचेतसा ।
कालं वञ्चयता तं तमुक्तो देवस्तमैक्षत ॥ १५

रोहितस्तदभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम् ।
प्राणप्रेप्सुर्धनुष्पाणिररण्यं प्रत्यपद्यत ॥ १६

पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम् ।
रोहितो ग्राममेयाय तमिन्द्रः प्रत्यषेधत ॥ १७

भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषेवणैः ।
रोहितायादिशच्छक्रः[1] सोऽप्यरण्येऽवसत्[2] समाम् ॥ १८

हरिश्चन्द्रके कोई सन्तान न थी। इससे वे बहुत उदास रहा करते थे। नारदके उपदेशसे वे वरुणदेवताकी शरणमें गये और उनसे प्रार्थना की कि 'प्रभो ! मुझे पुत्र प्राप्त हो ॥ ८ ॥ महाराज ! यदि मेरे वीर पुत्र होगा तो मैं उसीसे आपका यजन करूँगा।' वरुणने कहा—'ठीक है।' तब वरुणकी कृपासे हरिश्चन्द्रके रोहित नामका पुत्र हुआ ॥ ९ ॥ पुत्र होते ही वरुणने आकर कहा—'हरिश्चन्द्र ! तुम्हें पुत्र प्राप्त हो गया। अब इसके द्वारा मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'जब आपका यह यज्ञपशु (रोहित) दस दिनसे अधिकका हो जायगा, तब यज्ञके योग्य होगा' ॥ १० ॥ दस दिन बीतनेपर वरुणने आकर फिर कहा—'अब मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'जब आपके यज्ञपशुके मुँहमें दाँत निकल आयँगे, तब वह यज्ञके योग्य होगा' ॥ ११ ॥ दाँत उग आनेपर वरुणने कहा—'अब इसके दाँत निकल आये, मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'जब इसके दूधके दाँत गिर जायँगे, तब यह यज्ञके योग्य होगा' ॥ १२ ॥ दूधके दाँत गिर जानेपर वरुणने कहा—'अब इस यज्ञपशुके दाँत गिर गये, मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'जब इसके दुबारा दाँत आ जायँगे, तब यह पशु यज्ञके योग्य हो जायगा' ॥ १३ ॥ दाँतोंके फिर उग आनेपर वरुणने कहा—'अब मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'वरुणजी महाराज ! क्षत्रिय पशु तब यज्ञके योग्य होता है, जब वह कवच धारण करने लगे' ॥ १४ ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र पुत्रके प्रेमसे हीला-हवाला करके समय टालते रहे। इसका कारण यह था कि पुत्र-स्नेहकी फाँसीने उनके हृदयको जकड़ लिया था। वे जो-जो समय बताते वरुणदेवता उसीकी बाट देखते ॥ १५ ॥ जब रोहितको इस बातका पता चला कि पिताजी तो मेरा बलिदान करना चाहते हैं, तब वह अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये हाथमें धनुष लेकर वनमें चला गया ॥ १६ ॥ कुछ दिनके बाद उसे मालूम हुआ कि वरुणदेवताने रुष्ट होकर मेरे पिताजीपर आक्रमण किया है—जिसके कारण वे महोदर रोगसे पीड़ित हो रहे हैं, तब रोहित अपने नगरकी ओर चल पड़ा। परन्तु इन्द्रने आकर उसे रोक दिया ॥ १७ ॥ उन्होंने कहा—'बेटा रोहित ! यज्ञपशु बनकर मरनेकी अपेक्षा तो पवित्र तीर्थ और क्षेत्रोंका सेवन करते हुए पृथ्वीमें विचरना ही अच्छा है।' इन्द्रकी बात मानकर वह एक वर्षतक और वनमें ही रहा ॥ १८ ॥

---

१. रोहितं त्वादिश॰ । २. उचरत् ।

एवं द्वितीये तृतीये चतुर्थे पञ्चमे तथा ।
अभ्येत्याभ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाऽऽह वृत्रहा ॥ १९

इसी प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें वर्ष भी रोहितने अपने पिताके पास जानेका विचार किया; परन्तु बूढ़े ब्राह्मणका वेश धारण कर हर बार इन्द्र आते और उसे रोक देते ॥ १९ ॥

षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीम् ।
उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम् ॥ २०

इस प्रकार छः वर्षतक रोहित वनमें ही रहा। सातवें वर्ष जब वह अपने नगरको लौटने लगा, तब उसने अजीगर्तसे उनके मझले पुत्र शुनः शेपको मोल ले लिया और उसे यज्ञपशु बनानेके लिये अपने पिताको सौंपकर उनके चरणोंमें नमस्कार किया। तब परम यशस्वी एवं श्रेष्ठ चरित्रवाले राजा हरिश्चन्द्रने महोदर रोगसे छूटकर पुरुषमेध यज्ञद्वारा वरुण आदि देवताओंका यजन किया। उस यज्ञमें विश्वामित्रजी होता हुए। परम संयमी जमदग्निने अध्वर्युका काम किया। वसिष्ठजी ब्रह्मा बने और अयास्य मुनि सामगान करनेवाले उद्गाता बने। उस समय इन्द्रने प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्रको एक सोनेका रथ दिया था ॥ २०—२३ ॥

शुनःशेपं पशुं पित्रे प्रदाय समवन्दत ।
ततः पुरुषमेधेन हरिश्चन्द्रो महायशाः ॥ २१

मुक्तोदरोऽयजद् देवान् वरुणादीन् महत्कथः ।
विश्वामित्रोऽभवत् तस्मिन् होता चाध्वर्युरात्मवान् ॥ २२

जमदग्निरभूद् ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्यसामगः ।
तस्मै तुष्टो ददाविन्द्रः शातकौम्भमयं रथम् ॥ २३

परीक्षित् ! आगे चलकर मैं शुनःशेपका माहात्म्य वर्णन करूँगा। हरिश्चन्द्रको अपनी पत्नीके साथ सत्यमें दृढ़तापूर्वक स्थित देखकर विश्वामित्रजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें उस ज्ञानका उपदेश किया, जिसका कभी नाश नहीं होता। उसके अनुसार राजा हरिश्चन्द्रने अपने मनको पृथ्वीमें, पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें और वायुको आकाशमें स्थिर करके, आकाशको अहङ्कारमें लीन कर दिया। फिर अहङ्कारको महत्तत्त्वमें लीन करके उसमें ज्ञान-कलाका ध्यान किया और उससे अज्ञानको भस्म कर दिया ॥ २४—२६ ॥ इसके बाद निर्वाण-सुखकी अनुभूतिसे उस ज्ञान-कलाका भी परित्याग कर दिया और समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर वे अपने उस स्वरूपमें स्थित हो गये, जो न तो किसी प्रकार बतलाया जा सकता है और न उसके सम्बन्धमें किसी प्रकारका अनुमान ही किया जा सकता है ॥ २७ ॥

शुनःशेपस्य माहात्म्यमुपरिष्टात् प्रचक्ष्यते ।
सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः ॥ २४

विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम् ।
मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसापोऽनिलेन तत् ॥ २५

खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं महात्मनि ।
तस्मिञ्ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाज्ञानं विनिर्दहन् ॥ २६

हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा ।
अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः ॥ २७

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

सगर-चरित्र

श्रीशुक[1] उवाच

हरितो रोहितसुतश्चम्पस्तस्माद्[2] विनिर्मिता ।
चम्पापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः ॥ १

भरुकस्तत्सुतस्तस्माद्[3] वृकस्तस्यापि बाहुकः ।
सोऽरिभिर्हृतभूः राजा सभार्यो वनमाविशत् ॥ २

वृद्धं तं पञ्चतां प्राप्तं महिष्यनु मरिष्यती ।
और्वेण जानताऽऽत्मानं प्रजावन्तं निवारिता ॥ ३

आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोऽन्धसा सह ।
सह[4] तेनैव संजातः सगराख्यो महायशाः ॥ ४

सगरश्चक्रवर्त्यासीत् सागरो यत्सुतैः कृतः ।
यस्तालजङ्घान् यवनाञ्छकान् हैहयबर्बरान् ॥ ५

नावधीद् गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः ।
मुण्डाञ्छ्मश्रुधरान्कांश्चिन्मुक्तकेशार्धमुण्डितान् ॥ ६

अनन्तर्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोऽपरान् ।
सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम् ॥ ७

और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् ।
तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरन्दरः ॥ ८

सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः ।
हयमन्वेषमाणास्ते समन्तान्न्यखनन् महीम् ॥ ९

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—रोहितका पुत्र था हरित। हरितसे चम्प हुआ। उसीने चम्पापुरी बसायी थी। चम्पसे सुदेव और उसका पुत्र विजय हुआ ॥ १ ॥ विजयका भरुक, भरुकका वृक और वृकका पुत्र हुआ बाहुक। शत्रुओंने बाहुकसे राज्य छीन लिया, तब वह अपनी पत्नीके साथ वनमें चला गया ॥ २ ॥ वनमें जानेपर बुढ़ापेके कारण जब बाहुककी मृत्यु हो गयी, तब उसकी पत्नी भी उसके साथ सती होनेको उद्यत हुई। परन्तु महर्षि और्वको यह मालूम था कि इसे गर्भ है। इसलिये उन्होंने उसे सती होनेसे रोक दिया ॥ ३ ॥ जब उसकी सौतोंको यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने उसे भोजनके साथ गर (विष) दे दिया। परन्तु गर्भपर उस विषका कोई प्रभाव नहीं पड़ा; बल्कि उस विषको लिये हुए ही एक बालकका जन्म हुआ, जो गरके साथ पैदा होनेके कारण 'सगर' कहलाया। सगर बड़े यशस्वी राजा हुए ॥ ४ ॥

सगर चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्हींके पुत्रोंने पृथ्वी खोदकर समुद्र बना दिया था। सगरने अपने गुरुदेव और्वकी आज्ञा मानकर तालजङ्घ, यवन, शक, हैहय और बर्बर जातिके लोगोंका वध नहीं किया, बल्कि उन्हें विरूप बना दिया। उनमेंसे कुछके सिर मुड़वा दिये, कुछके मूँछ-दाढ़ी रखवा दी, कुछको खुले बालोंवाला बना दिया तो कुछको आधा मुँडवा दिया ॥ ५-६ ॥ कुछ लोगोंको सगरने केवल वस्त्र ओढ़नेकी ही आज्ञा दी, पहननेकी नहीं। और कुछको केवल लँगोटी पहननेको ही कहा, ओढ़नेको नहीं। इसके बाद राजा सगरने और्व ऋषिके उपदेशानुसार अश्वमेध यज्ञके द्वारा सम्पूर्ण वेद एवं देवतामय, आत्मस्वरूप, सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की आराधना की। उसके यज्ञमें जो घोड़ा छोड़ा गया था, उसे इन्द्रने चुरा लिया ॥ ७-८ ॥ उस समय महारानी सुमतिके गर्भसे उत्पन्न सगरके पुत्रोंने अपने पिताके आज्ञानुसार घोड़ेके लिये सारी पृथ्वी छान डाली। जब उन्हें कहीं घोड़ा न मिला, तब उन्होंने बड़े घमण्डसे सब ओरसे पृथ्वीको खोद डाला ॥ ९ ॥

---

१. बादरायणिरुवाच। २. मपस्तेन। ३. करुकः। ४. न हतस्तेन।

प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलान्तिके ।
एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः ॥ १०

हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टिसहस्रिणः ।
उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः ॥ ११

स्वशरीराग्निना तावन्महेन्द्रहृतचेतसः ।
महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन् क्षणात् ॥ १२

न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता
नृपेन्द्रपुत्रा इति सत्त्वधामनि ।
कथं तमो रोषमयं विभाव्यते
जगत्पवित्रात्मनि खे रजो भुवः ॥ १३

यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौ-
र्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम् ।
भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः
परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः ॥ १४

योऽसमञ्जस इत्युक्तः स केशिन्या नृपात्मजः ।
तस्य पुत्रोंऽशुमान् नाम पितामहहिते रतः ॥ १५

असमञ्जस आत्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम् ।
जातिस्मरः पुरा सङ्गाद् योगी योगाद् विचालितः ॥ १६

आचरन् गर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियम् ।
सरय्वां क्रीडतो बालान् प्रास्यदुद्वेजयञ्जनम् ॥ १७

एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य वै ।
योगैश्वर्येण बालांस्तान् दर्शयित्वा ततो ययौ ॥ १८

अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान् पुनरागतान् ।
दृष्ट्वा विसिस्मिरे राजन् राजा चाप्यन्वतप्यत[1] ॥ १९

खोदते-खोदते उन्हें पूर्व और उत्तरके कोनेपर कपिलमुनिके पास अपना घोड़ा दिखायी दिया। घोड़ेको देखकर वे साठ हजार राजकुमार शस्त्र उठाकर यह कहते हुए उनकी ओर दौड़ पड़े कि 'यही हमारे घोड़ेको चुरानेवाला चोर है। देखो तो सही, इसने इस समय कैसे आँखें मूँद रखी हैं! यह पापी है। इसको मार डालो, मार डालो!' उसी समय कपिलमुनिने अपनी पलकें खोलीं ॥ १०-११ ॥ इन्द्रने राजकुमारोंकी बुद्धि हर ली थी, इसीसे उन्होंने कपिलमुनि-जैसे महापुरुषका तिरस्कार किया। इस तिरस्कारके फलस्वरूप उनके शरीरमें ही आग जल उठी, जिससे क्षणभरमें ही वे सब-के-सब जलकर खाक हो गये ॥ १२ ॥ परीक्षित्! सगरके लड़के कपिलमुनिके क्रोधसे जल गये, ऐसा कहना उचित नहीं है। वे तो शुद्ध सत्त्वगुणके परम आश्रय हैं। उनका शरीर तो जगत्को पवित्र करता रहता है। उनमें भला, क्रोधरूप तमोगुणकी सम्भावना कैसे की जा सकती है। भला, कहीं पृथ्वीकी धूलका भी आकाशसे सम्बन्ध होता है? ॥ १३ ॥ यह संसार-सागर एक मृत्युमय पथ है। इसके पार जाना अत्यन्त कठिन है। परन्तु कपिलमुनिने इस जगत्में सांख्यशास्त्रकी एक ऐसी दृढ़ नाव बना दी है, जिससे मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला कोई भी व्यक्ति उस समुद्रके पार जा सकता है। वे केवल परम ज्ञानी ही नहीं, स्वयं परमात्मा हैं। उनमें भला, यह शत्रु है और यह मित्र— इस प्रकारकी भेदबुद्धि कैसे हो सकती है? ॥ १४ ॥

सगरकी दूसरी पत्नीका नाम था केशिनी। उसके गर्भसे उन्हें असमञ्जस नामका पुत्र हुआ था। असमञ्जसके पुत्रका नाम था अंशुमान्। वह अपने दादा सगरकी आज्ञाओंके पालन तथा उन्हींकी सेवामें लगा रहता ॥ १५ ॥ असमञ्जस पहले जन्ममें योगी थे। सङ्गके कारण वे योगसे विचलित हो गये थे, परन्तु अब भी उन्हें अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना हुआ था। इसलिये वे ऐसे काम किया करते थे, जिनसे भाई-बन्धु उन्हें प्रिय न समझें। वे कभी-कभी तो अत्यन्त निन्दित कर्म कर बैठते और अपनेको पागल-सा दिखलाते—यहाँतक कि खेलते हुए बच्चोंको सरयूमें डाल देते! इस प्रकार उन्होंने लोगोंको उद्विग्न कर दिया था ॥ १६-१७ ॥ अन्तमें उनकी ऐसी करतूत देखकर पिताने पुत्र-स्नेहको तिलाञ्जलि दे दी और उन्हें त्याग दिया। तदनन्तर असमञ्जसने अपने योगबलसे उन सब बालकोंको जीवित कर दिया और अपने पिताको दिखाकर वे वनमें चले गये ॥ १८ ॥ अयोध्याके नागरिकोंने जब देखा कि हमारे बालक तो फिर लौट आये, तब उन्हें असीम आश्चर्य हुआ और राजा सगरको भी बड़ा पश्चात्ताप हुआ ॥ १९ ॥

---

१. चाथान्व०।

अंशुमांश्चोदितो राज्ञा तुरङ्गान्वेषणे ययौ ।
पितृव्यखातानुपथं भस्मान्ति ददृशे हयम् ॥ २०

तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम् ।
अस्तौत् समाहितमनाः प्राञ्जलिः प्रणतो महान् ॥ २१

अंशुमानुवाच

न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो
न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः ।
कुतोऽपरे तस्य मनःशरीरधी-
विसर्गसृष्टा[1] वयमप्रकाशाः ॥ २२

ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना
गुणान् विपश्यन्त्युत[2] वा तमश्च ।
यन्मायया मोहितचेतसस्ते
विदुः स्वसंस्थं न बहिःप्रकाशाः ॥ २३

तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभाव-
प्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः[3] ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं
कथं हि मूढः परिभावयामि ॥ २४

प्रशान्तमायागुणकर्मलिङ्ग-
मनामरूपं सदसद्विमुक्तम्[4] ।
ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं[5]
नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥ २५

त्वन्मायारचिते[6] लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु ।
भ्रमन्ति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रान्तचेतसः ॥ २६

अद्य नः सर्वभूतात्मन् कामकर्मेन्द्रियाशयः ।
मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥ २७

इसके बाद राजा सगरकी आज्ञासे अंशुमान् घोड़ेको ढूँढ़नेके लिये निकले। उन्होंने अपने चाचाओंके द्वारा खोदे हुए समुद्रके किनारे-किनारे चलकर उनके शरीरके भस्मके पास ही घोड़ेको देखा ॥ २० ॥ वहीं भगवान्‌के अवतार कपिलमुनि बैठे हुए थे। उनको देखकर उदारहृदय अंशुमान्‌ने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर एकाग्र मनसे उनकी स्तुति की ॥ २१ ॥

अंशुमान्‌ने कहा—भगवन्! आप अजन्मा ब्रह्माजीसे भी परे हैं। इसीलिये वे आपको प्रत्यक्ष नहीं देख पाते। देखनेकी बात तो अलग रही— वे समाधि करते-करते एवं युक्ति लड़ाते-लड़ाते हार गये, किन्तु आजतक आपको समझ भी नहीं पाये। हमलोग तो उनके मन, शरीर और बुद्धिसे होनेवाली सृष्टिके द्वारा बने हुए अज्ञानी जीव हैं। तब भला, हम आपको कैसे समझ सकते हैं ॥ २२ ॥ संसारके शरीरधारी सत्त्वगुण, रजोगुण या तमोगुण-प्रधान हैं। वे जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाओंमें केवल गुणमय पदार्थों, विषयोंको और सुषुप्ति-अवस्थामें केवल अज्ञान-ही-अज्ञान देखते हैं। इसका कारण यह है कि वे आपकी मायासे मोहित हो रहे हैं। वे बहिर्मुख होनेके कारण बाहरकी वस्तुओंको तो देखते हैं, पर अपने ही हृदयमें स्थित आपको नहीं देख पाते ॥ २३ ॥ आप एकरस, ज्ञानघन हैं। सनन्दन आदि मुनि, जो आत्मस्वरूपके अनुभवसे मायाके गुणोंके द्वारा होनेवाले भेदभावको और उसके कारण अज्ञानको नष्ट कर चुके हैं, आपका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। मायाके गुणोंमें ही भूला हुआ मैं मूढ़ किस प्रकार आपका चिन्तन करूँ ? ॥ २४ ॥ माया, उसके गुण और गुणोंके कारण होनेवाले कर्म एवं कर्मोंके संस्कारसे बना हुआ लिङ्गशरीर आपमें है ही नहीं। न तो आपका नाम है और न तो रूप। आपमें न कार्य है और न तो कारण। आप सनातन आत्मा हैं। ज्ञानका उपदेश करनेके लिये ही आपने यह शरीर धारण कर रखा है। हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २५ ॥ प्रभो! यह संसार आपकी मायाकी करामात है। इसको सत्य समझकर काम, लोभ, ईर्ष्या और मोहसे लोगोंका चित्त, शरीर तथा घर आदिमें भटकने लगता है। लोग इसीके चक्करमें फँस जाते हैं ॥ २६ ॥ समस्त प्राणियोंके आत्मा प्रभो! आज आपके दर्शनसे मेरे मोहकी वह दृढ़ फाँसी कट गयी जो कामना, कर्म और इन्द्रियोंको जीवनदान देती है ॥ २७ ॥

---

१. सृष्टावयवप्रकाशकाः । २. प्रपश्य० । ३. मयमोहभेदैः । ४. द्वियुक्तम् । ५. तलिङ्गं । ६. यत्त्वया रचि० ।

श्रीशुक उवाच

इत्थं गीतानुभावस्तं भगवान् कपिलो मुनिः ।
अंशुमन्तमुवाचेदमनुगृह्य धिया नृप ॥ २८

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब अंशुमान्‌ने भगवान् कपिलमुनिके प्रभावका इस प्रकार गान किया, तब उन्होंने मन-ही-मन अंशुमान्‌पर बड़ा अनुग्रह किया और कहा—॥ २८ ॥

श्रीभगवानुवाच

अश्वोऽयं नीयतां वत्स पितामहपशुस्तव ।
इमे च पितरो दग्धा गङ्गाम्भोऽर्हन्ति नेतरत् ॥ २९

तं परिक्रम्य शिरसा प्रसाद्य हयमानयत् ।
सगरस्तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत् ॥ ३०

राज्यमंशुमति न्यस्य निःस्पृहो मुक्तबन्धनः ।
और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥ ३१

श्रीभगवान्‌ने कहा—'बेटा ! यह घोड़ा तुम्हारे पितामहका यज्ञपशु है । इसे तुम ले जाओ । तुम्हारे जले हुए चाचाओंका उद्धार केवल गङ्गाजलसे होगा, और कोई उपाय नहीं है' ॥ २९ ॥ अंशुमान्‌ने बड़ी नम्रतासे उन्हें प्रसन्न करके उनकी परिक्रमा की और वे घोड़ेको ले आये । सगरने उस यज्ञपशुके द्वारा यज्ञकी शेष क्रिया समाप्त की ॥ ३० ॥

तब राजा सगरने अंशुमान्‌को राज्यका भार सौंप दिया और वे स्वयं विषयोंसे निःस्पृह एवं बन्धनमुक्त हो गये । उन्होंने महर्षि और्वके बतलाये हुए मार्गसे परमपदकी प्राप्ति की ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे
सगरोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

भगीरथ-चरित्र और गङ्गावतरण

श्रीशुक उवाच

अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया ।
कालं महान्तं नाशक्नोत् ततः कालेन संस्थितः ॥ १

दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान् ।
भगीरथस्तस्य पुत्रस्तेपे स सुमहत् तपः ॥ २

दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदास्मि ते ।
इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः ॥ ३

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अंशुमान्‌ने गङ्गाजीको लानेकी कामनासे बहुत वर्षोंतक घोर तपस्या की । परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली, समय आनेपर उनकी मृत्यु हो गयी ॥ १ ॥ अंशुमान्‌के पुत्र दिलीपने भी वैसी ही तपस्या की । परन्तु वे भी असफल ही रहे, समयपर उनकी भी मृत्यु हो गयी । दिलीपके पुत्र थे भगीरथ । उन्होंने बहुत बड़ी तपस्या की ॥ २ ॥ उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती गङ्गाने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि—'मैं तुम्हें वर देनेके लिये आयी हूँ ।' उनके ऐसा कहनेपर राजा भगीरथने बड़ी नम्रतासे अपना अभिप्राय प्रकट किया कि 'आप मर्त्यलोकमें चलिये' ॥ ३ ॥

कोऽपि धारयिता वेगं पतन्त्या मे महीतले ।
अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥ ४

किं चाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघम् ।
मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् ॥ ५

भगीरथ उवाच

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥ ६

धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् ।
यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तन्तुषु ॥ ७

इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसातोषयच्छिवम् ।
कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशः[1] समतुष्यत ॥ ८

तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोकहितः शिवः ।
दधारावहितो गङ्गां पादपूतजलां हरेः ॥ ९

भगीरथः[2] स राजर्षिर्निन्ये भुवनपावनीम् ।
यत्र स्वपितॄणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥ १०

रथेन वायुवेगेन प्रयान्तमनुधावती ।
देशान् पुनन्ती निर्दग्धानासिञ्चत् सगरात्मजान् ॥ ११

यज्जलस्पर्शमात्रेण[3] ब्रह्मदण्डहता अपि ।
सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥ १२

भस्मीभूताङ्गसङ्गेन स्वर्याताः सगरात्मजाः ।
किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवन्ते धृतव्रताः ॥ १३

[गङ्गाजीने कहा—] 'जिस समय मैं स्वर्गसे पृथ्वीतलपर गिरूँ, उस समय मेरे वेगको कोई धारण करनेवाला होना चाहिये। भगीरथ ! ऐसा न होनेपर मैं पृथ्वीको फोड़कर रसातलमें चली जाऊँगी ॥ ४ ॥ इसके अतिरिक्त इस कारणसे भी मैं पृथ्वीपर नहीं जाऊँगी कि लोग मुझमें अपने पाप धोयेंगे। फिर मैं उस पापको कहाँ धोऊँगी। भगीरथ ! इस विषयमें तुम स्वयं विचार कर लो' ॥ ५ ॥

भगीरथने कहा—'माता ! जिन्होंने लोक-परलोक, धन-सम्पत्ति और स्त्री-पुत्रकी कामनाका संन्यास कर दिया है, जो संसारसे उपरत होकर अपने-आपमें शान्त हैं, जो ब्रह्मनिष्ठ और लोकोंको पवित्र करनेवाले परोपकारी सज्जन हैं—वे अपने अङ्गस्पर्शसे तुम्हारे पापोंको नष्ट कर देंगे। क्योंकि उनके हृदयमें अघरूप अघासुरको मारनेवाले भगवान् सर्वदा निवास करते हैं ॥ ६ ॥ समस्त प्राणियोंके आत्मा रुद्रदेव तुम्हारा वेग धारण कर लेंगे। क्योंकि जैसे साड़ी सूतोंमें ओतप्रोत है, वैसे ही यह सारा विश्व भगवान् रुद्रमें ही ओतप्रोत है' ॥ ७ ॥ परीक्षित् ! गङ्गाजीसे इस प्रकार कहकर राजा भगीरथने तपस्याके द्वारा भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया। थोड़े ही दिनोंमें महादेवजी उनपर प्रसन्न हो गये ॥ ८ ॥ भगवान् शङ्कर तो सम्पूर्ण विश्वके हितैषी हैं, राजाकी बात उन्होंने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार कर ली। फिर शिवजीने सावधान होकर गङ्गाजीको अपने सिरपर धारण किया। क्यों न हो, भगवान्‌के चरणोंका सम्पर्क होनेके कारण गङ्गाजीका जल परम पवित्र जो है ॥ ९ ॥ इसके बाद राजर्षि भगीरथ त्रिभुवनपावनी गङ्गाजीको वहाँ ले गये, जहाँ उनके पितरोंके शरीर राखके ढेर बने पड़े थे ॥ १० ॥ वे वायुके समान वेगसे चलनेवाले रथपर सवार होकर आगे-आगे चल रहे थे और उनके पीछे-पीछे मार्गमें पड़नेवाले देशोंको पवित्र करती हुई गङ्गाजी दौड़ रही थीं। इस प्रकार गङ्गासागर-सङ्गमपर पहुँचकर उन्होंने सगरके जले हुए पुत्रोंको अपने जलमें डुबा दिया ॥ ११ ॥ यद्यपि सगरके पुत्र ब्राह्मणके तिरस्कारके कारण भस्म हो गये थे, इसलिये उनके उद्धारका कोई उपाय न था—फिर भी केवल शरीरकी राखके साथ गङ्गाजलका स्पर्श हो जानेसे ही वे स्वर्गमें चले गये ॥ १२ ॥ परीक्षित् ! जब गङ्गाजलसे शरीरकी राखका स्पर्श हो जानेसे सगरके पुत्रोंको स्वर्गकी प्राप्ति हो गयी, तब जो लोग श्रद्धाके साथ नियम लेकर श्रीगङ्गाजीका सेवन करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ १३ ॥

---

१. शश्वानुतु० । २. रथोऽथ गु० । ३. ते जल० ।

न ह्येतत् परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् ।
अनन्तचरणाम्भोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥ १४

संनिवेश्य मनो यस्मिञ्छ्रद्धया मुनयोऽमलाः ।
त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम् ॥ १५

श्रुतो भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् ।
सिन्धुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १६

ऋतुपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात् ।
दत्त्वाक्षहृदयं चास्मै[1] सर्वकामस्तु तत्सुतः ॥ १७

ततः सुदासस्तत्पुत्रो मदयन्तीपतिर्नृप ।
आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषाङ्घ्रिमुत क्वचित् ।
वसिष्ठशापाद् रक्षोऽभूदनपत्यः स्वकर्मणा ॥ १८

मैंने गङ्गाजीकी महिमाके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है, उसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। क्योंकि गङ्गाजी भगवान्‌के उन चरणकमलोंसे निकली हैं, जिनका श्रद्धाके साथ चिन्तन करके बड़े-बड़े मुनि निर्मल हो जाते हैं और तीनों गुणोंके कठिन बन्धनको काटकर तुरन्त भगवत्स्वरूप बन जाते हैं। फिर गङ्गाजी संसारका बन्धन काट दें, इसमें कौन बड़ी बात है ॥ १४-१५ ॥

भगीरथका पुत्र था श्रुत, श्रुतका नाभ। यह नाभ पूर्वोक्त नाभसे भिन्न है। नाभका पुत्र था सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीपका अयुतायु। अयुतायुके पुत्रका नाम था ऋतुपर्ण। वह नलका मित्र था। उसने नलको पासा फेंकनेकी विद्याका रहस्य बतलाया था और बदलेमें उससे अश्वविद्या सीखी थी। ऋतुपर्णका पुत्र सर्वकाम हुआ ॥ १६-१७ ॥ परीक्षित्! सर्वकामके पुत्रका नाम था सुदास। सुदासके पुत्रका नाम था सौदास और सौदासकी पत्नीका नाम था मदयन्ती। सौदासको ही कोई-कोई मित्रसह कहते हैं और कहीं-कहीं उसे कल्माषपाद भी कहा गया है। वह वसिष्ठके शापसे राक्षस हो गया था और फिर अपने कर्मोंके कारण सन्तानहीन हुआ ॥ १८ ॥

राजोवाच

किं निमित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः ।
एतद् वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥ १९

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! हम यह जानना चाहते हैं कि महात्मा सौदासको गुरु वसिष्ठजीने शाप क्यों दिया। यदि कोई गोपनीय बात न हो तो कृपया बतलाइये ॥ १९ ॥

श्रीशुक उवाच

सौदासो मृगयां कञ्चिच्चरन् रक्षो जघान ह ।
मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥ २०

स चिन्तयन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो गृहे ।
गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥ २१

परिवेक्ष्यमाणं भगवान् विलोक्याभक्ष्यमञ्जसा ।
राजानमशपत् क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥ २२

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! एक बार राजा सौदास शिकार खेलने गये हुए थे। वहाँ उन्होंने किसी राक्षसको मार डाला और उसके भाईको छोड़ दिया। उसने राजाके इस कामको अन्याय समझा और उनसे भाईकी मृत्युका बदला लेनेके लिये वह रसोइयेका रूप धारण करके उनके घर गया। जब एक दिन भोजन करनेके लिये गुरु वसिष्ठजी राजाके यहाँ आये, तब उसने मनुष्यका मांस राँधकर उन्हें परस दिया ॥ २०-२१ ॥ जब सर्वसमर्थ वसिष्ठजीने देखा कि परोसी जानेवाली वस्तु तो नितान्त अभक्ष्य है, तब उन्होंने क्रोधित होकर राजाको शाप दिया कि 'जा, इस कामसे तू राक्षस हो जायगा' ॥ २२ ॥

---

१. तस्मै ।

रक्षःकृतं तद् विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् ।
सोऽप्यपोऽञ्जलिनाऽऽदाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥ २३

वारितो मदयन्त्यापो रुशतीः पादयोर्जहौ ।
दिशः खमवनीं सर्वं पश्यञ्जीवमयं नृपः ॥ २४

राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः ।
व्यवायकाले ददृशे वनौकोदम्पती द्विजौ ॥ २५

क्षुधार्तो जगृहे विप्रं तत्पत्न्याहाकृतार्थवत् ।
न भवान् राक्षसः साक्षादिक्ष्वाकूणां महारथः ॥ २६

मदयन्त्याः पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि[1] ।
देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम् ॥ २७

देहोऽयं मानुषो राजन् पुरुषस्याखिलार्थदः ।
तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते ॥ २८

एष हि ब्राह्मणो विद्वांस्तपःशीलगुणान्वितः ।
आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम् ।
सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वन्तर्हितं गुणैः ॥ २९

सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद् विभो ।
कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः ॥ ३०

तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः ।
कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते[2] सन्मतो भवान् ॥ ३१

यद्ययं क्रियते भक्षस्तर्हि मां खाद पूर्वतः ।
न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा ॥ ३२

एवं करुणभाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत् ।
व्याघ्रः पशुमिवाखादत् सौदासः शापमोहितः ॥ ३३

जब उन्हें यह बात मालूम हुई कि यह काम तो राक्षसका है—राजाका नहीं, तब उन्होंने उस शापको केवल बारह वर्षके लिये कर दिया। उस समय राजा सौदास भी अपनी अञ्जलिमें जल लेकर गुरु वसिष्ठको शाप देनेके लिये उद्यत हुए ॥ २३ ॥ परन्तु उनकी पत्नी मदयन्तीने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया। इसपर सौदासने विचार किया कि 'दिशाएँ, आकाश और पृथ्वी—सब-के-सब तो जीवमय ही हैं। तब यह तीक्ष्ण जल कहाँ छोड़ूँ ?' अन्तमें उन्होंने उस जलको अपने पैरोंपर डाल लिया। [इसीसे उनका नाम 'मित्रसह' हुआ] ॥ २४ ॥ उस जलसे उनके पैर काले पड़ गये थे, इसलिये उनका नाम 'कल्माषपाद' भी हुआ। अब वे राक्षस हो चुके थे। एक दिन राक्षस बने हुए राजा कल्माषपादने एक वनवासी ब्राह्मण-दम्पतिको सहवासके समय देख लिया ॥ २५ ॥ कल्माषपादको भूख तो लगी ही थी, उसने ब्राह्मणको पकड़ लिया। ब्राह्मण-पत्नीकी कामना अभी पूर्ण नहीं हुई थी। उसने कहा—'राजन्! आप राक्षस नहीं हैं। आप महारानी मदयन्तीके पति और इक्ष्वाकुवंशके वीर महारथी हैं। आपको ऐसा अधर्म नहीं करना चाहिये। मुझे सन्तानकी कामना है और इस ब्राह्मणकी भी कामनाएँ अभी पूर्ण नहीं हुई हैं इसलिये आप मुझे मेरा यह ब्राह्मण पति दे दीजिये ॥ २६-२७ ॥ राजन्! यह मनुष्य-शरीर जीवको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाला है। इसलिये वीर! इस शरीरको नष्ट कर देना सभी पुरुषार्थोंकी हत्या कही जाती है ॥ २८ ॥ फिर यह ब्राह्मण तो विद्वान् है। तपस्या, शील और बड़े-बड़े गुणोंसे सम्पन्न है। यह उन पुरुषोत्तम परब्रह्मकी समस्त प्राणियोंके आत्माके रूपमें आराधना करना चाहता है, जो समस्त पदार्थोंमें विद्यमान रहते हुए भी उनके पृथक्-पृथक् गुणोंसे छिपे हुए हैं ॥ २९ ॥ राजन्! आप शक्तिशाली हैं। आप धर्मका मर्म भलीभाँति जानते हैं। जैसे पिताके हाथों पुत्रकी मृत्यु उचित नहीं, वैसे ही आप-जैसे श्रेष्ठ राजर्षिके हाथों मेरे श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि पतिका वध किसी प्रकार उचित नहीं है ॥ ३० ॥ आपका साधु-समाजमें बड़ा सम्मान है। भला आप मेरे परोपकारी, निरपराध, श्रोत्रिय एवं ब्रह्मवादी पतिका वध कैसे ठीक समझ रहे हैं ? ये तो गौके समान निरीह हैं ॥ ३१ ॥ फिर भी यदि आप इन्हें खा ही डालना चाहते हैं, तो पहले मुझे खा डालिये। क्योंकि अपने पतिके बिना मैं मुर्देके समान हो जाऊँगी और एक क्षण भी जीवित न रह सकूँगी' ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणपत्नी बड़ी ही करुणापूर्ण वाणीमें इस प्रकार कहकर अनाथकी भाँति रोने लगी। परन्तु सौदासने शापसे मोहित होनेके कारण उसकी प्रार्थनापर कुछ भी ध्यान न दिया और वह उस ब्राह्मणको वैसे ही खा गया, जैसे बाघ किसी

१. ति। २. बभ्रोर्धर्मज्ञो मन्यते भवान्।

ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम् ।
शोचन्त्यात्मानमुर्वीशमशपत् कुपिता सती ॥ ३४

यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया ।
तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः ॥ ३५

एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा ।
तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं[1] गता ॥ ३६

विशापो द्वादशाब्दान्ते मैथुनाय समुद्यतः ।
विज्ञाय[2] ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥ ३७

तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाप्रजाः[3] ।
वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥ ३८

सा वै सप्त समा गर्भमबिभ्रन्न व्यजायत ।
जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥ ३९

अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः ।
नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥ ४०

ततो दशरथस्तस्मात् पुत्र ऐडविडस्ततः[4] ।
राजा विश्वसहो यस्य खट्वाङ्गश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ ४१

यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद् युधि दुर्जयः ।
मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं संदधे मनः ॥ ४२

न मे ब्रह्मकुलात् प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजाः ।
न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ॥ ४३

न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् ।
नापश्यमुत्तमश्लोकादन्यत् किञ्चन वस्त्वहम् ॥ ४४

पशुको खा जाय ॥ ३३ ॥ जब ब्राह्मणीने देखा कि राक्षसने मेरे गर्भाधानके लिये उद्यत पतिको खा लिया, तब उसे बड़ा शोक हुआ। सती ब्राह्मणीने क्रोध करके राजाको शाप दे दिया ॥ ३४ ॥ 'रे पापी ! मैं अभी कामसे पीड़ित हो रही थी। ऐसी अवस्थामें तूने मेरे पतिको खा डाला है। इसलिये मूर्ख ! जब तू स्त्रीसे सहवास करना चाहेगा, तभी तेरी मृत्यु हो जायगी, यह बात मैं तुझे सुझाये देती हूँ' ॥ ३५ ॥ इस प्रकार मित्रसहको शाप देकर ब्राह्मणी अपने पतिकी अस्थियोंको धधकती हुई चितामें डालकर स्वयं भी सती हो गयी और उसने वही गति प्राप्त की, जो उसके पतिदेवको मिली थी। क्यों न हो, वह अपने पतिको छोड़कर और किसी लोकमें जाना भी तो नहीं चाहती थी ॥ ३६ ॥

बारह वर्ष बीतनेपर राजा सौदास शापसे मुक्त हो गये। जब वे सहवासके लिये अपनी पत्नीके पास गये, तब उसने इन्हें रोक दिया। क्योंकि उसे उस ब्राह्मणीके शापका पता था ॥ ३७ ॥ इसके बाद उन्होंने स्त्री-सुखका बिलकुल परित्याग ही कर दिया। इस प्रकार अपने कर्मके फलस्वरूप वे सन्तानहीन हो गये। तब वसिष्ठजीने उनके कहनेसे मदयन्तीको गर्भाधान कराया ॥ ३८ ॥ मदयन्ती सात वर्षतक गर्भ धारण किये रही, परन्तु बच्चा पैदा नहीं हुआ। तब वसिष्ठजीने पत्थरसे उसके पेटपर आघात किया। इससे जो बालक हुआ, वह अश्म (पत्थर) की चोटसे पैदा होनेके कारण 'अश्मक' कहलाया ॥ ३९ ॥ अश्मकसे मूलकका जन्म हुआ। जब परशुरामजी पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर रहे थे, तब स्त्रियोंने उसे छिपाकर रख लिया था। इसीसे उसका एक नाम 'नारीकवच' भी हुआ। उसे मूलक इसलिये कहते हैं कि वह पृथ्वीके क्षत्रियहीन हो जानेपर उस वंशका मूल (प्रवर्तक) बना ॥ ४० ॥ मूलकके पुत्र हुए दशरथ, दशरथके ऐडविड और ऐडविडके राजा विश्वसह। विश्वसहके पुत्र ही चक्रवर्ती सम्राट् खट्वाङ्ग हुए ॥ ४१ ॥युद्धमें उन्हें कोई जीत नहीं सकता था। उन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे दैत्योंका वध किया था। जब उन्हें देवताओंसे यह मालूम हुआ कि अब मेरी आयु केवल दो ही घड़ी बाकी है, तब वे अपनी राजधानी लौट आये और अपने मनको उन्होंने भगवान्‌में लगा दिया ॥ ४२ ॥ वे मन-ही-मन सोचने लगे कि 'मेरे कुलके इष्ट देवता हैं ब्राह्मण ! उनसे बढ़कर मेरा प्रेम अपने प्राणोंपर भी नहीं है। पत्नी, पुत्र, लक्ष्मी, राज्य और पृथ्वी भी मुझे उतने प्यारे नहीं लगते ॥ ४३ ॥ मेरा मन बचपनमें भी कभी अधर्मकी ओर नहीं गया। मैंने पवित्रकीर्ति भगवान्‌के अतिरिक्त और कोई भी वस्तु कहीं नहीं देखी ॥ ४४ ॥

---

१. भर्तृगतिं । २. विज्ञाप्य । ३. प्रजः । ४. ऐलिविलः ।

देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः ।
न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः ॥ ४५

तीनों लोकोंके स्वामी देवताओंने मुझे मुँहमाँगा वर देनेको कहा। परन्तु मैंने उन भोगोंकी लालसा बिलकुल नहीं की। क्योंकि समस्त प्राणियोंके जीवनदाता श्रीहरिकी भावनामें ही मैं मग्न हो रहा था ॥ ४५ ॥

ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् ।
न विन्दन्ति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥ ४६

जिन देवताओंकी इन्द्रियाँ और मन विषयोंमें भटक रहे हैं,वे सत्त्वगुणप्रधान होनेपर भी अपने हृदयमें विराजमान, सदा-सर्वदा प्रियतमके रूपमें रहनेवाले अपने आत्मस्वरूप भगवान्‌को नहीं जानते। फिर भला जो रजोगुणी और तमोगुणी हैं, वे तो जान ही कैसे सकते हैं ॥ ४६ ॥

अथेशमायारचितेषु सङ्ग
गुणेषु[1] गन्धर्वपुरोपमेषु ।
रूढं प्रकृत्याऽऽत्मनि विश्वकर्तु-
र्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ४७

इसलिये अब इन विषयोंमें मैं नहीं रमता। ये तो मायाके खेल हैं। आकाशमें झूठ-मूठ प्रतीत होनेवाले गन्धर्वनगरोंसे बढ़कर इनकी सत्ता नहीं है। ये तो अज्ञानवश चित्तपर चढ़ गये थे। संसारके सच्चे रचयिता भगवान्‌की भावनामें लीन होकर मैं विषयोंको छोड़ रहा हूँ और केवल उन्हींकी शरण ले रहा हूँ ॥ ४७ ॥

इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया ।
हित्वान्यभावमज्ञानं ततः स्वं भावमाश्रितः ॥ ४८

परीक्षित्! भगवान्‌ने राजा खट्वाङ्गकी बुद्धिको पहलेसे ही अपनी ओर आकर्षित कर रखा था। इसीसे वे अन्तसमयमें ऐसा निश्चय कर सके। अब उन्होंने शरीर आदि अनात्म पदार्थोंमें जो अज्ञानमूलक आत्मभाव था, उसका परित्याग कर दिया और अपने वास्तविक आत्मस्वरूपमें स्थित हो गये ॥ ४८ ॥

यत् तद् ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् ।
भगवान् वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः ॥ ४९

वह स्वरूप साक्षात् परब्रह्म है। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, शून्यके समान ही है। परन्तु वह शून्य नहीं, परम सत्य है। भक्तजन उसी वस्तुको 'भगवान् वासुदेव' इस नामसे वर्णन करते हैं ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे
सूर्यवंशानुवर्णने[2] नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

भगवान् श्रीरामकी लीलाओंका वर्णन

श्रीशुक उवाच

खट्वाङ्गाद् दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात् पृथुश्रवाः ।
अजस्ततो महाराजस्तस्माद् दशरथोऽभवत् ॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! खट्वाङ्गके पुत्र दीर्घबाहु और दीर्घबाहुके परम यशस्वी पुत्र रघु हुए। रघुके अज और अजके पुत्र महाराज दशरथ हुए ॥ १ ॥

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः ।
अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ।
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया ॥ २

देवताओंकी प्रार्थनासे साक्षात् परमब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि ही अपने अंशांशसे चार रूप धारण करके राजा दशरथके पुत्र हुए। उनके नाम थे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ॥ २ ॥

---

१. सिद्धेषु गन्धर्वपुरोगणेषु। २. ने नाम।

तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥ ३

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं
पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो
यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषा-
ऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः
कोसलेन्द्रोऽवतान्नः ॥ ४

विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः ।
पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुङ्गवाः ॥ ५

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं
सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् ।
आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं
सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ॥ ६

जित्वानुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपां[1]
सीताभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम् ।
मार्गे व्रजन् भृगुपतेर्व्यनयत् प्ररूढं
दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम् ॥ ७

यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं
स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः ।
राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं
त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसङ्गः ॥ ८

परीक्षित् ! सीतापति भगवान् श्रीरामका चरित्र तो तत्त्वदर्शी ऋषियोंने बहुत कुछ वर्णन किया है और तुमने अनेक बार उसे सुना भी है ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीरामने अपने पिता राजा दशरथके सत्यकी रक्षाके लिये राजपाट छोड़ दिया और वे वन-वनमें फिरते रहे। उनके चरणकमल इतने सुकुमार थे कि परम सुकुमारी श्रीजानकीजीके करकमलोंका स्पर्श भी उनसे सहन नहीं होता था। वे ही चरण जब वनमें चलते-चलते थक जाते, तब हनूमान् और लक्ष्मण उन्हें दबा-दबाकर उनकी थकावट मिटाते। शूर्पणखाको नाक-कान काटकर विरूप कर देनेके कारण उन्हें अपनी प्रियतमा श्रीजानकीजीका वियोग भी सहना पड़ा। इस वियोगके कारण क्रोधवश उनकी भौंहें तन गयीं, जिन्हें देखकर समुद्रतक भयभीत हो गया। इसके बाद उन्होंने समुद्रपर पुल बाँधा और लङ्कामें जाकर दुष्ट राक्षसोंके जंगलको दावाग्निके समान दग्ध कर दिया। वे कोसलनरेश हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीरामने विश्वामित्रके यज्ञमें लक्ष्मणके सामने ही मारीच आदि राक्षसोंको मार डाला। वे सब बड़े-बड़े राक्षसोंकी गिनतीमें थे ॥ ५ ॥ परीक्षित् ! जनकपुरमें सीताजीका स्वयंवर हो रहा था। संसारके चुने हुए वीरोंकी सभामें भगवान् शङ्करका वह भयङ्कर धनुष रखा हुआ था। वह इतना भारी था कि तीन सौ वीर बड़ी कठिनाईसे उसे स्वयंवरसभामें ला सके थे। भगवान् श्रीरामने उस धनुषको बात-की-बातमें उठाकर उसपर डोरी चढ़ा दी और खींचकर बीचोबीचसे उसके दो टुकड़े कर दिये—ठीक वैसे ही, जैसे हाथीका बच्चा खेलते-खेलते ईख तोड़ डाले ॥ ६ ॥ भगवान्‌ने जिन्हें अपने वक्षःस्थलपर स्थान देकर सम्मानित किया है, वे श्रीलक्ष्मीजी ही सीताके नामसे जनकपुरमें अवतीर्ण हुई थीं। वे गुण, शील, अवस्था, शरीरकी गठन और सौन्दर्यमें सर्वथा भगवान् श्रीरामके अनुरूप थीं। भगवान्‌ने धनुष तोड़कर उन्हें प्राप्त कर लिया। अयोध्याको लौटते समय मार्गमें उन परशुरामजीसे भेंट हुई, जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीको राजवंशके बीजसे भी रहित कर दिया था। भगवान्‌ने उनके बढ़े हुए गर्वको नष्ट कर दिया ॥ ७ ॥ इसके बाद पिताके वचनको सत्य करनेके लिये उन्होंने वनवास स्वीकार किया। यद्यपि महाराज दशरथने अपनी पत्नीके अधीन होकर ही उसे वैसा वचन दिया था, फिर भी वे सत्यके बन्धनमें बँध गये थे। इसलिये भगवान्‌ने अपने पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की। उन्होंने प्राणोंके समान प्यारे राज्य, लक्ष्मी, प्रेमी, हितैषी मित्र और महलोंको वैसे ही छोड़कर अपनी पत्नीके साथ यात्रा की, जैसे मुक्तसंग योगी प्राणोंको छोड़ देता है ॥ ८ ॥

---

१. नुरूं ।

रक्षःस्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धे-
स्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून्।
जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीय-
कोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम्॥ ९

सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन
सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण।
जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो
मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः॥ १०

रक्षोऽधमेन वृकवद् विपिनेऽसमक्षं
वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम्।
भ्रात्रा वने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः
स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार॥ ११

दग्ध्वाऽऽत्मकृत्यहतकृत्यमहन् कबन्धं
सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः।
बुद्ध्वाथवालिनि[1] हते प्लवगेन्द्रसैन्यै-
र्वेलामगात् स मनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः॥ १२

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपात-[2]
संभ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः।
सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी
पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत्॥ १३

न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन्[3]
कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम्।
यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा
मन्योश्च भूतपतयः स भवान् गुणेशः॥ १४

वनमें पहुँचकर भगवान्‌ने राक्षसराज रावणकी बहिन शूर्पणखाको विरूप कर दिया। क्योंकि उसकी बुद्धि बहुत ही कलुषित, कामवासनाके कारण अशुद्ध थी। उसके पक्षपाती खर, दूषण, त्रिशिरा आदि प्रधान-प्रधान भाइयोंको—जो संख्यामें चौदह हजार थे—हाथमें महान् धनुष लेकर भगवान् श्रीरामने नष्ट कर डाला, और अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंसे परिपूर्ण वनमें वे इधर-उधर विचरते हुए निवास करते रहे॥ ९॥ परीक्षित्! जब रावणने सीताजीके रूप, गुण, सौन्दर्य आदिकी बात सुनी तो उसका हृदय कामवासनासे आतुर हो गया। उसने अद्भुत हरिनके वेषमें मारीचको उनकी पर्णकुटीके पास भेजा। वह धीरे-धीरे भगवान्‌को वहाँसे दूर ले गया। अन्तमें भगवान्‌ने अपने बाणसे उसे बात-की-बातमें वैसे ही मार डाला, जैसे दक्षप्रजापतिको वीरभद्रने मारा था॥ १०॥ जब भगवान् श्रीराम जंगलमें दूर निकल गये, तब (लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें) नीच राक्षस रावणने भेड़ियेके समान विदेहनन्दिनी सुकुमारी श्रीसीताजीको हर लिया। तदनन्तर वे अपनी प्राणप्रिया सीताजीसे बिछुड़कर अपने भाई लक्ष्मणके साथ वन-वनमें दीनकी भाँति घूमने लगे। और इस प्रकार उन्होंने यह शिक्षा दी कि 'जो स्त्रियोंमें आसक्ति रखते हैं, उनकी यही गति होती है'॥ ११॥ इसके बाद भगवान्‌ने उस जटायुका दाह-संस्कार किया,जिसके सारे कर्मबन्धन भगवत्सेवारूप कर्मसे पहले ही भस्म हो चुके थे। फिर भगवान्‌ने कबन्धका संहार किया और इसके अनन्तर सुग्रीव आदि वानरोंसे मित्रता करके वालिका वध किया, तदनन्तर वानरोंके द्वारा अपनी प्राणप्रियाका पता लगवाया। ब्रह्मा और शङ्कर जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं, वे भगवान् श्रीराम मनुष्यकी-सी लीला करते हुए बंदरोंकी सेनाके साथ समुद्रतटपर पहुँचे॥ १२॥ (वहाँ उपवास और प्रार्थनासे जब समुद्रपर कोई प्रभाव न पड़ा, तब) भगवान्‌ने क्रोधकी लीला करते हुए अपनी उग्र एवं टेढ़ी नजर समुद्रपर डाली। उसी समय समुद्रके बड़े-बड़े मगर और मच्छ खलबला उठे। डर जानेके कारण समुद्रकी सारी गर्जना शान्त हो गयी। तब समुद्र शरीरधारी बनकर और अपने सिरपर बहुत-सी भेंटें लेकर भगवान्‌के चरणकमलोंकी शरणमें आया और इस प्रकार कहने लगा॥ १३॥ 'अनन्त! हम मूर्ख हैं; इसलिये आपके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते। जानें भी कैसे? आप समस्त जगत्‌के एकमात्र स्वामी, आदिकारण एवं जगत्‌के समस्त परिवर्तनोंमें एकरस रहनेवाले हैं। आप समस्त गुणोंके स्वामी हैं। इसलिये जब आप सत्त्वगुणको स्वीकार कर लेते हैं तब देवताओंको, रजोगुणको स्वीकार कर लेते हैं तब प्रजापतियोंको और तमोगुणको स्वीकार कर लेते हैं तब आपके क्रोधसे

१. च। २. मकटाक्षविटङ्कपात°। ३. नूनं।

कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं
त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीर पत्नीम् ।
बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै
गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥ १५

बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः
सेतुं कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहाङ्गैः ।
सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकै-[1]
र्लङ्कां विभीषणदृशाऽऽविशदग्रदग्धाम् ॥ १६

सा वानरेन्द्रबलरुद्धविहारकोष्ठ-[2]
श्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटङ्का ।
निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भ-
शृङ्गाटका गजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा ॥ १७

रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुम्भकुम्भ-
धूम्राक्षदुर्मुखसुरान्तनरान्तकादीन् ।
पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकम्पनादीन्
सर्वानुगान् समहिनोदथ कुम्भकर्णम् ॥ १८

तां यातुधानपृतनामसिशूलचाप-
प्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ।
सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमाद-
नीलाङ्गदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥ १९

तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे
द्वन्द्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः ।
जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरङ्गदाद्याः
सीताभिमर्शहतमङ्गलरावणेशान् ॥ २०

रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट
आरुह्य यानकमथाभिससार[3] रामम् ।
स्वःस्यन्दने द्युमति[4] मातलिनोपनीते
विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः ॥ २१

रुद्रगणकी उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥ वीरशिरोमणे ! आप अपनी इच्छाके अनुसार मुझे पार कर जाइये और त्रिलोकीको रुलानेवाले विश्रवाके कुपूत रावणको मारकर अपनी पत्नीको फिरसे प्राप्त कीजिये । परन्तु आपसे मेरी एक प्रार्थना है । आप यहाँ मुझपर एक पुल बाँध दीजिये । इससे आपके यशका विस्तार होगा और आगे चलकर जब बड़े-बड़े नरपति दिग्विजय करते हुए यहाँ आयेंगे, तब वे आपके यशका गान करेंगे ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीरामजीने अनेकानेक पर्वतोंके शिखरोंसे समुद्रपर पुल बाँधा । जब बड़े-बड़े बन्दर अपने हाथोंसे पर्वत उठा-उठाकर लाते थे, तब उनके वृक्ष और बड़ी-बड़ी चट्टानें थर-थर काँपने लगती थीं । इसके बाद विभीषणकी सलाहसे भगवान्‌ने सुग्रीव, नील, हनुमान् आदि प्रमुख वीरों और वानरीसेनाके साथ लङ्कामें प्रवेश किया । वह तो श्रीहनूमान्‌जीके द्वारा पहले ही जलायी जा चुकी थी ॥ १६ ॥ उस समय वानरराजकी सेनाने लङ्काके सैर करने और खेलनेके स्थान, अन्नके गोदाम, खजाने, दरवाजे, फाटक, सभाभवन, छज्जे और पक्षियोंके रहनेके स्थानतकको घेर लिया । उन्होंने वहाँकी वेदी, ध्वजाएँ, सोनेके कलश और चौराहे तोड़-फोड़ डाले । उस समय लङ्का ऐसी मालूम पड़ रही थी, जैसे झुंड-के-झुंड हाथियोंने किसी नदीको मथ डाला हो ॥ १७ ॥ यह देखकर राक्षसराज रावणने निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, प्रहस्त, अतिकाय, विकम्पन आदि अपने सब अनुचरों, पुत्र मेघनाद और अन्तमें भाई कुम्भकर्णको भी युद्ध करनेके लिये भेजा ॥ १८ ॥ राक्षसोंकी वह विशाल सेना तलवार, त्रिशूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, बाण, भाले, खड्ग आदि शस्त्र-अस्त्रोंसे सुरक्षित और अत्यन्त दुर्गम थी । भगवान् श्रीरामने सुग्रीव, लक्ष्मण, हनूमान्, गन्ध-मादन, नील, अङ्गद, जाम्बवान् और पनस आदि वीरोंको अपने साथ लेकर राक्षसोंकी सेनाका सामना किया ॥ १९ ॥ रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीरामके अङ्गद आदि सब सेनापति राक्षसोंकी चतुरङ्गिणी सेना—हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदलोंके साथ द्वन्द्वयुद्धकी रीतिसे भिड़ गये और राक्षसोंको वृक्ष, पर्वतशिखर, गदा और बाणोंसे मारने लगे । उनका मारा जाना तो स्वाभाविक ही था । क्योंकि वे उसी रावणके अनुचर थे, जिसका मङ्गल श्रीसीताजीको स्पर्श करनेके कारण पहले ही नष्ट हो चुका था ॥ २० ॥

जब राक्षसराज रावणने देखा कि मेरी सेनाका तो नाश हुआ जा रहा है, तब वह क्रोधमें भरकर पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो भगवान् श्रीरामके सामने आया । उस समय इन्द्रका सारथि मातलि बड़ा ही तेजस्वी दिव्य रथ लेकर आया और उसपर भगवान् श्रीरामजी विराजमान हुए । रावण अपने तीखे बाणोंसे उनपर प्रहार करने लगा ॥ २१ ॥

---

१. रनैकै० । २. कोष० । ३. पालक० । ४. महति ।

रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः
कान्तासमक्षमसतापहृता श्ववत्[1] ते ।
त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य
यच्छामि काल इव कर्तुरलङ्घ्यवीर्यः ॥ २२

एवं क्षिपन् धनुषि संधितमुत्ससर्ज
बाणं स वज्रमिव तद्धृदयं बिभेद ।
सोऽसृग् वमन् दशमुखैर्न्यपतद् विमाना-
द्धाहेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः ॥ २३

ततो निष्क्रम्य लङ्कायाः यातुधान्यः सहस्रशः ।
मन्दोदर्या समं तस्मिन् प्रस्रुदत्य[2] उपाद्रवन् ॥ २४

स्वान् स्वान् बन्धून् परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् ।
रुरुदुः सुस्वरं दीना घ्नन्त्य आत्मानमात्मना ॥ २५

हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण ।
कं यायाच्छरणं लङ्का त्वद्विहीना परार्दिता ॥ २६

नैवं वेद महाभाग भवान् कामवशं गतः ।
तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम् ॥ २७

कृतैषा विधवा लङ्का वयं च कुलनन्दन ।
देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥ २८

श्रीशुक उवाच

स्वानां विभीषणश्चक्रे कोसलेन्द्रानुमोदितः ।
पितृमेधविधानेन यदुक्तं साम्परायिकम् ॥ २९

ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे[3] ।
क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमास्थिताम् ॥ ३०

भगवान् श्रीरामजीने रावणसे कहा—'नीच राक्षस ! तुम कुत्तेकी तरह हमारी अनुपस्थितिमें हमारी प्राणप्रिया पत्नीको हर लाये ! तुमने दुष्टताकी हद कर दी ! तुम्हारे-जैसा निर्लज्ज तथा निन्दनीय और कौन होगा । जैसे कालको कोई टाल नहीं सकता—कर्तापनके अभिमानीको वह फल दिये बिना रह नहीं सकता, वैसे ही आज मैं तुम्हें तुम्हारी करनीका फल चखाता हूँ' ॥ २२ ॥ इस प्रकार रावणको फटकारते हुए भगवान् श्रीरामने अपने धनुषपर चढ़ाया हुआ बाण उसपर छोड़ा । उस बाणने वज्रके समान उसके हृदयको विदीर्ण कर दिया । वह अपने दसों मुखोंसे खून उगलता हुआ विमानसे गिर पड़ा—ठीक वैसे ही, जैसे पुण्यात्मालोग भोग समाप्त होनेपर स्वर्गसे गिर पड़ते हैं । उस समय उसके पुरजन-परिजन 'हाय-हाय' करके चिल्लाने लगे ॥ २३ ॥

तदनन्तर हजारों राक्षसियाँ मन्दोदरीके साथ रोती हुई लङ्कासे निकल पड़ीं और रणभूमिमें आयीं ॥ २४ ॥ उन्होंने देखा कि उनके स्वजन-सम्बन्धी लक्ष्मणजीके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर पड़े हुए हैं । वे अपने हाथों अपनी छाती पीट-पीटकर और अपने सगे-सम्बन्धियोंको हृदयसे लगा-लगाकर ऊँचे स्वरसे विलाप करने लगीं ॥ २५ ॥ हाय-हाय ! स्वामी ! आज हम सब बेमौत मारी गयीं । एक दिन वह था, जब आपके भयसे समस्त लोकोंमें त्राहि-त्राहि मच जाती थी । आज वह दिन आ पहुँचा कि आपके न रहनेसे हमारे शत्रु लङ्काकी दुर्दशा कर रहे हैं और यह प्रश्न उठ रहा है कि अब लङ्का किसके अधीन रहेगी ॥ २६ ॥ आप सब प्रकारसे सम्पन्न थे, किसी भी बातकी कमी न थी । परन्तु आप कामके वश हो गये और यह नहीं सोचा कि सीताजी कितनी तेजस्विनी हैं और उनका कितना प्रभाव है । आपकी यही भूल आपकी इस दुर्दशाका कारण बन गयी ॥ २७ ॥ कभी आपके कामोंसे हम सब और समस्त राक्षसवंश आनन्दित होता था और आज हम सब तथा यह सारी लङ्का नगरी विधवा हो गयी । आपका वह शरीर, जिसके लिये आपने सब कुछ कर डाला, आज गीधोंका आहार बन रहा है और अपने आत्माको आपने नरकका अधिकारी बना डाला । यह सब आपकी ही नासमझी और कामुकताका फल है ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कोसलाधीश भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे विभीषणने अपने स्वजन-सम्बन्धियोंका पितृयज्ञकी विधिसे शास्त्रके अनुसार अन्त्येष्टि-कर्म किया ॥ २९ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीरामने अशोकवाटिकाके आश्रममें अशोक वृक्षके नीचे बैठी हुई

१. स्वयन्ते । २. रुदत्यस्ता० । ३. कावने ।

रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकम्पत ।
आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपङ्कजाम् ॥ ३१

आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः ।
विभीषणाय भगवान् दत्त्वा रक्षोगणेशताम् ॥ ३२

लङ्कामायुश्च कल्पान्तं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् ।
अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ॥ ३३

उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा ।
गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम् ॥ ३४

महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम् ।
भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ॥ ३५

पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम्[1] ।
नन्दिग्रामात् स्वशिबिराद् गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ ३६

ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः[2] ।
स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः ॥ ३७

सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः ।
श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः ॥ ३८

पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च ।
पादयोर्न्यपतत्[3] प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥ ३९

पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्बाष्पलोचनः ।
तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन् नेत्रजैर्जलैः ॥ ४०

रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः[4] ।
तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥ ४१

श्रीसीताजीको देखा । वे उन्हींके विरहकी व्याधिसे पीड़ित एवं अत्यन्त दुर्बल हो रही थीं ॥ ३० ॥ अपनी प्राणप्रिया अर्धाङ्गिनी श्रीसीताजीको अत्यन्त दीन अवस्थामें देखकर श्रीरामका हृदय प्रेम और कृपासे भर आया । इधर भगवान्‌का दर्शन पाकर सीताजीका हृदय प्रेम और आनन्दसे परिपूर्ण हो गया, उनका मुखकमल खिल उठा ॥ ३१ ॥ भगवान्‌ने विभीषणको राक्षसोंका स्वामित्व, लङ्कापुरीका राज्य और एक कल्पकी आयु दी और इसके बाद पहले सीताजीको विमानपर बैठाकर अपने दोनों भाई लक्ष्मण तथा सुग्रीव एवं सेवक हनूमान्‌जीके साथ स्वयं भी विमानपर सवार हुए । इस प्रकार चौदह वर्षका व्रत पूरा हो जानेपर उन्होंने अपने नगरकी यात्रा की । उस समय मार्गमें ब्रह्मा आदि लोकपालगण उनपर बड़े प्रेमसे पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ ३२-३३ ॥

इधर तो ब्रह्मा आदि बड़े आनन्दसे भगवान्‌की लीलाओंका गान कर रहे थे और उधर जब भगवान्‌को यह मालूम हुआ कि भरतजी केवल गोमूत्रमें पकाया हुआ जौका दलिया खाते हैं, वल्कल पहनते हैं और पृथ्वीपर डाभ बिछाकर सोते हैं एवं उन्होंने जटाएँ बढ़ा रखी हैं, तब वे बहुत दुःखी हुए । उनकी दशाका स्मरण कर परम करुणाशील भगवान्‌का हृदय भर आया । जब भरतको मालूम हुआ कि मेरे बड़े भाई भगवान् श्रीरामजी आ रहे हैं, तब वे पुरवासी, मन्त्री और पुरोहितोंको साथ लेकर एवं भगवान्‌की पादुकाएँ सिरपर रखकर उनकी अगवानीके लिये चले । जब भरतजी अपने रहनेके स्थान नन्दिग्रामसे चले, तब लोग उनके साथ-साथ मङ्गलगान करते, बाजे बजाते चलने लगे । वेदवादी ब्राह्मण बार-बार वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे और उसकी ध्वनि चारों ओर गूँजने लगी । सुनहरी कामदार पताकाएँ फहराने लगीं । सोनेसे मढ़े हुए तथा रंग-बिरंगी ध्वजाओंसे सजे हुए रथ, सुनहले साजसे सजाये हुए सुन्दर घोड़े तथा सोनेके कवच पहने हुए सैनिक उनके साथ-साथ चलने लगे । सेठ-साहूकार, श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ, पैदल चलनेवाले सेवक और महाराजाओंके योग्य छोटी-बड़ी सभी वस्तुएँ उनके साथ चल रही थीं । भगवान्‌को देखते ही प्रेमके उद्रेकसे भरतजीका हृदय गद्गद हो गया, नेत्रोंमें आँसू छलक आये, वे भगवान्‌के चरणोंपर गिर पड़े ॥ ३४—३९ ॥ उन्होंने प्रभुके सामने उनकी पादुकाएँ रख दीं और हाथ जोड़कर खड़े हो गये । नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहती जा रही थी । भगवान्‌ने अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर बहुत देरतक भरतजीको हृदयसे लगाये रखा । भगवान्‌के नेत्रजलसे भरतजीका स्नान हो गया ॥ ४० ॥ इसके बाद सीताजी और लक्ष्मणजीके साथ

१. प्रत्युद्गतो । २. शंसद्भि° । ३. तन्मूर्ध्नी । ४. ऽर्हत्तमाः ।

धुन्वन्त उत्तरासङ्गान् पतिं वीक्ष्य चिरागतम् ।
उत्तराः कोसला माल्यैः किरन्तो ननृतुर्मुदा ॥ ४२

पादुके भरतोऽगृह्णाद्व्यामरव्यजनोत्तमे ।
विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः ॥ ४३

धनुर्निषङ्गाञ्छत्रुघ्नः[1] सीता तीर्थकमण्डलुम् ।
अबिभ्रदङ्गदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराण् नृप ॥ ४४

पुष्पकस्थोऽन्वितः[2] स्त्रीभिः स्तूयमानश्च वन्दिभिः ।
विरेजे भगवान् राजन् ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ॥ ४५

भ्रातृभिर्नन्दितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत् पुरीम् ।
प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः[3] स्वमातरम् ॥ ४६

गुरून् वयस्यावरजान् पूजितः प्रत्यपूजयत् ।
वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत् समुपेयतुः ॥ ४७

पुत्रान् स्वमातरस्तासु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः ।
आरोप्याङ्केऽभिषिञ्चन्त्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ॥ ४८

जटा निर्मुच्य विधिवत् कुलवृद्धैः समं गुरुः ।
अभ्यषिञ्चद् यथैवेन्द्रं चतुःसिन्धुजलादिभिः[4] ॥ ४९

एवं कृतशिरःस्नानः सुवासाः स्रग्व्यलङ्कृतः ।
स्वलङ्कृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥ ५०

अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः ।
प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ।
जुगोप पितृवद् रामो मेनिरे पितरं च तम् ॥ ५१

त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ।
रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥ ५२

भगवान् श्रीरामजीने ब्राह्मण और पूजनीय गुरुजनोंको नमस्कार किया तथा सारी प्रजाने बड़े प्रेमसे सिर झुकाकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ उस समय उत्तरकोसल देशकी रहनेवाली समस्त प्रजा अपने स्वामी भगवान्‌को बहुत दिनोंके बाद आये देख अपने दुपट्टे हिला-हिलाकर पुष्पोंकी वर्षा करती हुई आनन्दसे नाचने लगी ॥ ४२ ॥ भरतजीने भगवान्‌की पादुकाएँ लीं, विभीषणने श्रेष्ठ चँवर, सुग्रीवने पंखा और श्रीहनूमान्‌जीने श्वेत छत्र ग्रहण किया ॥ ४३ ॥ परीक्षित् ! शत्रुघ्नजीने धनुष और तरकस, सीताजीने तीर्थोंके जलसे भरा कमण्डलु, अङ्गदने सोनेका खड्ग और जाम्बवान्‌ने ढाल ले ली ॥ ४४ ॥ इन लोगोंके साथ भगवान् पुष्पक विमानपर विराजमान हो गये, चारों तरफ यथास्थान स्त्रियाँ बैठ गयीं, वन्दीजन स्तुति करने लगे । उस समय पुष्पक विमानपर भगवान् श्रीरामकी ऐसी शोभा हुई, मानो ग्रहोंके साथ चन्द्रमा उदय हो रहे हों ॥ ४५ ॥

इस प्रकार भगवान्‌ने भाइयोंका अभिनन्दन स्वीकार करके उनके साथ अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया । उस समय वह पुरी आनन्दोत्सवसे परिपूर्ण हो रही थी । राजमहलमें प्रवेश करके उन्होंने अपनी माता कौसल्या, अन्य माताओं, गुरुजनों, बराबरके मित्रों और छोटोंका यथायोग्य सम्मान किया तथा उनके द्वारा किया हुआ सम्मान स्वीकार किया । श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीने भी भगवान्‌के साथ-साथ सबके प्रति यथायोग्य व्यवहार किया ॥ ४६-४७ ॥ उस समय जैसे मृतक शरीरमें प्राणोंका सञ्चार हो जाय, वैसे ही माताएँ अपने पुत्रोंके आगमनसे हर्षित हो उठीं । उन्होंने उनको अपनी गोदमें बैठा लिया और अपने आँसुओंसे उनका अभिषेक किया । उस समय उनका सारा शोक मिट गया ॥ ४८ ॥ इसके बाद वसिष्ठजीने दूसरे गुरुजनोंके साथ विधिपूर्वक भगवान्‌की जटा उतरवायी और बृहस्पतिने जैसे इन्द्रका अभिषेक किया था, वैसे ही चारों समुद्रोंके जल आदिसे उनका अभिषेक किया ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सिरसे स्नान करके भगवान् श्रीरामने सुन्दर वस्त्र, पुष्पमालाएँ और अलङ्कार धारण किये । सभी भाइयों और श्रीजानकीजीने भी सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और अलङ्कार धारण किये । उनके साथ भगवान् श्रीरामजी अत्यन्त शोभायमान हुए ॥ ५० ॥ भरतजीने उनके चरणोंमें गिरकर उन्हें प्रसन्न किया और उनके आग्रह करनेपर भगवान् श्रीरामने राजसिंहासन स्वीकार किया । इसके बाद वे अपने-अपने धर्ममें तत्पर तथा वर्णाश्रमके आचारको निभानेवाली प्रजाका पिताके समान पालन करने लगे । उनकी प्रजा भी उन्हें अपना पिता ही मानती थी ॥ ५१ ॥ परीक्षित् ! जब समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाले परम धर्मज्ञ भगवान् श्रीराम राजा हुए

१. ङ्गं शत्रु० । २. स्थो वृतः । ३. पत्नीं । ४. चतुर्भिः सागराम्बुभिः ।

वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिन्धवः ।
सर्वे कामदुघा आसन् प्रजानां भरतर्षभ ॥ ५३

नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः[1] ।
मृत्युश्चानिच्छतां नासीद् रामे राजन्यधोक्षजे ॥ ५४

एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ।
स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरत् ॥ ५५

प्रेम्णानुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ।
धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताहरन्मनः ॥ ५६

तब था तो त्रेतायुग, परन्तु मालूम होता था मानो सत्ययुग ही है ॥ ५२ ॥ परीक्षित् ! उस समय वन, नदी, पर्वत, वर्ष, द्वीप और समुद्र—सब-के-सब प्रजाके लिये कामधेनुके समान समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले बन रहे थे ॥ ५३ ॥ इन्द्रियातीत भगवान् श्रीरामके राज्य करते समय किसीको मानसिक चिन्ता या शारीरिक रोग नहीं होते थे। बुढ़ापा, दुर्बलता, दुःख, शोक, भय और थकावट नाममात्रके लिये भी नहीं थे। यहाँतक कि जो मरना नहीं चाहते थे, उनकी मृत्यु भी नहीं होती थी ॥ ५४ ॥ भगवान् श्रीरामने एकपत्नीका व्रत धारण कर रखा था, उनके चरित्र अत्यन्त पवित्र एवं राजर्षियोंके-से थे। वे गृहस्थोचित स्वधर्मकी शिक्षा देनेके लिये स्वयं उस धर्मका आचरण करते थे ॥ ५५ ॥ सतीशिरोमणि सीताजी अपने पतिके हृदयका भाव जानती रहतीं। वे प्रेमसे, सेवासे, शीलसे, अत्यन्त विनयसे तथा अपनी बुद्धि और लज्जा आदि गुणोंसे अपने पति भगवान् श्रीरामजीका चित्त चुराती रहती थीं ॥ ५६ ॥

★

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे
रामचरिते[2] दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

★

अथैकादशोऽध्यायः

भगवान् श्रीरामकी शेष लीलाओंका वर्णन

श्रीशुक उवाच

भगवानात्मनाऽऽत्मानं राम उत्तमकल्पकैः[3] ।
सर्वदेवमयं[4] देवमीज आचार्यवान् मखैः ॥ १

होत्रेऽददाद्[5] दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः ।
अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥ २

आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा ।
मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः ॥ ३

इत्ययं तदलङ्कारवासोभ्यामवशेषितः ।
तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमङ्गल्यावशेषिता ॥ ४

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीरामने गुरु वसिष्ठजीको अपना आचार्य बनाकर उत्तम सामग्रियोंसे युक्त यज्ञोंके द्वारा अपने-आप ही अपने सर्वदेवस्वरूप स्वयंप्रकाश आत्माका यजन किया ॥ १ ॥ उन्होंने होताको पूर्व दिशा, ब्रह्माको दक्षिण, अध्वर्युको पश्चिम और उद्गाताको उत्तर दिशा दे दी ॥ २ ॥ उनके बीचमें जितनी भूमि बच रही थी, वह उन्होंने आचार्यको दे दी। उनका यह निश्चय था कि सम्पूर्ण भूमण्डलका एकमात्र अधिकारी निःस्पृह ब्राह्मण ही है ॥ ३ ॥ इस प्रकार सारे भूमण्डलका दान करके उन्होंने अपने शरीरके वस्त्र और अलङ्कार ही अपने पास रखे। इसी प्रकार महारानी सीताजीके पास भी केवल माङ्गलिक वस्त्र और आभूषण ही बच रहे ॥ ४ ॥

---

१. नाधिर्व्याधिर्जरा ग्लानिर्दुःख० । २. रामानुचरितं नाम । ३. कल्पकः । ४. मयो । ५. होत्रे तदादिशत्प्राचीं ।

ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य[1] वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ।
प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे ॥ ५

अप्रत्तं नस्त्वया किं नु भगवन् भुवनेश्वर ।
यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ॥ ६

नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे ।
उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥ ७

कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ।
चरन् वाचोऽशृणोद्[2] रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥ ८

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ।
स्त्रीलोभी[3] बिभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥ ९

इति लोकाद् बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः ।
पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥ १०

अन्तर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ ।
कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः ॥ ११

अङ्गदश्चित्रकेतुश्च[4] लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ।
तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥ १२

सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ।
गन्धर्वान् कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम् ॥ १३

तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ।
शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ।
हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥ १४

मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा[5] विवासिता ।
ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥ १५

जब आचार्य आदि ब्राह्मणोंने देखा कि भगवान् श्रीराम तो ब्राह्मणोंको ही अपना इष्टदेव मानते हैं, उनके हृदयमें ब्राह्मणोंके प्रति अनन्त स्नेह है, तब उनका हृदय प्रेमसे द्रवित हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर सारी पृथ्वी भगवान्‌को लौटा दी और कहा ॥ ५ ॥ 'प्रभो ! आप सब लोकोंके एकमात्र स्वामी हैं। आप तो हमारे हृदयके भीतर रहकर अपनी ज्योतिसे अज्ञानान्धकारका नाश कर रहे हैं। ऐसी स्थितिमें भला, आपने हमें क्या नहीं दे रखा है ॥ ६ ॥ आपका ज्ञान अनन्त है। पवित्र कीर्तिवाले पुरुषोंमें आप सर्वश्रेष्ठ हैं। उन महात्माओंको, जो किसीको किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं पहुँचाते, आपने अपने चरणकमल दे रखे हैं। ऐसा होनेपर भी आप ब्राह्मणोंको अपना इष्टदेव मानते हैं। भगवन् ! आपके इस रामरूपको हम नमस्कार करते हैं' ॥ ७ ॥

परीक्षित् ! एक बार अपनी प्रजाकी स्थिति जाननेके लिये भगवान् श्रीरामजी रातके समय छिपकर बिना किसीको बतलाये घूम रहे थे। उस समय उन्होंने किसीकी यह बात सुनी। वह अपनी पत्नीसे कह रहा था ॥ ८ ॥ 'अरी ! तू दुष्ट और कुलटा है। तू पराये घरमें रह आयी है। स्त्री-लोभी राम भले ही सीताको रख लें, परन्तु मैं तुझे फिर नहीं रख सकता' ॥ ९ ॥ सचमुच सब लोगोंको प्रसन्न रखना टेढ़ी खीर है। क्योंकि मूर्खोंकी तो कमी नहीं है। जब भगवान् श्रीरामने बहुतोंके मुँहसे ऐसी बात सुनी, तो वे लोकापवादसे कुछ भयभीत-से हो गये। उन्होंने श्रीसीताजीका परित्याग कर दिया और वे वाल्मीकिमुनिके आश्रममें रहने लगीं ॥ १० ॥ सीताजी उस समय गर्भवती थीं। समय आनेपर उन्होंने एक साथ ही दो पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हुए—कुश और लव। वाल्मीकि मुनिने उनके जातकर्मादि संस्कार किये ॥ ११ ॥ लक्ष्मणजीके दो पुत्र हुए—अङ्गद और चित्रकेतु। परीक्षित् ! इसी प्रकार भरतजीके भी दो ही पुत्र थे—तक्ष और पुष्कल ॥ १२ ॥ तथा शत्रुघ्नके भी दो पुत्र हुए—सुबाहु और श्रुतसेन। भरतजीने दिग्विजयमें करोड़ों गन्धर्वोंका संहार किया ॥ १३ ॥ उन्होंने उनका सब धन लाकर अपने बड़े भाई भगवान् श्रीरामकी सेवामें निवेदन किया। शत्रुघ्नजीने मधुवनमें मधुके पुत्र लवण नामक राक्षसको मारकर वहाँ मथुरा नामकी पुरी बसायी ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीरामके द्वारा निर्वासित सीताजीने अपने पुत्रोंको वाल्मीकिजीके हाथोंमें सौंप दिया और भगवान् श्रीरामके चरणकमलोंका ध्यान करती हुई वे पृथ्वीदेवीके लोकमें चली गयीं ॥ १५ ॥

---

१. ब्राह्मणदेवस्य । २. वचो० । ३. स्त्रैणो हि वि० । ४. दक्षचन्द्रके० । ५. भर्तृविवा० ।

तच्छ्रुत्वा भगवान् रामो रुन्धन्नपि धिया शुचः ।
स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद् रोद्धुमीश्वरः ॥ १६

स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक्सर्वत्र[1] त्रासमावहः ।
अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥ १७

तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत् प्रभुः ।
त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम् ॥ १८

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः ।
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः ॥ १९

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयाऽऽत्त-
लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ।
रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः[2]
किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥ २०

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-
पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥ २१

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा[3] ।
कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ २२

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन् ।
आनृशंस्यपरो राजन् कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥ २३

राजोवाच

कथं स भगवान् रामो भ्रातॄन् वा स्वयमात्मनः ।
तस्मिन् वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥ २४

यह समाचार सुनकर भगवान् श्रीरामने अपने शोकावेशको बुद्धिके द्वारा रोकना चाहा, परन्तु परम समर्थ होनेपर भी वे उसे रोक न सके। क्योंकि उन्हें जानकीजीके पवित्र गुण बार-बार स्मरण हो आया करते थे ॥ १६ ॥ परीक्षित् ! यह स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध सब कहीं इसी प्रकार दुःखका कारण है। यह बात बड़े-बड़े समर्थ लोगोंके विषयमें भी ऐसी ही है, फिर गृहासक्त विषयी पुरुषके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ १७ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीरामने ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक अखण्डरूपसे अग्निहोत्र किया ॥ १८ ॥ तदनन्तर अपना स्मरण करनेवाले भक्तोंके हृदयमें अपने उन चरणकमलोंको स्थापित करके, जो दण्डकवनके काँटोंसे बिंध गये थे, अपने स्वयंप्रकाश परम ज्योतिर्मय धाममें चले गये ॥ १९ ॥

परीक्षित् ! भगवान्‌के समान प्रतापशाली और कोई नहीं है, फिर उनसे बढ़कर तो हो ही कैसे सकता है। उन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे ही यह लीला-विग्रह धारण किया था। ऐसी स्थितिमें रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीरामके लिये यह कोई बड़े गौरवकी बात नहीं है कि उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंसे राक्षसोंको मार डाला या समुद्रपर पुल बाँध दिया। भला, उन्हें शत्रुओंको मारनेके लिये बंदरोंकी सहायताकी भी आवश्यकता थी क्या ? यह सब उनकी लीला ही है ॥ २० ॥

भगवान् श्रीरामका निर्मल यश समस्त पापोंको नष्ट कर देनेवाला है। वह इतना फैल गया है कि दिग्गजोंका श्यामल शरीर भी उसकी उज्ज्वलतासे चमक उठता है। आज भी बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि राजाओंकी सभामें उसका गान करते रहते हैं। स्वर्गके देवता और पृथ्वीके नरपति अपने कमनीय किरीटोंसे उनके चरणकमलोंकी सेवा करते रहते हैं। मैं उन्हीं रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीरामचन्द्रकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥ २१ ॥ जिन्होंने भगवान् श्रीरामका दर्शन और स्पर्श किया, उनका सहवास अथवा अनुगमन किया—वे सब-के-सब तथा कोसलदेशके निवासी भी उसी लोकमें गये, जहाँ बड़े-बड़े योगी योगसाधनाके द्वारा जाते हैं ॥ २२ ॥ जो पुरुष अपने कानोंसे भगवान् श्रीरामका चरित्र सुनता है—उसे सरलता, कोमलता आदि गुणोंकी प्राप्ति होती है। परीक्षित् ! केवल इतना ही नहीं, वह समस्त कर्म-बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २३ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवान् श्रीराम स्वयं अपने भाइयोंके साथ किस प्रकारका व्यवहार करते थे ? तथा भरत आदि भाई, प्रजाजन और अयोध्यावासी

१. सर्वत्रोत्तापमावहत् । २. स्वपाणेः । ३. सर्वतो ।

श्रीशुक[1] उवाच

अथादिशद् दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः ।
आत्मानं दर्शयन् स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥ २५

आसिक्तमार्गां गन्धोदैः करिणां मदशीकरैः ।
स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥ २६

प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु[2] ।
विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मण्डिताम् ॥ २७

पूगैः सवृन्तै रम्भाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम् ।
आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥ २८

तमुपेयुस्तत्र[3] तत्र पौरा अर्हणपाणयः ।
आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक् त्वयोद्धृताम्[4] ॥ २९

ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं
दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः ।
आरुह्य हर्म्याण्यरविन्दलोचन-[5]
मतृप्ननेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥ ३०

अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वराजभिः ।
अनन्ताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥ ३१

विद्रुमोदुम्बरद्वारैर्वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तिभिः ।
स्थलैर्मारकतैः[6] स्वच्छैर्भातस्फटिकभित्तिभिः ॥ ३२

चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ।
मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कान्तकामोपपत्तिभिः ॥ ३३

धूपदीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्पमण्डनैः[7] ।
स्त्रीपुम्भिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥ ३४

भगवान् श्रीरामके प्रति कैसा बर्ताव करते थे ? ॥ २४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—त्रिभुवनपति महाराज श्रीरामने राजसिंहासन स्वीकार करनेके बाद अपने भाइयोंको दिग्विजयकी आज्ञा दी और स्वयं अपने निजजनोंको दर्शन देते हुए अपने अनुचरोंके साथ वे पुरीकी देख-रेख करने लगे ॥ २५ ॥ उस समय अयोध्यापुरीके मार्ग सुगन्धित जल और हाथियोंके मदकणोंसे सिंचे रहते । ऐसा जान पड़ता, मानो यह नगरी अपने स्वामी भगवान् श्रीरामको देखकर अत्यन्त मतवाली हो रही है ॥ २६ ॥ उसके महल, फाटक, सभाभवन, विहार और देवालय आदिमें सुवर्णके कलश रखे हुऐ थे और स्थान-स्थानपर पताकाएँ फहरा रही थीं ॥ २७ ॥ वह डंठलसमेत सुपारी, केलेके खंभे और सुन्दर वस्त्रोंके पट्टोंसे सजायी हुई थी । दर्पण, वस्त्र और पुष्पमालाओंसे तथा माङ्गलिक चित्रकारियों और बंदनवारोंसे सारी नगरी जगमगा रही थी ॥ २८ ॥ नगरवासी अपने हाथोंमें तरह-तरहकी भेंटें लेकर भगवान्‌के पास आते और उनसे प्रार्थना करते कि 'देव ! पहले आपने ही वराहरूपसे पृथ्वीका उद्धार किया था; अब आप ही इसका पालन कीजिये ॥ २९ ॥ परीक्षित् ! उस समय जब प्रजाको मालूम होता कि बहुत दिनोंके बाद भगवान् श्रीरामजी इधर पधारे हैं, तब सभी स्त्री-पुरुष उनके दर्शनकी लालसासे घर-द्वार छोड़कर दौड़ पड़ते । वे ऊँची-ऊँची अटारियोंपर चढ़ जाते और अतृप्त नेत्रोंसे कमलनयन भगवान्‌को देखते हुए उनपर पुष्पोंकी वर्षा करते ॥ ३० ॥

इस प्रकार प्रजाका निरीक्षण करके भगवान् फिर अपने महलोंमें आ जाते । उनके वे महल पूर्ववर्ती राजाओंके द्वारा सेवित थे । उनमें इतने बड़े-बड़े सब प्रकारके खजाने थे, जो कभी समाप्त नहीं होते थे । वे बड़ी-बड़ी बहुमूल्य बहुत-सी सामग्रियोंसे सुसज्जित थे ॥ ३१ ॥ महलोंके द्वार तथा देहलियाँ मूँगेकी बनी हुई थीं । उनमें जो खंभे थे, वे वैदूर्यमणिके थे । मरकतमणिके बड़े सुन्दर-सुन्दर फर्श थे, तथा स्फटिकमणिकी दीवारें चमकती रहती थीं ॥ ३२ ॥ रंग-बिरंगी मालाओं, पताकाओं, मणियोंकी चमक, शुद्ध चेतनके समान उज्ज्वल मोती, सुन्दर-सुन्दर भोग-सामग्री, सुगन्धित धूप-दीप तथा फूलोंके गहनोंसे वे महल खूब सजाये हुए थे । आभूषणोंको भी भूषित करनेवाले देवताओंके समान स्त्री-पुरुष उसकी सेवामें लगे रहते

---

१. बादरायणिरुवाच । २. सदस्सभाचैत्यगृहादिषु । ३. युस्ततस्तत्र । ४. त्वयाऽऽवृताम् । ५. चनं न तृप्त० । ६. तथा स्थलैर्मारकतैर्भात० । ७. मण्डलैः ।

तस्मिन् स भगवान् रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया ।
रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल ॥ ३५

बुभुजे[1] च यथाकालं कामान् धर्ममपीडयन् ।
वर्षपूगान् बहून् नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥ ३६

थे ॥ ३३-३४ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीरामजी आत्माराम जितेन्द्रिय पुरुषोंके शिरोमणि थे । उसी महलमें वे अपनी प्राणप्रिया प्रेममयी पत्नी श्रीसीताजीके साथ विहार करते थे ॥ ३५ ॥ सभी स्त्री-पुरुष जिनके चरणकमलोंका ध्यान करते रहते हैं, वे ही भगवान् श्रीराम बहुत वर्षोंतक धर्मकी मर्यादाका पालन करते हुए समयानुसार भोगोंका उपभोग करते रहे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवनमस्कन्धे श्रीरामोपाख्याने[2]
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

इक्ष्वाकुवंशके शेष राजाओंका वर्णन

श्रीशुक उवाच

कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः ।
पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाभवत्ततः ॥ १

देवानीकस्ततोऽनीहः[3] पारियात्रोऽथ तत्सुतः ।
ततो बलस्थलस्तस्माद् वज्रनाभोऽर्कसंभवः ॥ २

खगणस्तत्सुतस्तस्माद् विधृतिश्चाभवत्[4] सुतः ।
ततो हिरण्यनाभोऽभूद् योगाचार्यस्तु जैमिनेः ॥ ३

शिष्यः कौसल्य आध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद् यतः ।
योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रन्थिभेदकम्[5] ॥ ४

पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसन्धिस्ततोऽभवत् ।
सुदर्शनोऽथाग्निवर्णः शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः ॥ ५

योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः ।
कलेरन्ते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥ ६

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कुशका पुत्र हुआ अतिथि, उसका निषध, निषधका नभ, नभका पुण्डरीक और पुण्डरीकका क्षेमधन्वा ॥ १ ॥क्षेमधन्वाका देवानीक, देवानीकका अनीह, अनीहका पारियात्र, पारियात्रका बलस्थल और बलस्थलका पुत्र हुआ वज्रनाभ । यह सूर्यका अंश था ॥ २ ॥

वज्रनाभसे खगण, खगणसे विधृति और विधृतिसे हिरण्यनाभकी उत्पत्ति हुई । वह जैमिनिका शिष्य और योगाचार्य था ॥ ३ ॥ कोसलदेशवासी याज्ञवल्क्य ऋषिने उसकी शिष्यता स्वीकार करके उससे अध्यात्मयोगकी शिक्षा ग्रहण की थी । वह योग हृदयकी गाँठ काट देनेवाला तथा परम सिद्धि देनेवाला है ॥ ४ ॥

हिरण्यनाभका पुष्य, पुष्यका ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिका सुदर्शन, सुदर्शनका अग्निवर्ण, अग्निवर्णका शीघ्र और शीघ्रका पुत्र हुआ मरु ॥ ५ ॥ मरुने योगसाधनासे सिद्धि प्राप्त कर ली और वह इस समय भी कलाप नामक ग्राममें रहता है । कलियुगके अन्तमें सूर्यवंशके नष्ट हो जानेपर वह उसे फिरसे चलायेगा ॥ ६ ॥

---

१. बुभुजे स कामानन्यानपीडयन् । २. प्राचीन प्रतिमें 'श्रीरामोपाख्याने' इतना अंश नहीं है । ३. होनः । ४. विसृष्टि-श्चाभवत्ततः । ५. दनम् ।

तस्मात्[1] प्रसुश्रुतस्तस्य सन्धिस्तस्याप्यमर्षणः ।
महस्वांस्तत्सुतस्तस्माद् विश्वसाह्वोऽन्वजायत ॥ ७

ततः[2] प्रसेनजित् तस्मात् तक्षको भविता पुनः ।
ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ॥ ८

एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् ।
बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः ॥ ९

उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति ।
प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥ १०

सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् ।
प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ॥ ११

भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः ।
तस्यान्तरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित् ॥ १२

बृहद्राजस्तु[3] तस्यापि बर्हिस्तस्मात् कृतञ्जयः ।
रणञ्जयस्तस्य सुतः सञ्जयो भविता ततः ॥ १३

तस्माच्छाक्योऽथ[4] शुद्धोदो लाङ्गलस्तत्सुतः स्मृतः ।
ततः प्रसेनजित् तस्मात् क्षुद्रको भविता ततः ॥ १४

रणको भविता तस्मात् सुरथस्तनयस्ततः ।
सुमित्रो नाम निष्ठान्त एते बार्हद्बलान्वयाः[5] ॥ १५

इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति ।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १६

मरुसे प्रसुश्रुत, उससे सन्धि और सन्धिसे अमर्षणका जन्म हुआ। अमर्षणका महस्वान् और महस्वान्का विश्वसाह्व ॥ ७ ॥ विश्वसाह्वका प्रसेनजित्, प्रसेनजित्का तक्षक और तक्षकका पुत्र बृहद्बल हुआ। परीक्षित्! इसी बृहद्बलको तुम्हारे पिता अभिमन्युने युद्धमें मार डाला था ॥ ८ ॥

परीक्षित्! इक्ष्वाकुवंशके इतने नरपति हो चुके हैं। अब आनेवालोंके विषयमें सुनो। बृहद्बलका पुत्र होगा बृहद्रण ॥ ९ ॥ बृहद्रणका उरुक्रिय, उसका वत्सवृद्ध, वत्सवृद्धका प्रतिव्योम, प्रतिव्योमका भानु और भानुका पुत्र होगा सेनापति दिवाक ॥ १० ॥ दिवाकका वीर सहदेव, सहदेवका बृहदश्व, बृहदश्वका भानुमान्, भानुमान्का प्रतीकाश्व और प्रतीकाश्वका पुत्र होगा सुप्रतीक ॥ ११ ॥ सुप्रतीकका मरुदेव, मरुदेवका सुनक्षत्र, सुनक्षत्रका पुष्कर, पुष्करका अन्तरिक्ष, अन्तरिक्षका सुतपा और उसका पुत्र होगा अमित्रजित् ॥ १२ ॥ अमित्रजित्से बृहद्राज, बृहद्राजसे बर्हि, बर्हिसे कृतञ्जय, कृतञ्जयसे रणञ्जय और उससे सञ्जय होगा ॥ १३ ॥ सञ्जयका शाक्य, उसका शुद्धोद और शुद्धोदका लाङ्गल, लाङ्गलका प्रसेनजित् और प्रसेनजित्का पुत्र क्षुद्रक होगा ॥ १४ ॥क्षुद्रकसे रणक, रणकसे सुरथ और सुरथसे इस वंशके अन्तिम राजा सुमित्रका जन्म होगा। ये सब बृहद्बलके वंशधर होंगे ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकुका यह वंश सुमित्रतक ही रहेगा। क्योंकि सुमित्रके राजा होनेपर कलियुगमें यह वंश समाप्त हो जायगा ॥ १६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवनमस्कन्धे इक्ष्वाकुवंशवर्णनं[6] नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

१. तस्मात् प्रश्रुतपुत्रस्तु सन्धि० । २. प्राचीन प्रतिमें 'ततः'' पुनः' यह पूर्वार्ध नहीं है, इसके स्थानपर वर्तमान प्रतिमें आया हुआ 'भविता''' मित्रजित्' यह बारहवाँ श्लोक दिया है, इसमें भी 'मरुदेवो' के स्थानमें 'मनुदेवो' पाठ है। ३. बृहद्भुजस्तु। ४. तस्मात्साक्योऽथ। ५. लाः स्मृताः। ६. वंशानुकथने श्रीरामचरिते।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

राजा निमिके वंशका वर्णन

श्रीशुक उवाच

निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ।
आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग्वृतोऽस्मि भोः ॥ १

तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ।
तूष्णीमासीद् गृहपतिः सोऽपीन्द्रस्याकरोन्मखम् ॥ २

निमिश्चलमिदं विद्वान् सत्रमारभतात्मवान् ।
ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद् यावता गुरुः ॥ ३

शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः ।
अशपत् पततात् देहो निमेः पण्डितमानिनः ॥ ४

निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने ।
तवापि पततात् देहो लोभाद् धर्ममजानतः ॥ ५

इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः ।
मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६

गन्धवस्तुषु तद्देहं[1] निधाय मुनिसत्तमाः ।
समाप्ते सत्रयागेऽथ देवानूचुः समागतान् ॥ ७

राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि ।
तथेत्युक्ते निमिः प्राह मा भून्मे देहबन्धनम् ॥ ८

यस्य योगं न वाञ्छन्ति वियोगभयकातराः ।
भजन्ति चरणाम्भोजं मुनयो हरिमेधसः ॥ ९

देहं नावरुरुत्सेऽहं दुःखशोकभयावहम्[2] ।
सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥ १०

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इक्ष्वाकुके पुत्र थे निमि। उन्होंने यज्ञ आरम्भ करके महर्षि वसिष्ठको ऋत्विजके रूपमें वरण किया। वसिष्ठजीने कहा कि 'राजन् ! इन्द्र अपने यज्ञके लिये मुझे पहले ही वरण कर चुके हैं ॥ १ ॥ उनका यज्ञ पूरा करके मैं तुम्हारे पास आऊँगा। तबतक तुम मेरी प्रतीक्षा करना।' यह बात सुनकर राजा निमि चुप हो रहे और वसिष्ठजी इन्द्रका यज्ञ कराने चले गये ॥ २ ॥ विचारवान् निमिने यह सोचकर कि जीवन तो क्षणभङ्गुर है, विलम्ब करना उचित न समझा और यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। जबतक गुरु वसिष्ठजी न लौटे, तबतकके लिये उन्होंने दूसरे ऋत्विजोंको वरण कर लिया ॥ ३ ॥ गुरु वसिष्ठजी जब इन्द्रका यज्ञ सम्पन्न करके लौटे, तो उन्होंने देखा कि उनके शिष्य निमिने तो उनकी बात न मानकर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया है। उस समय उन्होंने शाप दिया कि 'निमिको अपनी विचारशीलता और पाण्डित्यका बड़ा घमंड है, इसलिये इसका शरीरपात हो जाय' ॥ ४ ॥ निमिकी दृष्टिमें गुरु वसिष्ठका यह शाप धर्मके अनुकूल नहीं, प्रतिकूल था। इसलिये उन्होंने भी शाप दिया कि 'आपने लोभवश अपने धर्मका आदर नहीं किया, इसलिये आपका शरीर भी गिर जाय' ॥ ५ ॥ यह कहकर आत्मविद्यामें निपुण निमिने अपने शरीरका त्याग कर दिया। परीक्षित् ! इधर हमारे वृद्ध प्रपितामह वसिष्ठजीने भी अपना शरीर त्यागकर मित्रावरुणके द्वारा उर्वशीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया ॥ ६ ॥ राजा निमिके यज्ञमें आये हुए श्रेष्ठ मुनियोंने राजाके शरीरको सुगन्धित वस्तुओंमें रख दिया। जब सत्रयागकी समाप्ति हुई और देवतालोग आये, तब उन लोगोंने उनसे प्रार्थना की ॥ ७ ॥ 'महानुभावो ! आपलोग समर्थ हैं। यदि आप प्रसन्न हैं तो राजा निमिका यह शरीर पुनः जीवित हो उठे।' देवताओंने कहा—'ऐसा ही हो।' उस समय निमिने कहा—'मुझे देहका बन्धन नहीं चाहिये ॥ ८ ॥ विचारशील मुनिजन अपनी बुद्धिको पूर्णरूपसे श्रीभगवान्‌में ही लगा देते हैं और उन्हींके चरणकमलोंका भजन करते हैं। एक-न-एक दिन यह शरीर अवश्य ही छूटेगा—इस भयसे भीत होनेके कारण वे इस शरीरका कभी संयोग ही नहीं चाहते; वे तो मुक्त ही होना चाहते हैं ॥ ९ ॥ अतः मैं अब दुःख, शोक और भयके मूल कारण इस शरीरको धारण करना नहीं चाहता। जैसे जलमें मछलीके लिये सर्वत्र ही मृत्युके अवसर हैं, वैसे

१. तं देहं। २. याश्रयात्।

देवा ऊचुः

विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम्।
उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥ ११

अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः।
देहं ममन्थुः स्म निमेः कुमारः समजायत ॥ १२

जन्मना जनकः सोऽभूद् वैदेहस्तु विदेहजः।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥ १३

तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नन्दिवर्धनः।
ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो[1] महीपते ॥ १४

तस्माद् बृहद्रथस्तस्य महावीर्यः सुधृत्पिता।
सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः ॥ १५

मरोः प्रतीपकस्तस्माज्जातः[2] कृतिरथो[3] यतः।
देवमीढस्तस्य सुतो विश्रुतोऽथ[4] महाधृतिः ॥ १६

कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमाथ[5] तत्सुतः।
स्वर्णरोमा सुतस्तस्य[6] ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १७

ततः[7] सीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम्।
सीता सीराग्रतो जाता तस्मात् सीरध्वजः स्मृतः ॥ १८

कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः।
धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥ १९

कृतध्वजात् केशिध्वजः खाण्डिक्यस्तु मितध्वजात्।
कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः ॥ २०

ही इस शरीरके लिये भी सब कहीं मृत्यु-ही-मृत्यु है' ॥ १० ॥

देवताओंने कहा—'मुनियो! राजा निमि बिना शरीरके ही प्राणियोंके नेत्रोंमें अपनी इच्छाके अनुसार निवास करें। वे वहाँ रहकर सूक्ष्मशरीरसे भगवान्‌का चिन्तन करते रहें। पलक उठने और गिरनेसे उनके अस्तित्वका पता चलता रहेगा ॥ ११ ॥ इसके बाद महर्षियोंने यह सोचकर कि 'राजाके न रहनेपर लोगोंमें अराजकता फैल जायगी' निमिके शरीरका मन्थन किया। उस मन्थनसे एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ जन्म लेनेके कारण उसका नाम हुआ जनक। विदेहसे उत्पन्न होनेके कारण 'वैदेह' और मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण उसी बालकका नाम 'मिथिल' हुआ। उसीने मिथिलापुरी बसायी ॥ १३ ॥

परीक्षित्! जनकका उदावसु, उसका नन्दिवर्धन, नन्दिवर्धनका सुकेतु, उसका देवरात, देवरातका बृहद्रथ, बृहद्रथका महावीर्य, महावीर्यका सुधृति, सुधृतिका धृष्टकेतु, धृष्टकेतुका हर्यश्व और उसका मरु नामक पुत्र हुआ ॥ १४-१५ ॥ मरुसे प्रतीपक, प्रतीपकसे कृतिरथ, कृतिरथसे देवमीढ, देवमीढसे विश्रुत और विश्रुतसे महाधृतिका जन्म हुआ ॥ १६ ॥ महाधृतिका कृतिरात, कृतिरातका महारोमा, महारोमाका स्वर्णरोमा और स्वर्णरोमाका पुत्र हुआ ह्रस्वरोमा ॥ १७ ॥ इसी ह्रस्वरोमाके पुत्र महाराज सीरध्वज थे। वे जब यज्ञके लिये धरती जोत रहे थे, तब उनके सीर (हल) के अग्रभाग (फाल) से सीताजीकी उत्पत्ति हुई। इसीसे उनका नाम 'सीरध्वज' पड़ा ॥ १८ ॥ सीरध्वजके कुशध्वज, कुशध्वजके धर्मध्वज और धर्मध्वजके दो पुत्र हुए—कृतध्वज और मितध्वज ॥ १९ ॥ कृतध्वजके केशिध्वज और मितध्वजके खाण्डिक्य हुए। परीक्षित्! केशिध्वज आत्मविद्यामें बड़ा प्रवीण था ॥ २० ॥

---

१. रीषो। २. प्रतिरथस्त०। ३. कृत०। ४. विश्वनाथो मरुत्कृतिः। ५. विरुतस्तत्सुतस्तस्मा०। ६. तस्मात्। ७. सीरध्वजस्ततो राजन् यज्ञार्थं।

स्वाप्डिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजाद्द्रुतः ।
भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः ॥ २१

शुचिस्तत्तनयस्तस्मात् सनद्वाजस्ततोऽभवत् ।
ऊर्ध्वकेतुः सनद्वाजादजोऽथ पुरुजित्सुतः ॥ २२

अरिष्टनेमिस्तस्यापि[1] श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः ।
ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमधिर्मिथिलाधिपः ॥ २३

तस्मात् समरथस्तस्य सुतः सत्यरथस्ततः ।
आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसंभवः[2] ॥ २४

वस्वनन्तोऽथ तत्पुत्रो युयुधो यत् सुभाषणः ।
श्रुतस्ततो जयस्तस्माद् विजयोऽस्मादृतः सुतः ॥ २५

शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो[3] धृतिस्ततः ।
बहुलाश्वो[4] धृतेस्तस्य कृतिरस्य महावशी ॥ २६

एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ।
योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७

स्वाप्डिक्य था कर्मकाण्डका मर्मज्ञ। वह केशिध्वजसे भयभीत होकर भाग गया। केशिध्वजका पुत्र भानुमान् और भानुमान्का शतद्युम्न था ॥ २१ ॥ शतद्युम्नसे शुचि, शुचिसे सनद्वाज, सनद्वाजसे ऊर्ध्वकेतु, ऊर्ध्वकेतुसे अज, अजसे पुरुजित्, पुरुजित्से अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमिसे श्रुतायु, श्रुतायुसे सुपार्श्वक, सुपार्श्वकसे चित्ररथ और चित्ररथसे मिथिलापति क्षेमधिका जन्म हुआ ॥ २२-२३ ॥ क्षेमधिसे समरथ, समरथसे सत्यरथ, सत्यरथसे उपगुरु और उपगुरुसे उपगुप्त नामक पुत्र हुआ। यह अग्निका अंश था ॥ २४ ॥ उपगुप्तका वस्वनन्त, वस्वनन्तका युयुध, युयुधका सुभाषण, सुभाषणका श्रुत, श्रुतका जय, जयका विजय और विजयका ऋत नामक पुत्र हुआ ॥ २५ ॥ ऋतका शुनक, शुनकका वीतहव्य, वीतहव्यका धृति, धृतिका बहुलाश्व, बहुलाश्वका कृति और कृतिका पुत्र हुआ महावशी ॥ २६ ॥

परीक्षित्! ये मिथिलके वंशमें उत्पन्न सभी नरपति 'मैथिल' कहलाते हैं। ये सब-के-सब आत्मज्ञानसे सम्पन्न एवं गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे मुक्त थे। क्यों न हो, याज्ञवल्क्य आदि बड़े-बड़े योगेश्वरोंकी इनपर महान् कृपा जो थी ॥ २७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे निमिवंशानुवर्णनं[5] नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

चन्द्रवंशका वर्णन

श्रीशुक उवाच

अथातः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः ।
यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब मैं तुम्हें चन्द्रमाके पावन वंशका वर्णन सुनाता हूँ। इस वंशमें पुरूरवा आदि बड़े-बड़े पवित्रकीर्ति राजाओंका कीर्तन किया जाता है ॥ १ ॥

---

१. स्याभूत्। २. गुस्त्वग्नि०। ३. वीतिहव्यो। ४. बहुलाख्यो। ५. जनकवंशस्त्रयो०।

सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् ।
जातस्यासीत् सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥ २

तस्य दृग्भ्योऽभवत् पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल ।
विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥ ३

सोऽयजद् राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् ।
पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात् तारां नामाहरद् बलात् ॥ ४

यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् ।
नात्यजत् तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥ ५

शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्[1] सासुरोडुपम् ।
हरो गुरुसुतं स्नेहात् सर्वभूतगणावृतः ॥ ६

सर्वदेवगणोपेतो महेन्द्रो गुरुमन्वयात् ।
सुरासुरविनाशोऽभूत् समरस्तारकामयः ॥ ७

निवेदितोऽथाङ्गिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत्[2] ।
तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत् पतिः ॥ ८

त्यज त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ।
नाहं त्वां भस्मसात् कुर्यां स्त्रियं सान्तानिकः सति ॥ ९

तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ।
स्पृहामाङ्गिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥ १०

ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन् विवदमानयोः ।
पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥ ११

कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ।
किं न वोचस्यसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाशु मे ॥ १२

सहस्रों सिरवाले विराट् पुरुष नारायणके नाभि-सरोवरके कमलसे ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई । ब्रह्माजीके पुत्र हुए अत्रि । वे अपने गुणोंके कारण ब्रह्माजीके समान ही थे ॥ २ ॥ उन्हीं अत्रिके नेत्रोंसे अमृतमय चन्द्रमाका जन्म हुआ । ब्रह्माजीने चन्द्रमाको ब्राह्मण, ओषधि और नक्षत्रोंका अधिपति बना दिया ॥ ३ ॥ उन्होंने तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त की और राजसूय यज्ञ किया । इससे उनका घमंड बढ़ गया और उन्होंने बलपूर्वक बृहस्पतिकी पत्नी ताराको हर लिया ॥ ४ ॥ देवगुरु बृहस्पतिने अपनी पत्नीको लौटा देनेके लिये उनसे बार-बार याचना की, परन्तु वे इतने मतवाले हो गये थे कि उन्होंने किसी प्रकार उनकी पत्नीको नहीं लौटाया । ऐसी परिस्थितिमें उसके लिये देवता और दानवमें घोर संग्राम छिड़ गया ॥ ५ ॥ शुक्राचार्यजीने बृहस्पतिजीके द्वेषसे असुरोंके साथ चन्द्रमाका पक्ष ले लिया और महादेवजीने स्नेहवश समस्त भूतगणोंके साथ अपने विद्यागुरु अङ्गिराजीके पुत्र बृहस्पतिका पक्ष लिया ॥ ६ ॥ देवराज इन्द्रने भी समस्त देवताओंके साथ अपने गुरु बृहस्पतिजीका ही पक्ष लिया । इस प्रकार ताराके निमित्तसे देवता और असुरोंका संहार करनेवाला घोर संग्राम हुआ ॥ ७ ॥

तदनन्तर अङ्गिरा ऋषिने ब्रह्माजीके पास जाकर यह युद्ध बंद करानेकी प्रार्थना की । इसपर ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बहुत डाँटा-फटकारा और ताराको उसके पति बृहस्पतिजीके हवाले कर दिया । जब बृहस्पतिजीको यह मालूम हुआ कि तारा तो गर्भवती है, तब उन्होंने कहा—॥ ८ ॥ 'दुष्टे ! मेरे क्षेत्रमें यह तो किसी दूसरेका गर्भ है । इसे तू अभी त्याग दे, तुरन्त त्याग दे । डर मत, मैं तुझे जलाऊँगा नहीं । क्योंकि एक तो तू स्त्री है और दूसरे मुझे भी सन्तानकी कामना है । देवी होनेके कारण तू निर्दोष भी है ही' ॥ ९ ॥ अपने पतिकी बात सुनकर तारा अत्यन्त लज्जित हुई । उसने सोनेके समान चमकता हुआ एक बालक अपने गर्भसे अलग कर दिया । उस बालकको देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों ही मोहित हो गये और चाहने लगे कि यह हमें मिल जाय ॥ १० ॥ अब वे एक-दूसरेसे इस प्रकार जोर-जोरसे झगड़ा करने लगे कि 'यह तुम्हारा नहीं, मेरा है ।' ऋषियों और देवताओंने तारासे पूछा कि 'यह किसका लड़का है ।' परन्तु ताराने लज्जावश कोई उत्तर न दिया ॥ ११ ॥ बालकने अपनी माताकी झूठी लज्जासे क्रोधित होकर कहा—'दुष्टे ! तू बतलाती क्यों नहीं ? तू अपना कुकर्म मुझे शीघ्र-से-शीघ्र बतला दे' ॥ १२ ॥

---

१. हीदमुरुदयम् । २. विश्वगृद् ।

ब्रह्मा तां[1] रह आहूय समप्राक्षीद्य सान्त्वयन् ।
सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥ १३

तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप ।
बुद्ध्या गम्भीरया येन पुत्रेणापोडुराण् मुदम् ॥ १४

ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः ।
तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥ १५

श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान् सुरर्षिणा ।
तदन्तिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥ १६

मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् ।
निशम्य[2] पुरुषश्रेष्ठं कन्दर्पमिव रूपिणम् ।
धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदन्तिके ॥ १७

स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ॥ १८

राजोवाच

स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किम् ।
संरमस्व मया साकं[3] रतिर्नौ शाश्वतीः समाः ॥ १९

उर्वश्युवाच

कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुन्दर ।
यदङ्गान्तरमासाद्य च्यवते ह रिरंसया ॥ २०

एतावुरणकौ राजन् न्यासौ रक्षस्व मानद ।
संरंस्ये भवता[4] साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः ॥ २१

उसी समय ब्रह्माजीने ताराको एकान्तमें बुलाकर बहुत कुछ समझा-बुझाकर पूछा। तब ताराने धीरेसे कहा कि 'चन्द्रमाका।' इसलिये चन्द्रमाने उस बालकको ले लिया ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! ब्रह्माजीने उस बालकका नाम रखा 'बुध', क्योंकि उसकी बुद्धि बड़ी गम्भीर थी। ऐसा पुत्र प्राप्त करके चन्द्रमाको बहुत आनन्द हुआ ॥ १४ ॥

परीक्षित् ! बुधके द्वारा इलाके गर्भसे पुरूरवाका जन्म हुआ। इसका वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ। एक दिन इन्द्रकी सभामें देवर्षि नारदजी पुरूरवाके रूप, गुण, उदारता, शील-स्वभाव, धन-सम्पत्ति और पराक्रमका गान कर रहे थे। उन्हें सुनकर उर्वशीके हृदयमें कामभावका उदय हो आया और उससे पीड़ित होकर वह देवाङ्गना पुरूरवाके पास चली आयी ॥ १५-१६ ॥ यद्यपि उर्वशीको मित्रावरुणके शापसे ही मृत्युलोकमें आना पड़ा था, फिर भी पुरुषशिरोमणि पुरूरवा मूर्तिमान् कामदेवके समान सुन्दर हैं—यह सुनकर सुर-सुन्दरी उर्वशीने धैर्य धारण किया और वह उनके पास चली आयी ॥ १७ ॥ देवाङ्गना उर्वशीको देखकर राजा पुरूरवाके नेत्र हर्षसे खिल उठे। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने बड़ी मीठी वाणीसे कहा— ॥ १८ ॥

राजा पुरूरवाने कहा—सुन्दरी ! तुम्हारा स्वागत है। बैठो, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ ? तुम मेरे साथ विहार करो और हम दोनोंका यह विहार अनन्त कालतक चलता रहे ॥ १९ ॥

उर्वशीने कहा—'राजन् ! आप सौन्दर्यके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। भला, ऐसी कौन कामिनी है जिसकी दृष्टि और मन आपमें आसक्त न हो जाय ? क्योंकि आपके समीप आकर मेरा मन रमणकी इच्छासे अपना धैर्य खो बैठा है ॥ २० ॥ राजन् ! जो पुरुष रूप-गुण आदिके कारण प्रशंसनीय होता है, वही स्त्रियोंको अभीष्ट होता है। अतः मैं आपके साथ अवश्य विहार करूँगी। परन्तु मेरे प्रेमी महाराज ! मेरी एक शर्त है। मैं आपको धरोहरके रूपमें भेड़के दो बच्चे सौंपती हूँ। आप इनकी रक्षा करना ॥ २१ ॥

---

१. तारां समाहूय । २. शा० । ३. सार्द्धं सुरतिः शा० । ४. ता शश्वच्छ्लाघ्यः ।

घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वान्यत्र मैथुनात् ।
विवाससं तत्[1] तथेति प्रतिपेदे महामनाः ॥ २२

वीरशिरोमणे! मैं केवल घी खाऊँगी और मैथुनके अतिरिक्त और किसी भी समय आपको वस्त्रहीन न देख सकूँगी।' परम मनस्वी पुरुरवाने ठीक है—ऐसा कहकर उसकी शर्त स्वीकार कर ली ॥ २२ ॥

अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम् ।
को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम् ॥ २३

और फिर उर्वशीसे कहा—'तुम्हारा यह सौन्दर्य अद्भुत है। तुम्हारा भाव अलौकिक है। यह तो सारी मनुष्यसृष्टिको मोहित करनेवाला है। और देवि! कृपा करके तुम स्वयं यहाँ आयी हो। फिर कौन ऐसा मनुष्य है जो तुम्हारा सेवन न करेगा? ॥ २३ ॥

तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयन्त्या यथार्हतः ।
रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु ॥ २४

परीक्षित्! तब उर्वशी कामशास्त्रोक्त पद्धतिसे पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवाके साथ विहार करने लगी। वे भी देवताओंकी विहार-स्थली चैत्ररथ, नन्दनवन आदि उपवनोंमें उसके साथ स्वच्छन्द विहार करने लगे ॥ २४ ॥

रममाणस्तया देव्या पद्मकिञ्जल्कगन्धया ।
तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान् बहून् ॥ २५

देवी उर्वशीके शरीरसे कमलकेसरकी-सी सुगन्ध निकला करती थी। उसके साथ राजा पुरूरवाने बहुत वर्षोंतक आनन्द-विहार किया। वे उसके मुखकी सुरभिसे अपनी सुध-बुध खो बैठते थे ॥ २५ ॥

अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान् समचोदयत् ।
उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥ २६

इधर जब इन्द्रने उर्वशीको नहीं देखा, तब उन्होंने गन्धर्वोंको उसे लानेके लिये भेजा और कहा—'उर्वशीके बिना मुझे यह स्वर्ग फीका जान पड़ता है' ॥ २६ ॥

ते उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते ।
उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया ॥ २७

वे गन्धर्व आधी रातके समय घोर अन्धकारमें वहाँ गये और उर्वशीके दोनों भेड़ोंको, जिन्हें उसने राजाके पास धरोहर रखा था, चुराकर चलते बने ॥ २७ ॥

निशम्याक्रन्दितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः ।
हतास्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥ २८

उर्वशीने जब गन्धर्वोंके द्वारा ले जाये जाते हुए अपने पुत्रके समान प्यारे भेड़ोंकी 'बें-बें' सुनी, तब वह कह उठी कि 'अरे, इस कायरको अपना स्वामी बनाकर मैं तो मारी गयी। यह नपुंसक अपनेको बड़ा वीर मानता है। यह मेरे भेड़ोंको भी न बचा सका ॥ २८ ॥

यद्विश्रम्भादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः ।
यः शेते निशि संत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान् ॥ २९

इसीपर विश्वास करनेके कारण लुटेरे मेरे बच्चोंको लूटकर लिये जा रहे हैं। मैं तो मर गयी। देखो तो सही, यह दिनमें तो मर्द बनता है और रातमें स्त्रियोंकी तरह डरकर सोया रहता है' ॥ २९ ॥

इति वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्त्रैरिव कुञ्जरः ।
निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद् रुषा ॥ ३०

परीक्षित्! जैसे कोई हाथीको अंकुशसे बेध डाले, वैसे ही उर्वशीने अपने वचन-बाणोंसे राजाको बींध दिया। राजा पुरूरवाको बड़ा क्रोध आया और हाथमें तलवार लेकर वस्त्रहीन अवस्थामें ही वे उस ओर दौड़ पड़े ॥ ३० ॥

ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतन्त स्म विद्युतः[2] ।
आदाय मेषावायान्तं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥ ३१

गन्धर्वोंने उनके झपटते ही भेड़ोंको तो वहीं छोड़ दिया और स्वयं बिजलीकी तरह चमकने लगे। जब राजा पुरूरवा भेड़ोंको लेकर लौटे, तब उर्वशीने उस प्रकाशमें उन्हें वस्त्रहीन अवस्थामें देख लिया। (बस, वह उसी समय उन्हें छोड़कर चली गयी) ॥ ३१ ॥

ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन् विमना इव ।
तच्चित्तो विह्वलः[3] शोचन् बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥ ३२

परीक्षित्! राजा पुरूरवाने जब अपने शयनागारमें अपनी प्रियतमा उर्वशीको नहीं देखा तो वे अनमने हो गये। उनका चित्त उर्वशीमें ही बसा हुआ था। वे उसके लिये शोकसे विह्वल हो गये और उन्मत्तकी भाँति पृथ्वीमें इधर-उधर भटकने

१. तथा वेति। २. विद्युतः। ३. विह्वलः।

राजा भगीरथकी प्रार्थनापर भगवान् शिवका गङ्गाको अपने सिरपर धारण करना
Entreated by Bhagīratha Lord Śiva holds Gaṅgā on his head

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम

Lord Rāma the Maryādāpuruṣottama

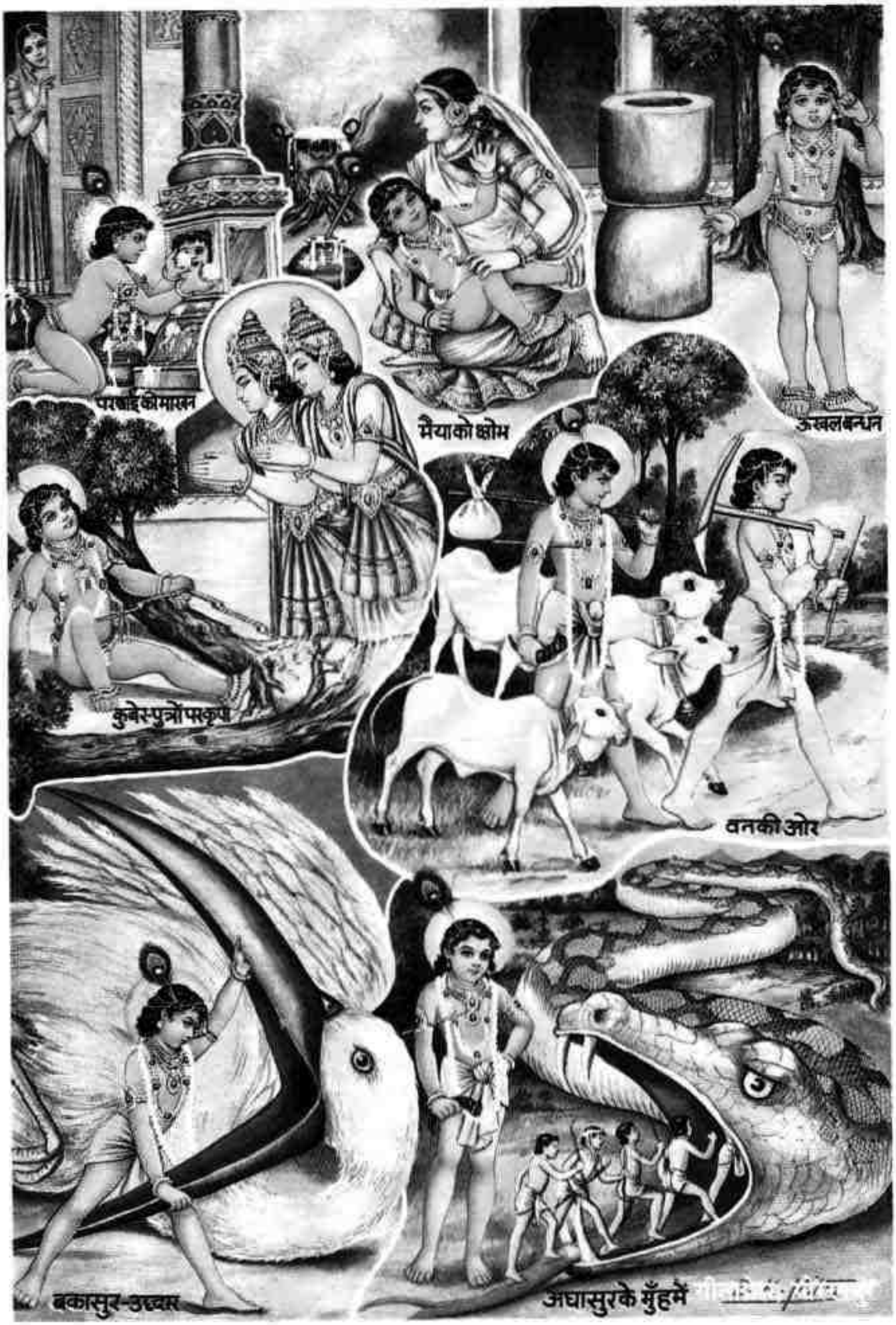

भगवान् श्रीकृष्णके बालचरित्र (क)

Childly pranks of Lord Śrī Kṛṣṇa (A)

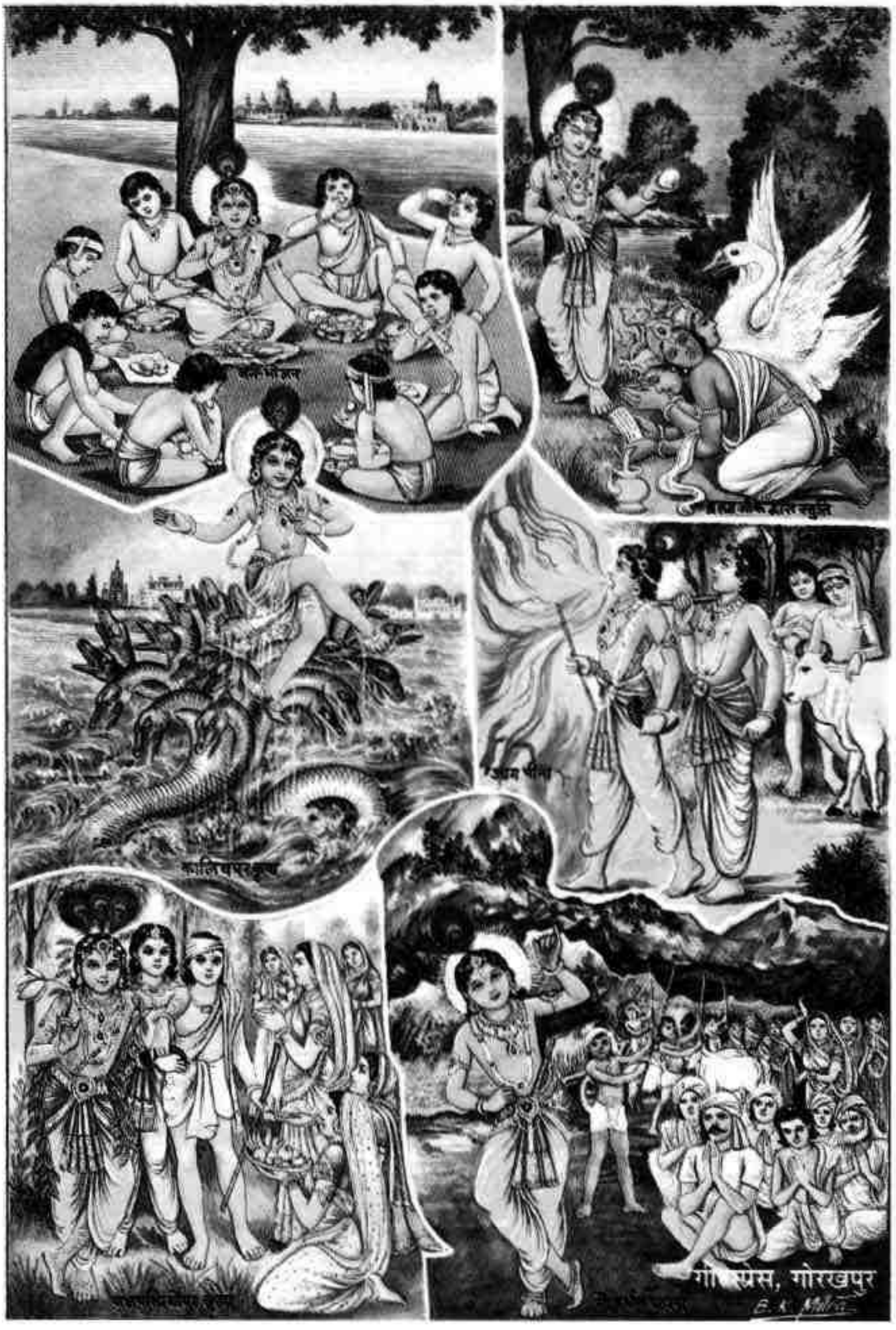

भगवान् श्रीकृष्णके बालचरित्र (ख)

Childly pranks of Lord Śrī Kṛṣṇa (B)

जरासन्धके कारागारसे राजाओंकी मुक्ति

The release of kings from the prison of Jarāsandha

शाल्व-संग्राम

Battle with Śālva

दन्तवक्त्र और विदूरथका उद्धार

Liberation of Dantavaktra and Vidūratha

माता देवकीके मृत पुत्रोंको वापस लाना

Restoration of dead sons of Devaki

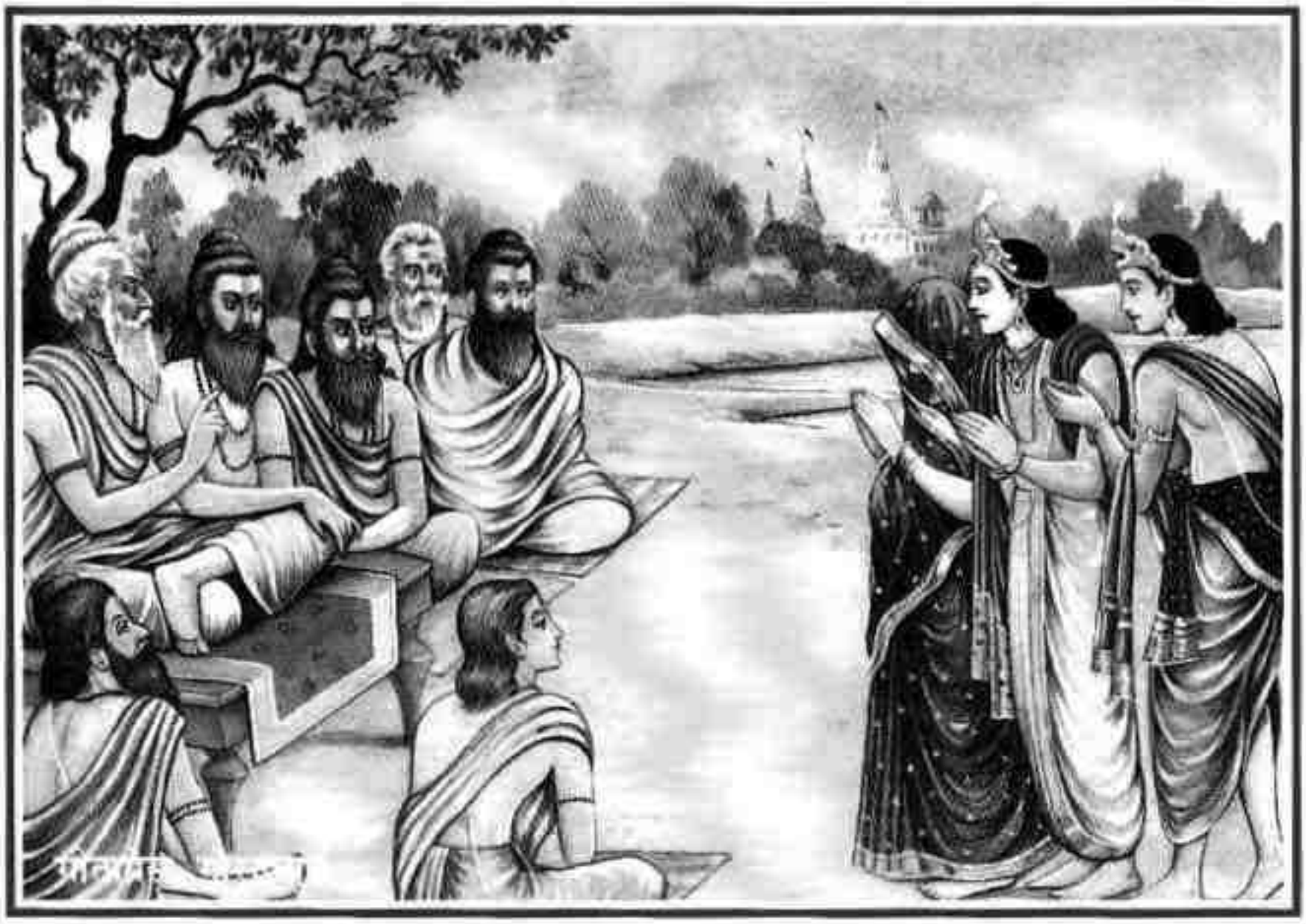

यदुकुलके विनाशका शाप

Curse for the annihilation of Yadu dynasty

परमधाम-गमनके पूर्वकी झाँकी

The glimpse of final departure of Lord

स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः ।
पञ्च प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥ ३३

अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ।
मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥ ३४

सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया[1] ।
खादन्त्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम् ॥ ३५

उर्वश्युवाच

मा मृथाः पुरुषोऽसि त्वं मा स्म त्वाद्युर्वृका इमे ।
क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥ ३६

स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः[2] प्रियसाहसाः ।
घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥ ३७

विधायालीकविश्रम्भमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः ।
नवं नवमभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥ ३८

संवत्सरान्ते हि भवानेकरात्रं मयेश्वर ।
वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यन्त्यपराणि भोः ॥ ३९

अन्तर्वत्नीमुपालक्ष्य देवीं स प्रययौ पुरम् ।
पुनस्तत्र गतोऽब्दान्ते उर्वशीं वीरमातरम् ॥ ४०

उपलभ्य मुदा युक्तः समुवास[3] तया निशाम् ।
अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम् ॥ ४१

गन्धर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यन्ति मामिति ।
तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ।
उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन् वने ॥ ४२

लगे ॥ ३२ ॥ एक दिन कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तटपर उन्होंने उर्वशी और उसकी पाँच प्रसन्नमुखी सखियोंको देखा और बड़ी मीठी वाणीसे कहा— ॥ ३३ ॥ 'प्रिये ! तनिक ठहर जाओ । एक बार मेरी बात मान लो । निष्ठुरे ! अब आज तो मुझे सुखी किये बिना मत जाओ । क्षणभर ठहरो; आओ हम दोनों कुछ बातें तो कर लें ॥ ३४ ॥ देवि ! अब इस शरीरपर तुम्हारा कृपा-प्रसाद नहीं रहा, इसीसे तुमने इसे दूर फेंक दिया है । अतः मेरा यह सुन्दर शरीर अभी ढेर हुआ जाता है और तुम्हारे देखते-देखते इसे भेड़िये और गीध खा जायँगे' ॥ ३५ ॥

उर्वशीने कहा—राजन् ! तुम पुरुष हो । इस प्रकार मत मरो । देखो, सचमुच ये भेड़िये तुम्हें खा न जायँ ! स्त्रियोंकी किसीके साथ मित्रता नहीं हुआ करती । स्त्रियोंका हृदय और भेड़ियोंका हृदय बिलकुल एक-जैसा होता है ॥ ३६ ॥ स्त्रियाँ निर्दय होती हैं । क्रूरता तो उनमें स्वाभाविक ही रहती है । तनिक-सी बातमें चिढ़ जाती हैं और अपने सुखके लिये बड़े-बड़े साहसके काम कर बैठती हैं, थोड़े-से स्वार्थके लिये विश्वास दिलाकर अपने पति और भाईतकको मार डालती हैं ॥ ३७ ॥ इनके हृदयमें सौहार्द तो है ही नहीं । भोले-भाले लोगोंको झूठ-मूठका विश्वास दिलाकर फाँस लेती हैं और नये-नये पुरुषकी चाटसे कुलटा और स्वच्छन्दचारिणी बन जाती हैं ॥ ३८ ॥ तो फिर तुम धीरज धरो । तुम राजराजेश्वर हो । घबराओ मत । प्रति एक वर्षके बाद एक रात तुम मेरे साथ रहोगे । तब तुम्हारे और भी सन्तानें होंगी ॥ ३९ ॥

राजा पुरूरवाने देखा कि उर्वशी गर्भवती है, इसलिये वे अपनी राजधानीमें लौट आये । एक वर्षके बाद फिर वहाँ गये । तबतक उर्वशी एक वीर पुत्रकी माता हो चुकी थी ॥ ४० ॥ उर्वशीके मिलनेसे पुरूरवाको बड़ा सुख मिला और वे एक रात उसीके साथ रहे । प्रातःकाल जब वे विदा होने लगे, तब विरहके दुःखसे वे अत्यन्त दीन हो गये । उर्वशीने उनसे कहा— ॥ ४१ ॥ 'तुम इन गन्धर्वोंकी स्तुति करो, ये चाहें तो तुम्हें मुझे दे सकते हैं । तब राजा पुरूरवाने गन्धर्वोंकी स्तुति की । परीक्षित् ! राजा पुरूरवाकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर गन्धर्वोंने उन्हें एक अग्निस्थाली (अग्निस्थापन करनेका पात्र) दी । राजाने समझा यही उर्वशी है, इसलिये उसको हृदयसे लगाकर वे एक वनसे दूसरे वनमें घूमते रहे ॥ ४२ ॥

---

१. त्वया हृतः । २. दुर्मुखाः । ३. स उवा० ।

स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहानाध्यायतो निशि ।
त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत ॥ ४३

जब उन्हें होश हुआ, तब वे स्थालीको वनमें छोड़कर अपने महलमें लौट आये एवं रातके समय उर्वशीका ध्यान करते रहे। इस प्रकार जब त्रेतायुगका प्रारम्भ हुआ, तब उनके हृदयमें तीनों वेद प्रकट हुए ॥ ४३ ॥

स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य[1] सः ।
तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥ ४४

फिर वे उस स्थानपर गये, जहाँ उन्होंने वह अग्निस्थाली छोड़ी थी। अब उस स्थानपर शमीवृक्षके गर्भमें एक पीपलका वृक्ष उग आया था, उसे देखकर उन्होंने उससे दो अरणियाँ (मन्थनकाष्ठ) बनायीं। फिर उन्होंने उर्वशीलोककी कामनासे नीचेकी

उर्वशीं मन्त्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् ।
आत्मानमुभयोर्मध्ये यत् तत् प्रजननं प्रभुः ॥ ४५

अरणिको उर्वशी, ऊपरकी अरणिको पुरूरवा और बीचके काष्ठको पुत्ररूपसे चिन्तन करते हुए अग्नि प्रज्वलित करनेवाले मन्त्रोंसे मन्थन किया ॥ ४४-४५ ॥

तस्य निर्मन्थनाज्जातो जातवेदा विभावसुः ।
त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६

उनके मन्थनसे 'जातवेदा' नामका अग्नि प्रकट हुआ। राजा पुरूरवाने अग्निदेवताको त्रयीविद्याके द्वारा आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि—इन तीन भागोंमें विभक्त करके पुत्ररूपसे स्वीकार कर लिया ॥ ४६ ॥

तेनायजत यज्ञेशं[2] भगवन्तमधोक्षजम् ।
उर्वशीलोकमन्विच्छन् सर्वदेवमयं हरिम् ॥ ४७

फिर उर्वशीलोककी इच्छासे पुरूरवाने उन तीनों अग्नियोंद्वारा सर्वदेवस्वरूप इन्द्रियातीत यज्ञपति भगवान् श्रीहरिका यजन किया ॥ ४७ ॥

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४८

परीक्षित् ! त्रेताके पूर्व सत्ययुगमें एकमात्र प्रणव (ॐकार) ही वेद था। सारे वेद-शास्त्र उसीके अन्तर्भूत थे। देवता थे एकमात्र नारायण; और कोई न था। अग्नि भी तीन नहीं, केवल एक था और वर्ण भी केवल एक 'हंस' ही था ॥ ४८ ॥

पुरूरवस एवासीत् त्रयी त्रेतामुखे नृप ।
अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान् ॥ ४९

परीक्षित् ! त्रेताके प्रारम्भमें पुरूरवासे ही वेदत्रयी और अग्नित्रयीका आविर्भाव हुआ। राजा पुरूरवाने अग्निको सन्तानरूपसे स्वीकार करके गन्धर्वलोककी प्राप्ति की ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे ऐलोपाख्याने[3]
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

ऋचीक, जमदग्नि और परशुरामजीका चरित्र

श्रीशुक[4] उवाच

ऐलस्य चोर्वशीगर्भात् षडासन्नात्मजा नृप ।
आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! उर्वशीके गर्भसे पुरूरवाके छः पुत्र हुए—आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय ॥ १ ॥

---

१. विलोक्य । २. देवेशं । ३. प्राचीन प्रतिमें इसके पहले 'सोमवंशे' यह पाठ अधिक है । ४. बादरायणिरुवाच ।

श्रुतायोर्वसुमान् पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतञ्जयः ।
रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥ २

भीमस्तु विजयस्याथ काञ्चनो होत्रकस्ततः ।
तस्य जह्नुः सुतो गङ्गां गण्डूषीकृत्य योऽपिबत् ।
जह्नोस्तु पूरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः ॥ ३

ततः कुशः कुशस्यापि कुशाम्बुस्तनयो[1] वसुः ।
कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत् कुशाम्बुजः ॥ ४

तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः ।
वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥ ५

एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥ ६

इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणान्तिकम् ।
आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥ ७

स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्वा चापत्यकाम्यया ।
श्रपयित्वोभयैर्मन्त्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ॥ ८

तावत् सत्यवती मात्रा स्वचरुं[2] याचिता सती ।
श्रेष्ठं मत्वा तयायच्छन्मात्रे[3] मातुरदत् स्वयम् ॥ ९

तद् विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः ।
घोरो दण्डधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥ १०

प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूदिति भार्गवः ।
अथ तर्हि भवेत् पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥ ११

सा चाभूत् सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी ।
रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाह याम् ॥ १२

श्रुतायुका पुत्र था वसुमान्, सत्यायुका श्रुतञ्जय, रयका एक और जयका अमित ॥ २ ॥ विजयका भीम, भीमका काञ्चन, काञ्चनका होत्र और होत्रका पुत्र था जह्नु । ये जह्नु वही थे, जो गङ्गाजीको अपनी अञ्जलिमें लेकर पी गये थे । जह्नुका पुत्र था पूरु, पूरुका बलाक और बलाकका अजक ॥ ३ ॥ अजकका कुश था । कुशके चार पुत्र थे—कुशाम्बु, तनय, वसु और कुशनाभ । इनमेंसे कुशाम्बुके पुत्र गाधि हुए ॥ ४ ॥

परीक्षित् ! गाधिकी कन्याका नाम था सत्यवती । ऋचीक ऋषिने गाधिसे उनकी कन्या माँगी । गाधिने यह समझकर कि ये कन्याके योग्य वर नहीं है, ऋचीकसे कहा— ॥ ५ ॥ 'मुनिवर ! हमलोग कुशिक-वंशके है । हमारी कन्या मिलनी कठिन है । इसलिये आप एक हजार ऐसे घोड़े लाकर मुझे शुल्करूपमें दीजिये, जिनका सारा शरीर तो श्वेत हो, परन्तु एक-एक कान श्याम वर्णका हो' ॥ ६ ॥ जब गाधिने यह बात कही, तब ऋचीक मुनि उनका आशय समझ गये और वरुणके पास जाकर वैसे ही घोड़े ले आये तथा उन्हें देकर सुन्दरी सत्यवतीसे विवाह कर लिया ॥ ७ ॥ एक बार महर्षि ऋचीकसे उनकी पत्नी और सास दोनोंने ही पुत्रप्राप्तिके लिये प्रार्थना की । महर्षि ऋचीकने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके दोनोंके लिये अलग-अलग मन्त्रोंसे चरु पकाया और स्नान करनेके लिये चले गये ॥ ८ ॥ सत्यवतीकी माँने यह समझकर कि ऋषिने अपनी पत्नीके लिये श्रेष्ठ चरु पकाया होगा, उससे वह चरु माँग लिया । इसपर सत्यवतीने अपना चरु तो माँको दे दिया और माँका चरु वह स्वयं खा गयी ॥ ९ ॥ जब ऋचीक मुनिको इस बातका पता चला, तब उन्होंने अपनी पत्नी सत्यवतीसे कहा कि 'तुमने बड़ा अनर्थ कर डाला । अब तुम्हारा पुत्र तो लोगोंको दण्ड देनेवाला घोर प्रकृतिका होगा और तुम्हारा भाई होगा एक श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता' ॥ १० ॥ सत्यवतीने ऋचीक मुनिको प्रसन्न किया और प्रार्थना की कि 'स्वामी ! ऐसा नहीं होना चाहिये ।' तब उन्होंने कहा—'अच्छी बात है । पुत्रके बदले तुम्हारा पौत्र वैसा (घोर प्रकृतिका) होगा ।' समयपर सत्यवतीके गर्भसे जमदग्निका जन्म हुआ ॥ ११ ॥ सत्यवती समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली परम पुण्यमयी 'कौशिकी' नदी बन गयी । रेणु ऋषिकी कन्या थी रेणुका । जमदग्निने उसका पाणिग्रहण किया ॥ १२ ॥

१. शाम्बुर्मूर्तरयो । २. सा चरुं । ३. तु सा य० ।

तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः ।
यवीयाञ्जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ॥ १३

यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥ १४

दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत्[1] ।
रजस्तमोवृतमहन् फल्गुन्यपि कृतेंऽहसि ॥ १५

राजोवाच

किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः ।
कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ॥ १६

श्रीशुक[2] उवाच

हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्रियर्षभः ।
दत्तं नारायणस्यांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥ १७

बाहून्[3] दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु ।
अव्याहतेन्द्रियौजःश्रीतेजोवीर्ययशोबलम्[4] ॥ १८

योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः ।
चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा ॥ १९

स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन् रेवाम्भसि मदोत्कटः ।
वैजयन्तीं स्रजं बिभ्रद् रुरोध सरितं भुजैः ॥ २०

विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतःसरिज्जलैः ।
नामृष्यत् तस्य तद् वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥ २१

गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः ।
माहिष्मत्यां संनिरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ॥ २२

रेणुकाके गर्भसे जमदग्नि ऋषिके वसुमान् आदि कई पुत्र हुए। उनमें सबसे छोटे परशुरामजी थे। उनका यश सारे संसारमें प्रसिद्ध है ॥ १३ ॥ कहते हैं कि हैहयवंशका अन्त करनेके लिये स्वयं भगवान्‌ने ही परशुरामके रूपमें अंशावतार ग्रहण किया था। उन्होंने इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियहीन कर दिया ॥ १४ ॥ यद्यपि क्षत्रियोंने उनका थोड़ा-सा ही अपराध किया था—फिर भी वे लोग बड़े दुष्ट, ब्राह्मणोंके अभक्त, रजोगुणी और विशेष करके तमोगुणी हो रहे थे। यही कारण था कि वे पृथ्वीके भार हो गये थे और इसीके फलस्वरूप भगवान् परशुरामने उनका नाश करके पृथ्वीका भार उतार दिया ॥ १५ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! अवश्य ही उस समयके क्षत्रिय विषयलोलुप हो गये थे; परन्तु उन्होंने परशुरामजीका ऐसा कौन-सा अपराध कर दिया, जिसके कारण उन्होंने बार-बार क्षत्रियोंके वंशका संहार किया? ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—परीक्षित्! उन दिनों हैहयवंशका अधिपति था अर्जुन। वह एक श्रेष्ठ क्षत्रिय था। उसने अनेकों प्रकारकी सेवा-शुश्रूषा करके भगवान् नारायणके अंशावतार दत्तात्रेयजीको प्रसन्न कर लिया और उनसे एक हजार भुजाएँ तथा कोई भी शत्रु युद्धमें पराजित न कर सके—यह वरदान प्राप्त कर लिया। साथ ही इन्द्रियोंका अबाध बल, अतुल सम्पत्ति, तेजस्विता, वीरता, कीर्ति और शारीरिक बल भी उसने उनकी कृपासे प्राप्त कर लिये थे ॥ १७-१८ ॥ वह योगेश्वर हो गया था। उसमें ऐसा ऐश्वर्य था कि वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, स्थूल-से-स्थूल रूप धारण कर लेता। सभी सिद्धियाँ उसे प्राप्त थीं। वह संसारमें वायुकी तरह सब जगह बेरोक-टोक विचरा करता ॥ १९ ॥ एक बार गलेमें वैजयन्ती माला पहने सहस्रबाहु अर्जुन बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियोंके साथ नर्मदा नदीमें जल-विहार कर रहा था। उस समय मदोन्मत्त सहस्रबाहुने अपनी बाँहोंसे नदीका प्रवाह रोक दिया ॥ २० ॥ दशमुख रावणका शिविर भी वहीं कहीं पासमें ही था। नदीकी धारा उलटी बहने लगी, जिससे उसका शिविर डूबने लगा। रावण अपनेको बहुत बड़ा वीर तो मानता ही था, इसलिये सहस्रार्जुनका यह पराक्रम उससे सहन नहीं हुआ ॥ २१ ॥ जब रावण सहस्रबाहु अर्जुनके पास जाकर बुरा-भला कहने लगा, तब उसने स्त्रियोंके सामने ही खेल-खेलमें रावणको पकड़ लिया और अपनी राजधानी माहिष्मतीमें ले जाकर बंदरके समान कैद कर लिया। पीछे पुलस्त्यजीके

---

१. मुपाहरत्। २. बादरायणिरुवाच। ३. बाहोर्द°। ४. शोऽतुलम्।

स एकदा तु मृगयां विचरन् विपिने[1] वने ।
यदृच्छयाऽऽश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ॥ २३

तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् ।
ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्या तपोधनः ॥ २४

स[2] वीरस्तत्र तद् दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् ।
तन्नाद्रियताग्निहोत्र्यां साभिलाषः स हैहयः ॥ २५

हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान् हर्तुमचोदयत् ।
ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रन्दतीं बलात् ॥ २६

अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः ।
श्रुत्वा तत्[3] तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाहतः ॥ २७

घोरमादाय[4] परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् ।
अन्वधावत दुर्धर्षो[5] मृगेन्द्र इव यूथपम् ॥ २८

तमापतन्तं भृगुवर्यमोजसा
धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम् ।
ऐणेयचर्माम्बरमर्कधामभि-
र्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥ २९

अचोदयद्धस्तिरथाश्वपत्तिभि-
र्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः ।
अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणा-
स्ता राम एको भगवानसूदयत् ॥ ३०

यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो
मनोऽनिलौजाः परचक्रसूदनः ।
ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकन्धरा
निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः ॥ ३१

कहनेसे सहस्रबाहुने रावणको छोड़ दिया ॥ २२ ॥

एक दिन सहस्रबाहु अर्जुन शिकार खेलनेके लिये बड़े घोर जंगलमें निकल गया था । दैववश वह जमदग्नि मुनिके आश्रमपर जा पहुँचा ॥ २३ ॥ परम तपस्वी जमदग्नि मुनिके आश्रममें कामधेनु रहती थी । उसके प्रतापसे उन्होंने सेना, मन्त्री और वाहनोंके साथ हैहयाधिपतिका खूब स्वागत-सत्कार किया ॥ २४ ॥ वीर हैहयाधिपतिने देखा कि जमदग्नि मुनिका ऐश्वर्य तो मुझसे भी बढ़ा-चढ़ा है । इसलिये उसने उनके स्वागत-सत्कारको कुछ भी आदर न देकर कामधेनुको ही ले लेना चाहा ॥ २५ ॥ उसने अभिमानवश जमदग्नि मुनिसे माँगा भी नहीं, अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि कामधेनुको छीन ले चलो । उसकी आज्ञासे उसके सेवक बछड़ेके साथ 'बाँ-बाँ' डकराती हुई कामधेनुको बलपूर्वक माहिष्मतीपुरी ले गये ॥ २६ ॥ जब वे सब चले गये, तब परशुरामजी आश्रमपर आये और उसकी दुष्टताका वृत्तान्त सुनकर चोट खाये हुए साँपकी तरह क्रोधसे तिलमिला उठे ॥ २७ ॥ वे अपना भयङ्कर फरसा, तरकस, ढाल एवं धनुष लेकर बड़े वेगसे उसके पीछे दौड़े—जैसे कोई किसीसे न दबनेवाला सिंह हाथीपर टूट पड़े ॥ २८ ॥

सहस्रबाहु अर्जुन अभी अपने नगरमें प्रवेश कर ही रहा था कि उसने देखा परशुरामजी महाराज बड़े वेगसे उसीकी ओर झपटे आ रहे हैं । उनकी बड़ी विलक्षण झाँकी थी । वे हाथमें धनुष-बाण और फरसा लिये हुए थे, शरीरपर काला मृगचर्म धारण किये हुए थे और उनकी जटाएँ सूर्यकी किरणोंके समान चमक रही थीं ॥ २९ ॥ उन्हें देखते ही उसने गदा, खड्ग, बाण, ऋष्टि, शतघ्नी और शक्ति आदि आयुधोंसे सुसज्जित एवं हाथी, घोड़े, रथ तथा पदातियोंसे युक्त अत्यन्त भयङ्कर सत्रह अक्षौहिणी सेना भेजी । भगवान् परशुरामने बात-की-बातमें अकेले ही उस सारी सेनाको नष्ट कर दिया ॥ ३० ॥ भगवान् परशुरामजीकी गति मन और वायुके समान थी । बस, वे शत्रुकी सेना काटते ही जा रहे थे । जहाँ-जहाँ वे अपने फरसेका प्रहार करते, वहाँ-वहाँ सारथि और वाहनोंके साथ बड़े-बड़े वीरोंकी बाँहें, जाँघें और कंधे कट-कटकर पृथ्वीपर गिरते जाते थे ॥ ३१ ॥

---

१. विजने । २. स चैश्वर्यं तु त० । ३. स तस्य । ४. परशुं घोरमादाय स क्षणाद्धर्मकार्मुकम् । ५. दुर्मर्षो ।

दृष्ट्वा स्वसैन्यं रुधिरौघकर्दमे
रणाजिरे रामकुठारसायकैः ।
विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं
निपातितं हैहय आपतद् रुषा ॥ ३२

अथार्जुनः पञ्चशतेषु बाहुभि-
र्धनुःषु बाणान् युगपत् स सन्दधे ।
रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणी-
स्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत्[1] समम् ॥ ३३

पुनः स्वहस्तैरचलान् मृधेऽङ्घ्रिपा-
नुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि[2] ।
भुजान् कुठारेण कठोरनेमिना
चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव ॥ ३४

कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृङ्गमिवाहरत् ।
हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ॥ ३५

अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा ।
समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥ ३६

स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च ।
वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ॥ ३७

राम राम महाबाहो भवान् पापमकारषीत् ।
अवधीन्नरदेवं यत् सर्वदेवमयं वृथा ॥ ३८

वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः ।
यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमगात् पदम् ॥ ३९

क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा ।
क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥ ४०

हैहयाधिपति अर्जुनने देखा कि मेरी सेनाके सैनिक, उनके धनुष, ध्वजाएँ और ढाल भगवान् परशुरामके फरसे और बाणोंसे कट-कटकर खूनसे लथपथ रणभूमिमें गिर गये हैं, तब उसे बड़ा क्रोध आया और वह स्वयं भिड़नेके लिये आ धमका ॥ ३२ ॥ उसने एक साथ ही अपनी हजार भुजाओंसे पाँच सौ धनुषोंपर बाण चढ़ाये और परशुरामजीपर छोड़े। परन्तु परशुरामजी तो समस्त शस्त्रधारियोंके शिरोमणि ठहरे। उन्होंने अपने एक धनुषपर छोड़े हुए बाणोंसे ही एक साथ सबको काट डाला ॥ ३३ ॥ अब हैहयाधिपति अपने हाथोंसे पहाड़ और पेड़ उखाड़कर बड़े वेगसे युद्धभूमिमें परशुरामजीकी ओर झपटा। परन्तु परशुरामजीने अपनी तीखी धारवाले फरसेसे बड़ी फुर्तीके साथ उसकी साँपोंके समान भुजाओंको काट डाला ॥ ३४ ॥ जब उसकी बाँहें कट गयीं, तब उन्होंने पहाड़की चोटीकी तरह उसका ऊँचा सिर धड़से अलग कर दिया। पिताके मर जानेपर उसके दस हजार लड़के डरकर भाग गये ॥ ३५ ॥

परीक्षित् ! विपक्षी वीरोंके नाशक परशुरामजीने बछड़ेके साथ कामधेनु लौटा ली। वह बहुत ही दुःखी हो रही थी। उन्होंने उसे अपने आश्रमपर लाकर पिताजीको सौंप दिया ॥ ३६ ॥ और माहिष्मतीमें सहस्रबाहुने तथा उन्होंने जो कुछ किया था, सब अपने पिताजी तथा भाइयोंको कह सुनाया। सब कुछ सुनकर जमदग्नि मुनिने कहा— ॥ ३७ ॥ 'हाय, हाय, परशुराम ! तुमने बड़ा पाप किया। राम, राम ! तुम बड़े वीर हो; परन्तु सर्वदेवमय नरदेवका तुमने व्यर्थ ही वध किया ॥ ३८ ॥ बेटा ! हमलोग ब्राह्मण हैं। क्षमाके प्रभावसे ही हम संसारमें पूजनीय हुए हैं। और तो क्या, सबके दादा ब्रह्माजी भी क्षमाके बलसे ही ब्रह्मपदको प्राप्त हुए हैं ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणोंकी शोभा क्षमाके द्वारा ही सूर्यकी प्रभाके समान चमक उठती है। सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि भी क्षमावानोंपर ही शीघ्र प्रसन्न होते हैं ॥ ४० ॥

---

१. रिच्छनत्करात्। २. मृधे।

राज्ञो मूर्धाभिषिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद् गुरुः ।
तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युतचेतनः ॥ ४१

बेटा ! सार्वभौम राजाका वध ब्राह्मणकी हत्यासे भी बढ़कर है । जाओ, भगवान्‌का स्मरण करते हुए तीर्थोंका सेवन करके अपने पापोंको धो डालो' ॥ ४१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवनमस्कन्धे
पञ्चदशोऽध्यायः[1] ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

परशुरामजीके द्वारा क्षत्रियसंहार और विश्वामित्रजीके वंशकी कथा

श्रीशुक उवाच

पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन ।
संवत्सरं तीर्थयात्रां[2] चरित्वाऽऽश्रममाव्रजत् ॥ १

कदाचिद् रेणुका याता गङ्गायां पद्ममालिनम् ।
गन्धर्वराजं क्रीडन्तमप्सरोभिरपश्यत ॥ २

विलोकयन्ती क्रीडन्तमुदकार्थं नदीं गता ।
होमवेलां न सस्मार किञ्चिच्चित्ररथस्पृहा ॥ ३

कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशङ्किता ।
आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृताञ्जलिः ॥ ४

व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् ।
घ्नतैनां[3] पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥ ५

रामः सञ्चोदितः पित्रा भ्रातॄन् मात्रा सहावधीत् ।
प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक् समाधेस्तपसश्च[4] सः ॥ ६

वरेणच्छन्दयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः ।
वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥ ७

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अपने पिताकी यह शिक्षा भगवान् परशुरामने 'जो आज्ञा' कहकर स्वीकार की । इसके बाद वे एक वर्षतक तीर्थयात्रा करके अपने आश्रमपर लौट आये ॥ १ ॥ एक दिनकी बात है, परशुरामजीकी माता रेणुका गङ्गातटपर गयी हुई थीं । वहाँ उन्होंने देखा कि गन्धर्वराज चित्ररथ कमलोंकी माला पहने अप्सराओंके साथ विहार कर रहा है ॥ २ ॥ वे जल लानेके लिये नदीतटपर गयी थीं, परन्तु वहाँ जलक्रीडा करते हुए गन्धर्वको देखने लगीं और पतिदेवके हवनका समय हो गया है—इस बातको भूल गयीं । उनका मन कुछ-कुछ चित्ररथकी ओर खिंच भी गया था ॥ ३ ॥ हवनका समय बीत गया, यह जानकर वे महर्षि जमदग्निके शापसे भयभीत हो गयीं और तुरंत वहाँसे आश्रमपर चली आयीं । वहाँ जलका कलश महर्षिके सामने रखकर हाथ जोड़ खड़ी हो गयीं ॥ ४ ॥ जमदग्नि मुनिने अपनी पत्नीका मानसिक व्यभिचार जान लिया और क्रोध करके कहा—'मेरे पुत्रो ! इस पापिनीको मार डालो ।' परन्तु उनके किसी भी पुत्रने उनकी वह आज्ञा स्वीकार नहीं की ॥ ५ ॥ इसके बाद पिताकी आज्ञासे परशुरामजीने माताके साथ सब भाइयोंको भी मार डाला । इसका कारण था । वे अपने पिताजीके योग और तपस्याका प्रभाव भलीभाँति जानते थे ॥ ६ ॥ परशुरामजीके इस कामसे सत्यवतीनन्दन महर्षि जमदग्नि बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—'बेटा ! तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँग लो ।' परशुरामजीने कहा—'पिताजी ! मेरी माता और सब भाई जीवित हो जायँ तथा उन्हें इस बातकी याद न रहे कि मैंने उन्हें मारा था' ॥ ७ ॥

---

१. प्राचीन प्रतिमें इसके पहले 'रामचरिते हैहयार्जुनवधे' यह अधिक पाठ है । २. चर्यां । ३. तेनोक्ताः पुत्रकाः पापा हन्यतां ते न । ४. सः सुतः ।

उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवाञ्जसा ।
पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥ ८

येऽर्जुनस्य[1] सुता राजन् स्मरन्तः[2] स्वपितुर्वधम् ।
रामवीर्यपराभूता लेभिरे शर्म न क्वचित् ॥ ९

एकदाऽऽश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ।
वैरं सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥ १०

दृष्ट्वाग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम् ।
भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥ ११

याच्यमानाः कृपणया राममात्रातिदारुणाः ।
प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबन्धवः[3] ॥ १२

रेणुका दुःखशोकार्ता निघ्नन्त्यात्मानमात्मना ।
राम रामेहि तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥ १३

तदुपश्रुत्य दूरस्थो हा रामेत्यार्तवत्स्वनम्[4] ।
त्वरयाऽऽश्रममासाद्य ददृशे पितरं हतम् ॥ १४

तद् दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहितः ।
हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वास्मान् स्वर्गतो भवान् ॥ १५

विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम् ।
प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रान्ताय मनो दधे ॥ १६

गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नविहतश्रियम् ।
तेषां[5] स शीर्षभी राजन्[6] मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥ १७

तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् ।
हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमङ्गलकारिणि ॥ १८

परशुरामजीके इस प्रकार कहते ही जैसे कोई सोकर उठे, सब-के-सब अनायास ही सकुशल उठ बैठे। परशुरामजीने अपने पिताजीका तपोबल जानकर ही तो अपने सुहृदोंका वध किया था ॥ ८ ॥

परीक्षित् ! सहस्रबाहु अर्जुनके जो लड़के परशुरामजीसे हारकर भाग गये थे, उन्हें अपने पिताके वधकी याद निरन्तर बनी रहती थी। कहीं एक क्षणके लिये भी उन्हें चैन नहीं मिलता था ॥ ९ ॥ एक दिनकी बात है, परशुरामजी अपने भाइयोंके साथ आश्रमसे बाहर वनकी ओर गये हुए थे। यह अवसर पाकर वैर साधनेके लिये सहस्रबाहुके लड़के वहाँ आ पहुँचे ॥ १० ॥ उस समय महर्षि जमदग्नि अग्निशालामें बैठे हुए थे और अपनी समस्त वृत्तियोंसे पवित्रकीर्ति भगवान्‌के ही चिन्तनमें मग्न हो रहे थे। उन्हें बाहरकी कोई सुध न थी। उसी समय उन पापियोंने जमदग्नि ऋषिको मार डाला। उन्होंने पहलेसे ही ऐसा पापपूर्ण निश्चय कर रखा था ॥ ११ ॥ परशुरामकी माता रेणुका बड़ी दीनतासे उनसे प्रार्थना कर रही थीं, परन्तु उन सबोंने उनकी एक न सुनी। वे बलपूर्वक महर्षि जमदग्निका सिर काटकर ले गये। परीक्षित् ! वास्तवमें वे नीच क्षत्रिय अत्यन्त क्रूर थे ॥ १२ ॥ सती रेणुका दुःख और शोकसे आतुर हो गयीं। वे अपने हाथों अपनी छाती और सिर पीट-पीटकर जोर-जोरसे रोने लगीं—'परशुराम ! बेटा परशुराम ! शीघ्र आओ ॥ १३ ॥ परशुरामजीने बहुत दूरसे माताका 'हा राम !' यह करुण-क्रन्दन सुन लिया। वे बड़ी शीघ्रतासे आश्रमपर आये और वहाँ आकर देखा कि पिताजी मार डाले गये हैं ॥ १४ ॥ परीक्षित् ! उस समय परशुरामजीको बड़ा दुःख हुआ। साथ ही क्रोध, असहिष्णुता, मानसिक पीड़ा और शोकके वेगसे वे अत्यन्त मोहित हो गये। 'हाय पिताजी ! आप तो बड़े महात्मा थे। पिताजी ! आप तो धर्मके सच्चे पुजारी थे। आप हमलोगोंको छोड़कर स्वर्ग चले गये' ॥ १५ ॥ इस प्रकार विलापकर उन्होंने पिताका शरीर तो भाइयोंको सौंप दिया और स्वयं हाथमें फरसा उठाकर क्षत्रियोंका संहार कर डालनेका निश्चय किया ॥ १६ ॥

परीक्षित् ! परशुरामजीने माहिष्मती नगरीमें जाकर सहस्रबाहु अर्जुनके पुत्रोंके सिरोंसे नगरके बीचो-बीच एक बड़ा भारी पर्वत खड़ा कर दिया। उस नगरकी शोभा तो उन ब्रह्मघाती नीच क्षत्रियोंके कारण ही नष्ट हो चुकी थी ॥ १७ ॥ उनके रक्तसे एक बड़ी भयङ्कर नदी बह निकली, जिसे देखकर ब्राह्मणद्रोहियोंका हृदय भयसे काँप उठता था। भगवान्‌ने देखा कि वर्तमान क्षत्रिय अत्याचारी हो गये हैं।

---

१. अर्जुनस्य । २. न्तश्च पि० । ३. बान्धवाः । ४. स्वरम् । ५. तस्यां । ६. राज्ञां ।

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
समन्तपञ्चके चक्रे शोणितोदान् ह्रदान् नृप ॥ १९

पितुः कायेन सन्धाय शिर आदाय बर्हिषि ।
सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥ २०

ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ।
अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥ २१

अन्येभ्योऽवान्तरदिशः कश्यपाय च मध्यतः ।
आर्यावर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥ २२

ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः ।
सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान् ॥ २३

स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् ।
ऋषीणां मण्डले सोऽभूत् सप्तमो रामपूजितः ॥ २४

जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमललोचनः ।
आगामिन्यन्तरे राजन् वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥ २५

आस्तेऽद्यापि महेन्द्राद्रौ न्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः ।
उपगीयमानचरितः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥ २६

एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः[1] ।
अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन् बहुशो नृपान् ॥ २७

गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः ।
तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥ २८

विश्वामित्रस्य चैवासन् पुत्रा एकशतं नृप ।
मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एव ते ॥ २९

इसलिये राजन्! उन्होंने अपने पिताके वधको निमित्त बनाकर इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया और कुरुक्षेत्रके समन्तपञ्चकमें ऐसे-ऐसे पाँच तालाब बना दिये, जो रक्तके जलसे भरे हुए थे ॥ १८-१९ ॥ परशुरामजीने अपने पिताजीका सिर लाकर उनके धड़से जोड़ दिया और यज्ञोंद्वारा सर्वदेवमय आत्मस्वरूप भगवान्‌का यजन किया ॥ २० ॥ यज्ञोंमें उन्होंने पूर्व दिशा होताको, दक्षिण दिशा ब्रह्माको, पश्चिम दिशा अध्वर्युको और उत्तर दिशा सामगान करनेवाले उद्गाताको दे दी ॥ २१ ॥ इसी प्रकार अग्निकोण आदि विदिशाएँ ऋत्विजोंको दीं, कश्यपजीको मध्यभूमि दी, उपद्रष्टाको आर्यावर्त दिया तथा दूसरे सदस्योंको अन्यान्य दिशाएँ प्रदान कर दीं ॥ २२ ॥ इसके बाद यज्ञान्त-स्नान करके वे समस्त पापोंसे मुक्त हो गये और ब्रह्मनदी सरस्वतीके तटपर मेघरहित सूर्यके समान शोभायमान हुए ॥ २३ ॥ महर्षि जमदग्निको स्मृतिरूप सङ्कल्पमय शरीरकी प्राप्ति हो गयी। परशुरामजीसे सम्मानित होकर वे सप्तर्षियोंके मण्डलमें सातवें ऋषि हो गये ॥ २४ ॥ परीक्षित्! कमललोचन जमदग्नि-नन्दन भगवान् परशुराम आगामी मन्वन्तरमें सप्तर्षियोंके मण्डलमें रहकर वेदोंका विस्तार करेंगे ॥ २५ ॥ वे आज भी किसीको किसी प्रकारका दण्ड न देते हुए शान्त चित्तसे महेन्द्र पर्वतपर निवास करते हैं। वहाँ सिद्ध, गन्धर्व और चारण उनके चरित्रका मधुर स्वरसे गान करते रहते हैं ॥ २६ ॥ सर्वशक्तिमान् विश्वात्मा भगवान् श्रीहरिने इस प्रकार भृगुवंशियोंमें अवतार ग्रहण करके पृथ्वीके भारभूत राजाओंका बहुत बार वध किया ॥ २७ ॥

महाराज गाधिके पुत्र हुए प्रज्वलित अग्निके समान परम तेजस्वी विश्वामित्रजी। इन्होंने अपने तपोबलसे क्षत्रियत्वका त्याग करके ब्रह्मतेज प्राप्त कर लिया ॥ २८ ॥ परीक्षित्! विश्वामित्रजीके सौ पुत्र थे। उनमें बिचले पुत्रका नाम था मधुच्छन्दा। इसलिये सभी पुत्र 'मधुच्छन्दा' के ही नामसे विख्यात हुए ॥ २९ ॥

---

१. हरिरव्ययः ।

पुत्रं कृत्वा शुनःशेपं देवरातं च भार्गवम् ।
आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम् ॥ ३०

यो वै हरिश्चन्द्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः ।
स्तुत्वा देवान् प्रजेशादीन् मुमुचे पाशबन्धनात् ॥ ३१

यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः ।
देवरात इति ख्यातः शुनःशेपः[1] स भार्गवः ॥ ३२

ये मधुच्छन्दसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ।
अशपत् तान्पुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥ ३३

स होवाच मधुच्छन्दाः सार्धं पञ्चाशताः ततः ।
यन्नो भवान् संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम् ॥ ३४

ज्येष्ठं मन्त्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वञ्चो वयं स्म हि ।
विश्वामित्रः[2] सुतानाह वीरवन्तो भविष्यथ ।
ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त[3] माम् ॥ ३५

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित ।
अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥ ३६

एवं कौशिकगोत्रं तु विश्वामित्रैः पृथग्विधम् ।
प्रवरान्तरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥ ३७

विश्वामित्रजीने भृगुवंशी अजीगर्तके पुत्र अपने भानजे शुनःशेपको, जिसका एक नाम देवरात भी था, पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया और अपने पुत्रोंसे कहा कि 'तुमलोग इसे अपना बड़ा भाई मानो' ॥ ३० ॥ यह वही प्रसिद्ध भृगुवंशी शुनःशेप था, जो हरिश्चन्द्रके यज्ञमें यज्ञपशुके रूपमें मोल लेकर लाया गया था। विश्वामित्रजीने प्रजापति वरुण आदि देवताओंकी स्तुति करके उसे पाशबन्धनसे छुड़ा लिया था। देवताओंके यज्ञमें यही शुनःशेप देवताओंद्वारा विश्वामित्रजी को दिया गया था; अतः 'देवैः रातः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार गाधिवंशमें यह तपस्वी देवरातके नामसे विख्यात हुआ ॥ ३१-३२ ॥ विश्वामित्रजीके पुत्रोंमें जो बड़े थे, उन्हें शुनःशेपको बड़ा भाई माननेकी बात अच्छी न लगी। इसपर विश्वामित्रजीने क्रोधित होकर उन्हें शाप दे दिया कि 'दुष्टो ! तुम सब म्लेच्छ हो जाओ' ॥ ३३ ॥ इस प्रकार जब उनचास भाई म्लेच्छ हो गये, तब विश्वामित्रजीके बिचले पुत्र मधुच्छन्दाने अपनेसे छोटे पचासों भाइयोंके साथ कहा—'पिताजी ! आप हमलोगोंको जो आज्ञा करते हैं, हम उसका पालन करनेके लिये तैयार हैं' ॥ ३४ ॥ यह कहकर मधुच्छन्दाने मन्त्रद्रष्टा शुनःशेपको बड़ा भाई स्वीकार कर लिया और कहा कि 'हम सब तुम्हारे अनुयायी—छोटे भाई हैं।' तब विश्वामित्रजीने अपने इन आज्ञाकारी पुत्रोंसे कहा—'तुम लोगोंने मेरी बात मानकर मेरे सम्मानकी रक्षा की है, इसलिये तुमलोगों-जैसे सुपुत्र प्राप्त करके मैं धन्य हुआ। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें भी सुपुत्र प्राप्त होंगे ॥ ३५ ॥ मेरे प्यारे पुत्रो ! यह देवरात शुनःशेप भी तुम्हारे ही गोत्रका है। तुमलोग इसकी आज्ञामें रहना।' परीक्षित् ! विश्वामित्रजीके अष्टक, हारीत, जय और क्रतुमान् आदि और भी पुत्र थे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार विश्वामित्रजीकी सन्तानोंसे कौशिकगोत्रमें कई भेद हो गये और देवरातको बड़ा भाई माननेके कारण उसका प्रवर ही दूसरा हो गया ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे[4]
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

१. पस्तु । २. त्रस्तु ताना० । ३. वीरभावकसत्तमाः । ४. प्राचीन प्रतिमें इससे आगे 'परशुरामचरितं नाम' इतना अधिक पाठ है ।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

क्षत्रवृद्ध, रजि आदि राजाओंके वंशका वर्णन

श्रीशुक[1] उवाच

यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन् सुताः ।
नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रम्भश्च वीर्यवान् ॥ १

अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम् ।
क्षत्रवृद्धसुतस्यासन् सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ॥ २

काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत् ।
शुनकः शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः ॥ ३

काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमःपिता ।
धन्वन्तरिर्दैर्घतम आयुर्वेदप्रवर्तकः ॥ ४

यज्ञभुग् वासुदेवांशः स्मृतमात्रार्तिनाशनः ।
तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः ॥ ५

दिवोदासो द्युमांस्तस्मात् प्रतर्दन इति स्मृतः ।
स एव शत्रुजिद् वत्स ऋतध्वज इतीरितः ।
तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः ॥ ६

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
नालर्कादपरो राजन्[2] मेदिनीं बुभुजे युवा ॥ ७

अलर्कात् सन्ततिस्तस्मात् सुनीथोऽथ सुकेतनः[3] ।
धर्मकेतुः सुतस्तस्मात् सत्यकेतुरजायत ॥ ८

धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात् सुकुमारः क्षितीश्वरः ।
वीतिहोत्रस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृपः ॥ ९

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजेन्द्र पुरूरवाका एक पुत्र था आयु। उसके पाँच लड़के हुए—नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, शक्तिशाली रम्भ और अनेना। अब क्षत्रवृद्धका वंश सुनो। क्षत्रवृद्धके पुत्र थे सुहोत्र। सुहोत्रके तीन पुत्र हुए—काश्य, कुश और गृत्समद। गृत्समदका पुत्र हुआ शुनक। इसी शुनकके पुत्र ऋग्वेदियोंमें श्रेष्ठ मुनिवर शौनकजी हुए॥ १—३॥

काश्यका पुत्र काशि, काशिका राष्ट्र, राष्ट्रका दीर्घतमा और दीर्घतमाके धन्वन्तरि। यही आयुर्वेदके प्रवर्तक हैं॥ ४॥ ये यज्ञभागके भोक्ता और भगवान् वासुदेवके अंश हैं। इनके स्मरणमात्रसे ही सब प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं। धन्वन्तरिका पुत्र हुआ केतुमान् और केतुमान्का भीमरथ॥ ५॥

भीमरथका दिवोदास और दिवोदासका द्युमान्—जिसका एक नाम प्रतर्दन भी है। यही द्युमान् शत्रुजित्, वत्स, ऋतध्वज और कुवलयाश्वके नामसे भी प्रसिद्ध है। द्युमान्के ही पुत्र अलर्क आदि हुए॥ ६॥ परीक्षित्! अलर्कके सिवा और किसी राजाने छाछठ हजार (६६,०००) वर्षतक युवा रहकर पृथ्वीका राज्य नहीं भोगा॥ ७॥ अलर्कका पुत्र हुआ सन्तति, सन्ततिका सुनीथ, सुनीथका सुकेतन, सुकेतनका धर्मकेतु और धर्मकेतुका सत्यकेतु॥ ८॥

सत्यकेतुसे धृष्टकेतु, धृष्टकेतुसे राजा सुकुमार, सुकुमारसे वीतिहोत्र, वीतिहोत्रसे भर्ग और भर्गसे राजा भार्गभूमिका जन्म हुआ॥ ९॥

---

१. बादरायणिरुवाच। २. राजा। ३. सुतोत्तमः।

इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः ।
रम्भस्य[1] रभसः पुत्रो गम्भीरश्चाक्रियस्ततः[2] ॥ १०

ये सब-के-सब क्षत्रवृद्धके वंशमें काशिसे उत्पन्न नरपति हुए। रम्भके पुत्रका नाम था रभस, उससे गम्भीर और गम्भीरसे अक्रियका जन्म हुआ ॥ १० ॥

तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः ।
शुद्धस्ततः[3] शुचिस्तस्मात् त्रिककुद् धर्मसारथिः ॥ ११

अक्रियकी पत्नीसे ब्राह्मणवंश चला। अब अनेनाका वंश सुनो। अनेनाका पुत्र था शुद्ध, शुद्धका शुचि, शुचिका त्रिककुद् और त्रिककुद्का धर्मसारथि ॥ ११ ॥

ततः शान्तरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् ।
रजेः पञ्चशतान्यासन् पुत्राणाममितौजसाम् ॥ १२

धर्मसारथिके पुत्र थे शान्तरय। शान्तरय आत्मज्ञानी होनेके कारण कृतकृत्य थे, उन्हें सन्तानकी आवश्यकता न थी। परीक्षित्! आयुके पुत्र रजिके अत्यन्त तेजस्वी पाँच सौ पुत्र थे ॥ १२ ॥

देवैरभ्यर्थितो दैत्यान् हत्वेन्द्रायाददाद् दिवम् ।
इन्द्रस्तस्मै पुनर्दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ॥ १३

आत्मानमर्पयामास प्रह्लादाद्यरिशङ्कितः[4] ।
पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः ॥ १४

देवताओंकी प्रार्थनासे रजिने दैत्योंका वध करके इन्द्रको स्वर्गका राज्य दिया। परन्तु वे अपने प्रह्लाद आदि शत्रुओंसे भयभीत रहते थे, इसलिये उन्होंने वह स्वर्ग फिर रजिको लौटा दिया और उनके चरण पकड़कर उन्हींको अपनी रक्षाका भार भी सौंप दिया। जब रजिकी मृत्यु हो गयी, तब इन्द्रके माँगनेपर भी रजिके पुत्रोंने स्वर्ग नहीं लौटाया। वे स्वयं ही यज्ञोंका भाग भी ग्रहण करने लगे। तब गुरु बृहस्पतिजीने इन्द्रकी प्रार्थनासे अभिचार-विधिसे हवन किया। इससे वे धर्मके मार्गसे भ्रष्ट हो गये। तब इन्द्रने अनायास ही उन सब रजिके पुत्रोंको मार डाला। उनमेंसे कोई भी न बचा। क्षत्रवृद्धके पौत्र कुशसे प्रति, प्रतिसे सञ्जय और सञ्जयसे जयका जन्म हुआ ॥ १३—१६ ॥

त्रिविष्टपं महेन्द्राय यज्ञभागान् समाददुः ।
गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित् तनयान् रजेः ॥ १५

अवधीद् भ्रंशितान् मार्गान्न कश्चिदवशेषितः ।
कुशात् प्रतिः क्षात्रवृद्धात् सञ्जयस्तत्सुतो जयः ॥ १६

ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः ।
सहदेवस्ततो हीनो जयसेनस्तु तत्सुतः ॥ १७

सङ्कृतिस्तस्य च[5] जयः क्षत्रधर्मा महारथः ।
क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥ १८

जयसे कृत, कृतसे राजा हर्यवन, हर्यवनसे सहदेव, सहदेवसे हीन और हीनसे जयसेन नामक पुत्र हुआ ॥ १७ ॥ जयसेनका सङ्कृति, सङ्कृतिका पुत्र हुआ महारथी वीरशिरोमणि जय। क्षत्रवृद्धकी वंश-परम्परामें इतने ही नरपति हुए। अब नहुषवंशका वर्णन सुनो ॥ १८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे चन्द्र-[6]
वंशानुवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१. नाभस्य । २. शक्रकस्ततः । ३. शुद्धः शुचिस्ततस्तस्मा० । ४. द्यवि० । ५. तनयः क्षत्र० । ६. आयुर्वंशः सप्त० ।

अथाष्टादशोऽध्यायः

ययाति-चरित्र

श्रीशुक उवाच

यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः[1] कृतिः ।
षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनः ॥ १

राज्यं नैच्छद् यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् ।
यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥ २

पितरि भ्रंशिते स्थानादिन्द्राण्या धर्षणाद् द्विजैः ।
प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः ॥ ३

चतसृष्वादिशद् दिक्षु भ्रातॄन्[2] भ्राता यवीयसः ।
कृतदारो जुगोपोर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः ॥ ४

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जैसे शरीरधारियोंके छः इन्द्रियाँ होती हैं, वैसे ही नहुषके छः पुत्र थे। उनके नाम थे—यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति और कृति ॥ १ ॥ नहुष अपने बड़े पुत्र यतिको राज्य देना चाहते थे। परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया; क्योंकि वह राज्य पानेका परिणाम जानता था। राज्य एक ऐसी वस्तु है कि जो उसके दाव-पेंच और प्रबन्ध आदिमें भीतर प्रवेश कर जाता है, वह अपने आत्मस्वरूपको नहीं समझ सकता ॥ २ ॥ जब इन्द्रपत्नी शचीसे सहवास करनेकी चेष्टा करनेके कारण नहुषको ब्राह्मणोंने इन्द्रपदसे गिरा दिया और अजगर बना दिया, तब राजाके पदपर ययाति बैठे ॥ ३ ॥ ययातिने अपने चार छोटे भाइयोंको चार दिशाओंमें नियुक्त कर दिया और स्वयं शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी और दैत्यराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाको पत्नीके रूपमें स्वीकार करके पृथ्वीकी रक्षा करने लगा ॥ ४ ॥

राजोवाच

ब्रह्मर्षिर्भगवान् काव्यः क्षत्रबन्धुश्च नाहुषः ।
राजन्यविप्रयोः कस्माद् विवाहः प्रतिलोमकः ॥ ५

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! भगवान् शुक्राचार्यजी तो ब्राह्मण थे और ययाति क्षत्रिय। फिर ब्राह्मण-कन्या और क्षत्रिय-वरका प्रतिलोम (उलटा) विवाह कैसे हुआ ? ॥ ५ ॥

श्रीशुक उवाच

एकदा दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका ।
सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥ ६

देवयान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसङ्कुले ।
व्यचरत् कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७

ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः ।
तीरे न्यस्य दुकूलानि विजह्रुः सिञ्चतीर्मिथः ॥ ८

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्! दानवराज वृषपर्वाकी एक बड़ी मानिनी कन्या थी। उसका नाम था शर्मिष्ठा। वह एक दिन अपनी गुरुपुत्री देवयानी और हजारों सखियोंके साथ अपनी राजधानीके श्रेष्ठ उद्यानमें टहल रही थी। उस उद्यानमें सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंसे लदे हुए अनेकों वृक्ष थे। उसमें एक बड़ा ही सुन्दर सरोवर था। सरोवरमें कमल खिले हुए थे और उनपर बड़े ही मधुर स्वरसे भौंरे गुंजार कर रहे थे। उसकी ध्वनिसे सरोवरका तट गूँज रहा था ॥ ६-७ ॥ जलाशयके पास पहुँचनेपर उन सुन्दरी कन्याओंने अपने-अपने वस्त्र तो घाटपर रख दिये और उस तालाबमें प्रवेश करके वे एक-दूसरेपर जल उलीच-उलीचकर क्रीडा करने लगीं ॥ ८ ॥

---

१. या० । २. भ्राता भ्रातॄन् यवी० ।

वीक्ष्य व्रजन्तं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् ।
सहसोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः[1] स्त्रियः ॥ ९

शर्मिष्ठाजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् ।
स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥ १०

अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसाम्प्रतम्[2] ।
अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥ ११

यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये ।
धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पन्थाश्च दर्शितः ॥ १२

यान् वन्दन्त्युपतिष्ठन्ते लोकनाथाः सुरेश्वराः ।
भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥ १३

वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पितासुरः ।
अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥ १४

एवं शपन्तीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत ।
रुषा श्वसन्त्युरङ्गीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥ १५

आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि ।
किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान् बलिभुजो यथा ॥ १६

एवंविधैः सुपरुषैः क्षिप्त्वाऽऽचार्यसुतां सतीम् ।
शर्मिष्ठा प्राक्षिपत् कूपे वास[3] आदाय मन्युना ॥ १७

तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् ।
प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ॥ १८

दत्त्वा स्वमुत्तरं वाससस्यै राजा विवाससे ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥ १९

उसी समय उधरसे पार्वतीजीके साथ बैलपर चढ़े हुए भगवान् शङ्कर आ निकले। उनको देखकर सब-की-सब कन्याएँ सकुचा गयीं और उन्होंने झटपट सरोवरसे निकलकर अपने-अपने वस्त्र पहन लिये ॥ ९ ॥ शीघ्रताके कारण शर्मिष्ठाने अनजानमें देवयानीके वस्त्रको अपना समझकर पहन लिया। इसपर देवयानी क्रोधके मारे आग-बबूला हो गयी। उसने कहा— ॥ १० ॥ 'अरे, देखो तो सही, इस दासीने कितना अनुचित काम कर डाला ! राम-राम, जैसे कुतिया यज्ञका हविष्य उठा ले जाय, वैसे ही इसने मेरे वस्त्र पहन लिये हैं ॥ ११ ॥ जिन ब्राह्मणोंने अपने तपोबलसे इस संसारकी सृष्टि की है, जो परम पुरुष परमात्माके मुखरूप हैं, जो अपने हृदयमें निरन्तर ज्योतिर्मय परमात्माको धारण किये रहते हैं और जिन्होंने सम्पूर्ण प्राणियोंके कल्याणके लिये वैदिक मार्गका निर्देश किया है, बड़े-बड़े लोकपाल तथा देवराज इन्द्र-ब्रह्मा आदि भी जिनके चरणोंकी वन्दना और सेवा करते हैं,—और तो क्या, लक्ष्मीजीके एकमात्र आश्रय परम पावन विश्वात्मा भगवान् भी जिनकी वन्दना और स्तुति करते हैं—उन्हीं ब्राह्मणोंमें हम सबसे श्रेष्ठ भृगुवंशी हैं। और इसका पिता प्रथम तो असुर है, फिर हमारा शिष्य है। इसपर भी इस दुष्टाने जैसे शूद्र वेद पढ़ ले, उसी तरह हमारे कपड़ोंको पहन लिया है' ॥ १२—१४ ॥ जब देवयानी इस प्रकार गाली देने लगी, तब शर्मिष्ठा क्रोधसे तिलमिला उठी। वह चोट खायी हुई नागिनके समान लंबी साँस लेने लगी। उसने अपने दाँतोंसे होठ दबाकर कहा— ॥ १५ ॥ 'भिखारिन ! तू इतना बहक रही है। तुझे कुछ अपनी बातका भी पता है ? जैसे कौए और कुत्ते हमारे दरवाजेपर रोटीके टुकड़ोंके लिये प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही क्या तुम भी हमारे घरोंकी ओर नहीं ताकती रहतीं' ॥ १६ ॥ शर्मिष्ठाने इस प्रकार बड़ी कड़ी-कड़ी बात कहकर गुरुपुत्री देवयानीका तिरस्कार किया और क्रोधवश उसके वस्त्र छीनकर उसे कूएँमें ढकेल दिया ॥ १७ ॥

शर्मिष्ठाके चले जानेके बाद संयोगवश शिकार खेलते हुए राजा ययाति उधर आ निकले। उन्हें जलकी आवश्यकता थी, इसलिये कूएँमें पड़ी हुई देवयानीको उन्होंने देख लिया ॥ १८ ॥ उस समय वह वस्त्रहीन थी। इसलिये उन्होंने अपना दुपट्टा उसे दे दिया और दया करके अपने हाथसे उसका हाथ पकड़कर उसे बाहर निकाल लिया ॥ १९ ॥

---

१. धुर्लज्जिताः । २. च साम्प्रतम् । ३. वासश्चादा० ।

तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा ।
राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरञ्जय ॥ २०

हस्तग्राहोऽपरो मा भूद् गृहीतायास्त्वया हि मे ।
एष ईशकृतो वीर सम्बन्धो नौ न पौरुषः ।
यदिदं कूपलग्नाया भवतो दर्शनं मम ॥ २१

न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज ।
कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद् यमशपं पुरा ॥ २२

ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः[1] ।
मनस्तु[2] तद्गृहीतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद्वचः ॥ २३

गते राजनि सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः ।
न्यवेदयत् ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥ २४

दुर्मना भगवान् काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् ।
स्तुवन् वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥ २५

वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् ।
गुरुं प्रसादयन् मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥ २६

क्षणार्धमन्युर्भगवान् शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः ।
कामोऽस्याः क्रियतां राजन् नैनां[3] त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ २७

तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ।
पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु ॥ २८

स्वानां तत् सङ्कटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् ।
देवयानीं पर्यचरत् स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥ २९

देवयानीने प्रेमभरी वाणीसे वीर ययातिसे कहा—'वीरशिरोमणे राजन्! आज आपने मेरा हाथ पकड़ा है। अब जब आपने मेरा हाथ पकड़ लिया, तब कोई दूसरा इसे न पकड़े। वीरश्रेष्ठ! कूएँमें गिर जानेपर मुझे जो आपका अचानक दर्शन हुआ है, यह भगवान्‌का ही किया हुआ सम्बन्ध समझना चाहिये। इसमें हमलोगोंकी या और किसी मनुष्यकी कोई चेष्टा नहीं है ॥ २०-२१ ॥ वीरश्रेष्ठ! पहले मैंने बृहस्पतिके पुत्र कचको शाप दे दिया था, इसपर उसने भी मुझे शाप दे दिया। इसी कारण ब्राह्मण मेरा पाणिग्रहण नहीं कर सकता'* ॥ २२ ॥ ययातिको शास्त्रप्रतिकूल होनेके कारण यह सम्बन्ध अभीष्ट तो न था; परन्तु उन्होंने देखा कि प्रारब्धने स्वयं ही मुझे यह उपहार दिया है और मेरा मन भी इसकी ओर खिंच रहा है। इसलिये ययातिने उसकी बात मान ली ॥ २३ ॥

वीर राजा ययाति जब चले गये, तब देवयानी रोती-पीटती अपने पिता शुक्राचार्यके पास पहुँची और शर्मिष्ठाने जो कुछ किया था, वह सब उन्हें कह सुनाया ॥ २४ ॥ शर्मिष्ठाके व्यवहारसे भगवान् शुक्राचार्यजीका भी मन उचट गया। वे पुरोहिताईकी निन्दा करने लगे। उन्होंने सोचा कि इसकी अपेक्षा तो खेत या बाजारमेंसे कबूतरकी तरह कुछ बीनकर खा लेना अच्छा है। अतः अपनी कन्या देवयानीको साथ लेकर वे नगरसे निकल पड़े ॥ २५ ॥ जब वृषपर्वाको यह मालूम हुआ, तो उनके मनमें यह शङ्का हुई कि गुरुजी कहीं शत्रुओंकी जीत न करा दें अथवा मुझे शाप न दे दें। अतएव वे उनको प्रसन्न करनेके लिये पीछे-पीछे गये और रास्तेमें उनके चरणोंपर सिरके बल गिर गये ॥ २६ ॥ भगवान् शुक्राचार्यजीका क्रोध तो आधे ही क्षणका था। उन्होंने वृषपर्वासे कहा—'राजन्! मैं अपनी पुत्री देवयानीको नहीं छोड़ सकता। इसलिये इसकी जो इच्छा हो, तुम पूरी कर दो। फिर मुझे लौट चलनेमें कोई आपत्ति न होगी' ॥ २७ ॥ जब वृषपर्वाने 'ठीक है' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली, तब देवयानीने अपने मनकी बात कही। उसने कहा—'पिताजी मुझे जिस किसीको दे दें और मैं जहाँ कहीं जाऊँ, शर्मिष्ठा अपनी सहेलियोंके साथ मेरी सेवाके लिये वहीं चले' ॥ २८ ॥

शर्मिष्ठाने अपने परिवारवालोंका सङ्कट और उनके कार्यका गौरव देखकर देवयानीकी बात स्वीकार कर ली। वह अपनी एक हजार सहेलियोंके साथ दासीके समान उसकी सेवा करने लगी ॥ २९ ॥

---

१. मानसः २. मनश्च। ३. नैतां।

* बृहस्पतिजीका पुत्र कच शुक्राचार्यजीसे मृतसञ्जीवनी विद्या पढ़ता था। अध्ययन समाप्त करके जब वह अपने घर जाने लगा तो देवयानीने उसे वरण करना चाहा। परन्तु गुरुपुत्री होनेके कारण कचने उसका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। इसपर देवयानीने उसे शाप दे दिया कि 'तुम्हारी पढ़ी हुई विद्या निष्फल हो जाय।' कचने भी उसे शाप दिया कि 'कोई भी ब्राह्मण तुम्हें पत्नीरूपमें स्वीकार न करेगा।'

नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशना ।
तमाह राजञ्छर्मिष्ठामाधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥ ३०

शुक्राचार्यजीने देवयानीका विवाह राजा ययातिके साथ कर दिया और शर्मिष्ठाको दासीके रूपमें देकर उनसे कह दिया—'राजन्! इसको अपनी सेजपर कभी न आने देना' ॥ ३० ॥

विलोक्यौशनसीं राजञ्छर्मिष्ठा सप्रजां[1] क्वचित् ।
तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥ ३१

परीक्षित्! कुछ ही दिनों बाद देवयानी पुत्रवती हो गयी। उसको पुत्रवती देखकर एक दिन शर्मिष्ठाने भी अपने ऋतुकालमें देवयानीके पति ययातिसे एकान्तमें सहवासकी याचना की ॥ ३१ ॥

राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् ।
स्मरञ्छुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥ ३२

शर्मिष्ठाकी पुत्रके लिये प्रार्थना धर्मसंगत है—यह देखकर धर्मज्ञ राजा ययातिने शुक्राचार्यकी बात याद रहनेपर भी यही निश्चय किया कि समयपर प्रारब्धके अनुसार जो होना होगा, हो जायगा ॥ ३२ ॥

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३३

देवयानीके दो पुत्र हुए—यदु और तुर्वसु। तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाके तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु और पूरु ॥ ३३ ॥

गर्भसम्भवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी ।
देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्च्छिता ॥ ३४

जब मानिनी देवयानीको यह मालूम हुआ कि शर्मिष्ठाको भी मेरे पतिके द्वारा ही गर्भ रहा था, तब वह क्रोधसे बेसुध होकर अपने पिताके घर चली गयी ॥ ३४ ॥

प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमन्त्रयन् ।
न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥ ३५

कामी ययातिने मीठी-मीठी बातें, अनुनय-विनय और चरण दबाने आदिके द्वारा देवयानीको मनानेकी चेष्टा की, उसके पीछे-पीछे वहाँतक गये भी; परन्तु मना न सके ॥ ३५ ॥

शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृतपूरुष ।
त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम् ॥ ३६

शुक्राचार्यजीने भी क्रोधमें भरकर ययातिसे कहा—'तू अत्यन्त स्त्रीलम्पट, मन्दबुद्धि और झूठा है। जा, तेरे शरीरमें वह बुढ़ापा आ जाय, जो मनुष्योंको कुरूप कर देता है' ॥ ३६ ॥

ययातिरुवाच

अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन् दुहितरि स्म ते ।
व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योऽभिधास्यति ॥ ३७

ययातिने कहा—'ब्रह्मन्! आपकी पुत्रीके साथ विषय-भोग करते-करते अभी मेरी तृप्ति नहीं हुई है। इस शापसे तो आपकी पुत्रीका भी अनिष्ट ही है।' इसपर शुक्राचार्यजीने कहा—'अच्छा जाओ; जो प्रसन्नतासे तुम्हें अपनी जवानी दे दे, उससे अपना बुढ़ापा बदल लो' ॥ ३७ ॥

इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत ।
यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥ ३८

शुक्राचार्यजीने जब ऐसी व्यवस्था दे दी, तब अपनी राजधानीमें आकर ययातिने अपने बड़े पुत्र यदुसे कहा—'बेटा! तुम अपनी जवानी मुझे दे दो और अपने नानाका दिया हुआ यह बुढ़ापा तुम स्वीकार कर लो। क्योंकि मेरे प्यारे पुत्र! मैं अभी विषयोंसे तृप्त नहीं हुआ हूँ। इसलिये तुम्हारी आयु लेकर मैं कुछ वर्षोंतक और आनन्द भोगूँगा' ॥ ३८-३९ ॥

मातामहकृतां वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् ।
वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥ ३९

---

१. सुप्रजां ।

यदुरुवाच

नोत्सहे जरसा स्थातुमन्तरा प्राप्तया तव ।
अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥ ४०

तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत ।
प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥ ४१

अपृच्छत्[1] तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् ।
न त्वमग्रजवद् वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२

पूरुरुवाच

को नु लोके मनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतः पुमान् ।
प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद् विन्दते परम् ॥ ४३

उत्तमश्लोकतां कुर्यात् प्रोक्तकारी तु[2] मध्यमः ।
अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः ॥ ४४

इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ।
सोऽपि तद्वयसा कामान् यथावज्जुजुषे[3] नृप ॥ ४५

सम्राट्पतिः सम्यक् पितृवत् पालयन् प्रजाः ।
यथोपजोषं विषयाञ्जुजुषेऽव्याहतेन्द्रियः ॥ ४६

देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः[4] ।
प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥ ४७

अयजद् यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥ ४८

यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः ।
नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥ ४९

यदुने कहा—'पिताजी ! बिना समयके ही प्राप्त हुआ आपका बुढ़ापा लेकर तो मैं जीना भी नहीं चाहता। क्योंकि कोई भी मनुष्य जबतक विषय-सुखका अनुभव नहीं कर लेता, तबतक उसे उससे वैराग्य नहीं होता' ॥ ४० ॥ परीक्षित् ! इसी प्रकार तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुने भी पिताकी आज्ञा अस्वीकार कर दी। सच पूछो तो उन पुत्रोंको धर्मका तत्त्व मालूम नहीं था। वे इस अनित्य शरीरको ही नित्य माने बैठे थे ॥ ४१ ॥ अब ययातिने अवस्थामें सबसे छोटे किन्तु गुणोंमें बड़े अपने पुत्र पूरुको बुलाकर पूछा और कहा—'बेटा ! अपने बड़े भाइयोंके समान तुम्हें तो मेरी बात नहीं टालनी चाहिये' ॥ ४२ ॥

पूरुने कहा—'पिताजी ! पिताकी कृपासे मनुष्यको परमपदकी प्राप्ति हो सकती है। वास्तवमें पुत्रका शरीर पिताका ही दिया हुआ है। ऐसी अवस्थामें ऐसा कौन है, जो इस संसारमें पिताके उपकारोंका बदला चुका सके ? ॥ ४३ ॥ उत्तम पुत्र तो वह है, जो पिताके मनकी बात बिना कहे ही कर दे। कहनेपर श्रद्धाके साथ आज्ञापालन करनेवाले पुत्रको मध्यम कहते हैं। जो आज्ञा प्राप्त होनेपर भी अश्रद्धासे उसका पालन करे, वह अधम पुत्र है। और जो किसी प्रकार भी पिताकी आज्ञाका पालन नहीं करता, उसको तो पुत्र कहना ही भूल है। वह तो पिताका मल-मूत्र ही है ॥ ४४ ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार कहकर पूरुने बड़े आनन्दसे अपने पिताका बुढ़ापा स्वीकार कर लिया। राजा ययाति भी उसकी जवानी लेकर पूर्ववत् विषयोंका सेवन करने लगे ॥ ४५ ॥ वे सातों द्वीपोंके एकच्छत्र सम्राट् थे। पिताके समान भलीभाँति प्रजाका पालन करते थे। उनकी इन्द्रियोंमें पूरी शक्ति थी और वे यथावसर यथाप्राप्त विषयोंका यथेच्छ उपभोग करते थे ॥ ४६ ॥ देवयानी उनकी प्रियतमा पत्नी थी। वह अपने प्रियतम ययातिको अपने मन, वाणी, शरीर और वस्तुओंके द्वारा दिन-दिन और भी प्रसन्न करने लगी और एकान्तमें सुख देने लगी ॥ ४७ ॥ राजा ययातिने समस्त वेदोंके प्रतिपाद्य सर्वदेवस्वरूप यज्ञपुरुष भगवान् श्रीहरिका बहुत-से बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे यजन किया ॥ ४८ ॥ जैसे आकाशमें दल-के-दल बादल दीखते हैं और कभी नहीं भी दीखते, वैसे ही परमात्माके स्वरूपमें यह जगत् स्वप्न, माया और मनोराज्यके समान कल्पित है। यह कभी अनेक नाम और रूपोंके रूपमें प्रतीत होता है और कभी नहीं भी ॥ ४९ ॥

---

१. च्छत्स ततः । २. च । ३. वद्वुभुजे । ४. वाग्गृहव० ।

तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम्[1] ।
नारायणमणीयांसं निराशीरयजत् प्रभुम् ॥ ५०

वे परमात्मा सबके हृदयमें विराजमान हैं। उनका स्वरूप सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है। उन्हीं सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी भगवान् श्रीनारायणको अपने हृदयमें स्थापित करके राजा ययातिने निष्काम भावसे उनका यजन किया ॥ ५० ॥

एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनःसुखम् ।
विदधानोऽपि नातृप्यत् सार्वभौमः कदिन्द्रियैः ॥ ५१

इस प्रकार एक हजार वर्षतक उन्होंने अपनी उच्छृङ्खल इन्द्रियोंके साथ मनको जोड़कर उसके प्रिय विषयोंको भोगा। परन्तु इतनेपर भी चक्रवर्ती सम्राट् ययातिकी भोगोंसे तृप्ति न हो सकी ॥ ५१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे-
ऽष्टादशोऽध्यायः[2] ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

ययातिका गृहत्याग

श्रीशुक उवाच

स इत्थमाचरन् कामान् स्त्रैणोऽपह्नवमात्मनः ।
बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजा ययाति इस प्रकार स्त्रीके वशमें होकर विषयोंका उपभोग करते रहे। एक दिन जब अपने अधःपतनपर दृष्टि गयी तब उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ और उन्होंने अपनी प्रिय पत्नी देवयानीसे इस गाथाका गान किया ॥ १ ॥ 'भृगुनन्दिनी! तुम यह गाथा सुनो। पृथ्वीमें मेरे ही समान विषयीका यह सत्य इतिहास है। ऐसे ही ग्रामवासी विषयी पुरुषोंके सम्बन्धमें वनवासी जितेन्द्रिय पुरुष दुःखके साथ विचार किया करते हैं कि इनका कल्याण कैसे होगा? ॥ २ ॥ एक था बकरा। वह वनमें अकेला ही अपनेको प्रिय लगनेवाली वस्तुएँ ढूँढ़ता हुआ घूम रहा था। उसने देखा कि अपने कर्मवश एक बकरी कूएँमें गिर पड़ी है ॥ ३ ॥ वह बकरा बड़ा कामी था। वह सोचने लगा कि इस बकरीको किस प्रकार कूएँसे निकाला जाय। उसने अपने सींगसे कूएँके पासकी धरती खोद डाली और रास्ता तैयार कर लिया ॥ ४ ॥ जब वह सुन्दरी बकरी कूएँसे निकली, तो उसने उस बकरेसे ही प्रेम करना चाहा। वह दाढ़ी-मूँछमण्डित बकरा हृष्ट-पुष्ट, जवान, बकरियोंको सुख देनेवाला, विहारकुशल और बहुत प्यारा था। जब दूसरी बकरियोंने देखा कि कूएँमें गिरी हुई बकरीने उसे अपना प्रेमपात्र चुन लिया है, तब उन्होंने भी उसीको अपना पति बना लिया। वे तो पहलेसे ही पतिकी तलाशमें थीं। उस बकरेके सिरपर कामरूप पिशाच सवार था। वह अकेला ही बहुत-सी बकरियोंके साथ विहार करने लगा और अपनी सब सुध-बुध खो बैठा ॥ ५-६ ॥

श्रृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्विधाचरितां भुवि ।
धीरा यस्यानुशोचन्ति वने ग्रामनिवासिनः ॥ २

बस्त एको वने कश्चिद् विचिन्वन् प्रियमात्मनः ।
ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ॥ ३

तस्या उद्धरणोपायं बस्तः कामी विचिन्तयन् ।
व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ॥ ४

सोत्तीर्य कूपात् सुश्रोणी तमेव चकमे किल ।
तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्व्योऽजाः कान्तकामिनीः ॥ ५

पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं[3] मीढ्वांसं याभकोविदम् ।
स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः ।
रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत ॥ ६

१. श्र० । २. प्राचीन प्रतिमें इससे आगे 'ययाते' इतना अंश अधिक है। ३. घोरं।

तमेव प्रेष्ठतमया[1] रममाणमजान्यया ।
विलोक्य कूपसंविग्ना[2] नामृष्यद् बस्तकर्म तत् ॥ ७

तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् ।
इन्द्रियारामसुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥ ८

सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् ।
कुर्वन्निडविडाकारं[3] नाशक्नोत् पथि संधितुम् ॥ ९

तस्यास्तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद् रुषा ।
लम्बन्तं वृषणं भूयः सन्दधेऽर्थाय योगवित् ॥ १०

सम्बद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया ।
कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥ ११

तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः प्रेमयन्त्रितः ।
आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥ १२

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥ १३

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १४

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमङ्गलम् ।
समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १५

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ।
तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥ १६

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा[4] नाविविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ १७

जब उसकी कूएँमेंसे निकाली हुई प्रियतमा बकरीने देखा कि मेरा पति तो अपनी दूसरी प्रियतमा बकरीसे विहार कर रहा है, तो उसे बकरेकी यह करतूत सहन न हुई ॥ ७ ॥ उसने देखा कि यह तो बड़ा कामी है, इसके प्रेमका कोई भरोसा नहीं है और यह मित्रके रूपमें शत्रुका काम कर रहा है। अतः वह बकरी उस इन्द्रियलोलुप बकरेको छोड़कर बड़े दुःखसे अपने पालनेवालेके पास चली गयी ॥ ८ ॥ वह दीन कामी बकरा उसे मनानेके लिये 'में-में' करता हुआ उसके पीछे-पीछे चला। परन्तु उसे मार्गमें मना न सका ॥ ९ ॥ उस बकरीका स्वामी एक ब्राह्मण था। उसने क्रोधमें आकर बकरेके लटकते हुए अण्डकोषको काट दिया। परन्तु फिर उस बकरीका ही भला करनेके लिये फिरसे उसे जोड़ भी दिया। उसे इस प्रकारके बहुत-से उपाय मालूम थे ॥ १० ॥ प्रिये ! इस प्रकार अण्डकोष जुड़ जानेपर वह बकरा फिर कूएँसे निकली हुई बकरीके साथ बहुत दिनोंतक विषयभोग करता रहा, परन्तु आजतक उसे सन्तोष न हुआ ॥ ११ ॥ सुन्दरी ! मेरी भी यही दशा है। तुम्हारे प्रेमपाशमें बँधकर मैं भी अत्यन्त दीन हो गया। तुम्हारी मायासे मोहित होकर मैं अपने-आपको भी भूल गया हूँ ॥ १२ ॥

'प्रिये ! पृथ्वीमें जितने भी धान्य (चावल, जौ आदि), सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं—वे सब-के-सब मिलकर भी उस पुरुषके मनको सन्तुष्ट नहीं कर सकते, जो कामनाओंके प्रहारसे जर्जर हो रहा है ॥ १३ ॥ विषयोंके भोगनेसे भोगवासना कभी शान्त नहीं हो सकती। बल्कि जैसे घीकी आहुति डालनेपर आग और भड़क उठती है, वैसे ही भोगवासनाएँ भी भोगोंसे प्रबल हो जाती हैं ॥ १४ ॥ जब मनुष्य किसी भी प्राणी और किसी भी वस्तुके साथ राग-द्वेषका भाव नहीं रखता, तब वह समदर्शी हो जाता है तथा उसके लिये सभी दिशाएँ सुखमयी बन जाती हैं ॥ १५ ॥ विषयोंकी तृष्णा ही दुःखोंका उद्गम स्थान है। मन्दबुद्धि लोग बड़ी कठिनाईसे उसका त्याग कर सकते हैं। शरीर बूढ़ा हो जाता है, पर तृष्णा नित्य नवीन ही होती जाती है। अतः जो अपना कल्याण चाहता है, उसे शीघ्र-से-शीघ्र इस तृष्णा (भोग-वासना) का त्याग कर देना चाहिये ॥ १६ ॥ और तो क्या—अपनी मा, बहिन और कन्याके साथ भी अकेले एक आसनपर सटकर नहीं बैठना चाहिये। इन्द्रियाँ इतनी बलवान् हैं कि वे बड़े-बड़े विद्वानोंको भी विचलित कर देती हैं ॥ १७ ॥

---

१. रक्तमजया । २. कामसंवि० । ३. कुर्वन् विडविडा० । ४. च ।

पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान् सेवतोऽसकृत् ।
तथापि चानुसवनं[1] तृष्णा तेषूपजायते ॥ १८

तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ।
निर्द्वन्द्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १९

दृष्टं श्रुतमसद्[2] बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न संविशेत् ।
संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान् स आत्मदृक् ॥ २०

इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः ।
दत्त्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥ २१

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम् ।
प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥ २२

भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् ।
अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥ २३

आसेवितं वर्षपूगान् षड्वर्गं विषयेषु सः ।
क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥ २४

स तत्र निर्मुक्तसमस्तसङ्ग
आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिङ्गः ।
परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे
लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥ २५

श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः ।
स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात् परिहासमिवेरितम्[3] ॥ २६

सा संनिवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम् ।
विज्ञायेश्वरतन्त्राणां मायाविरचितं प्रभोः[4] ॥ २७

सर्वत्र सङ्गमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी ।
कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिङ्गमात्मनः ॥ २८

विषयोंका बार-बार सेवन करते-करते मेरे एक हजार वर्ष पूरे हो गये, फिर भी क्षण-प्रति-क्षण उन भोगोंकी लालसा बढ़ती ही जा रही है ॥ १८ ॥ इसलिये मैं अब भोगोंकी वासना-तृष्णाका परित्याग करके अपना अन्तःकरण परमात्माके प्रति समर्पित कर दूँगा और शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदिके भावोंसे ऊपर उठकर अहङ्कारसे मुक्त हो हरिनोंके साथ वनमें विचरूँगा ॥ १९ ॥ लोक-परलोक दोनोंके ही भोग असत् हैं, ऐसा समझकर न तो उनका चिन्तन करना चाहिये और न भोग ही। समझना चाहिये कि उनके चिन्तनसे ही जन्म-मृत्युरूप संसारकी प्राप्ति होती है और उनके भोगसे तो आत्मनाश ही हो जाता है। वास्तवमें इनके रहस्यको जानकर इनसे अलग रहनेवाला ही आत्मज्ञानी है' ॥ २० ॥

परीक्षित् ! ययातिने अपनी पत्नीसे इस प्रकार कहकर पूरुकी जवानी उसे लौटा दी और उससे अपना बुढ़ापा ले लिया। यह इसलिये कि अब उनके चित्तमें विषयोंकी वासना नहीं रह गयी थी ॥ २१ ॥ इसके बाद उन्होंने दक्षिण-पूर्व दिशामें द्रुह्य, दक्षिणमें यदु, पश्चिममें तुर्वसु और उत्तरमें अनुको राज्य दे दिया ॥ २२ ॥ सारे भूमण्डलकी समस्त सम्पत्तियोंके योग्यतम पात्र पूरुको अपने राज्यपर अभिषिक्त करके तथा बड़े भाइयोंको उसके अधीन बनाकर वे वनमें चले गये ॥ २३ ॥ यद्यपि राजा ययातिने बहुत वर्षोंतक इन्द्रियोंसे विषयोंका सुख भोगा था—परन्तु जैसे पाँख निकल आनेपर पक्षी अपना घोंसला छोड़ देता है, वैसे ही उन्होंने एक क्षणमें ही सब कुछ छोड़ दिया ॥ २४ ॥ वनमें जाकर राजा ययातिने समस्त आसक्तियोंसे छुट्टी पा ली। आत्म-साक्षात्कारके द्वारा उनका त्रिगुणमय लिङ्गशरीर नष्ट हो गया। उन्होंने माया-मलसे रहित परब्रह्म परमात्मा वासुदेवमें मिलकर वह भागवती गति प्राप्त की, जो बड़े-बड़े भगवान्‌के प्रेमी संतोंको प्राप्त होती है ॥ २५ ॥

जब देवयानीने वह गाथा सुनी, तो उसने समझा कि ये मुझे निवृत्तिमार्गके लिये प्रोत्साहित कर रहे हैं। क्योंकि स्त्री-पुरुषमें परस्पर प्रेमके कारण विरह होनेपर विकलता होती है, यह सोचकर ही इन्होंने यह बात हँसी-हँसीमें कही है ॥ २६ ॥ स्वजन-सम्बन्धियोंका—जो ईश्वरके अधीन है—एक स्थानपर इकट्ठा हो जाना वैसा ही है, जैसा प्याऊपर पथिकोंका। यह सब भगवान्‌की मायाका खेल और स्वप्नके सरीखा ही है। ऐसा समझकर देवयानीने सब पदार्थोंकी आसक्ति त्याग दी और अपने मनको भगवान् श्रीकृष्णमें तन्मय करके बन्धनके हेतु लिङ्गशरीरका परित्याग कर दिया—वह भगवान्‌को प्राप्त हो गयी ॥ २७-२८ ॥

---

१. नुदिवसं । २. सद्विद्वान् । ३. वेहितम् । ४. विभोः ।

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे।
सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः॥ २९

उसने भगवान्‌को नमस्कार करके कहा—'समस्त जगत्‌के रचयिता, सर्वान्तर्यामी, सबके आश्रयस्वरूप सर्वशक्तिमान् भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। जो परम शान्त और अनन्त तत्त्व है, उसे मैं नमस्कार करती हूँ'॥ २९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे[1] एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

पूरुके वंश, राजा दुष्यन्त और भरतके चरित्रका वर्णन

श्रीशुक[2] उवाच

पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत।
यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब मैं राजा पूरुके वंशका वर्णन करूँगा। इसी वंशमें तुम्हारा जन्म हुआ है। इसी वंशके वंशधर बहुत-से राजर्षि और ब्रह्मर्षि भी हुए हैं॥ १॥

जनमेजयो ह्यभूत् पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः।
प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत्॥ २

पूरुका पुत्र हुआ जनमेजय। जनमेजयका प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान्‌का प्रवीर, प्रवीरका नमस्यु और नमस्युका पुत्र हुआ चारुपद॥ २॥

तस्य सुद्युरभूत् पुत्रस्तस्माद् बहुगवस्ततः।
संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः॥ ३

चारुपदसे सुद्यु, सुद्युसे बहुगव, बहुगवसे संयाति, संयातिसे अहंयाति और अहंयातिसे रौद्राश्व हुआ॥ ३॥

ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थण्डिलेयुः कृतेयुकः।
जलेयुः सन्ततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः॥ ४

दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चावमः स्मृतः।
घृताच्यामिन्द्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः॥ ५

परीक्षित्! जैसे विश्वात्मा प्रधान प्राणसे दस इन्द्रियाँ होती हैं, वैसे ही घृताची अप्सराके गर्भसे रौद्राश्वके दस पुत्र हुए—ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयु, जलेयु, सन्ततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु और सबसे छोटा वनेयु॥ ४-५॥

ऋतेयो रन्तिभारोऽभूत्[3] त्रयस्तस्यात्मजा नृप।
सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः॥ ६

परीक्षित्! उनमेंसे ऋतेयुका पुत्र रन्तिभार हुआ और रन्तिभारके तीन पुत्र हुए—सुमति, ध्रुव, और अप्रतिरथ। अप्रतिरथके पुत्रका नाम था कण्व॥ ६॥

तस्य मेधातिथिस्तस्मात् प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः।
पुत्रोऽभूत् सुमते रैभ्यो[4] दुष्यन्तस्तत्सुतो मतः॥ ७

कण्वका पुत्र मेधातिथि हुआ। इसी मेधातिथिसे प्रस्कण्व आदि ब्राह्मण उत्पन्न हुए। सुमतिका पुत्र रैभ्य हुआ, इसी रैभ्यका पुत्र दुष्यन्त था॥ ७॥

---

१. प्राचीन प्रतिमें 'यायाते' इतना अधिक पाठ है। २. बादरायणिरुवाच। ३. रतिनारो। ४. रैतिर्दुष्य०।

दुष्यन्तो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः ।
तत्रासीनां स्वप्रभया मण्डयन्तीं रमामिव ॥ ८

विलोक्य सद्यो[1] मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् ।
बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः ॥ ९

तद्दर्शनप्रमुदितः संनिवृत्तपरिश्रमः ।
पप्रच्छ कामसन्तप्तः प्रहसञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥ १०

का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयङ्गमे ।
किं वा चिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने ॥ ११

व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे ।
न हि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित् ॥ १२

शकुन्तलोवाच

विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने ।
वेदैतद् भगवान् कण्वो वीर किं करवाम[2] ते ॥ १३

आस्यतां ह्यरविन्दाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ।
भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥ १४

दुष्यन्त उवाच

उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये ।
स्वयं हि वृणते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम् ॥ १५

ओमित्युक्ते[3] यथाधर्ममुपयेमे शकुन्तलाम् ।
गान्धर्वविधिना राजा देशकालविधानवित् ॥ १६

अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां वीर्यमादधे ।
श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥ १७

एक बार दुष्यन्त वनमें अपने कुछ सैनिकोंके साथ शिकार खेलनेके लिये गये हुए थे। उधर ही वे कण्व मुनिके आश्रमपर जा पहुँचे। उस आश्रमपर देवमायाके समान मनोहर एक स्त्री बैठी हुई थी। उसकी लक्ष्मीके समान अङ्गकान्तिसे वह आश्रम जगमगा रहा था। उस सुन्दरीको देखते ही दुष्यन्त मोहित हो गये और उससे बातचीत करने लगे ॥ ८-९ ॥ उसको देखनेसे उनको बड़ा आनन्द मिला। उनके मनमें कामवासना जाग्रत् हो गयी। थकावट दूर करनेके बाद उन्होंने बड़ी मधुर वाणीसे मुसकराते हुए उससे पूछा— ॥ १० ॥ 'कमलदलके समान सुन्दर नेत्रोंवाली देवि ! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो ? मेरे हृदयको अपनी ओर आकर्षित करनेवाली सुन्दरी ! तुम इस निर्जन वनमें रहकर क्या करना चाहती हो ? ॥ ११ ॥ सुन्दरी ! मैं स्पष्ट समझ रहा हूँ कि तुम किसी क्षत्रियकी कन्या हो। क्योंकि पुरुवंशियोंका चित्त कभी अधर्मकी ओर नहीं झुकता' ॥ १२ ॥

शकुन्तलाने कहा—'आपका कहना सत्य है। मैं विश्वामित्रजीकी पुत्री हूँ। मेनका अप्सराने मुझे वनमें छोड़ दिया था। इस बातके साक्षी हैं मेरा पालन-पोषण करनेवाले महर्षि कण्व। वीरशिरोमणे ! मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥ १३ ॥ कमलनयन ! आप यहाँ बैठिये और हम जो कुछ आपका स्वागत-सत्कार करें, उसे स्वीकार कीजिये। आश्रममें कुछ नीवार (तिन्नीका भात) है। आपकी इच्छा हो तो भोजन कीजिये और जँचे तो यहीं ठहरिये' ॥ १४ ॥

दुष्यन्तने कहा—'सुन्दरी ! तुम कुशिकवंशमें उत्पन्न हुई हो, इसलिये इस प्रकारका आतिथ्य-सत्कार तुम्हारे योग्य ही है। क्योंकि राजकन्याएँ स्वयं ही अपने योग्य पतिको वरण कर लिया करती हैं' ॥ १५ ॥ शकुन्तलाकी स्वीकृति मिल जानेपर देश, काल और शास्त्रकी आज्ञाको जाननेवाले राजा दुष्यन्तने गान्धर्व-विधिसे धर्मानुसार उसके साथ विवाह कर लिया ॥ १६ ॥ राजर्षि दुष्यन्तका वीर्य अमोघ था। रात्रिमें वहाँ रहकर दुष्यन्तने शकुन्तलाका सहवास किया और दूसरे दिन सवेरे वे अपनी राजधानीमें चले गये। समय आनेपर शकुन्तलाको एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥

---

१. मुमुहे सद्यो । २. वाणि । ३. क्तो ।

कण्वः[1] कुमारस्य वने चक्रे समुचिताः क्रियाः ।
बद्ध्वा मृगेन्द्रांस्तरसा[2] क्रीडति स्म स बालकः ॥ १८

तं दुरत्ययविक्रान्तमादाय प्रमदोत्तमा ।
हरेरंशांशसम्भूतं भर्तुरन्तिकमागमत् ॥ १९

यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिन्दितौ ।
शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी ॥ २०

माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ।
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥ २१

रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥ २२

पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः ।
महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥ २३

चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः ।
ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड्[3] विभुः ॥ २४

पञ्चपञ्चाशता मेध्यैर्गङ्गायामनु वाजिभिः ।
मामतेयं[4] पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः ॥ २५

अष्टसप्ततिमेध्याश्वान् बबन्ध प्रददद् वसु ।
भरतस्य हि[5] दौष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चितः ।
सहस्रं बद्धशो यस्मिन् ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥ २६

त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान् बद्ध्वा विस्मापयन् नृपान् ।
दौष्यन्तिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ॥ २७

मृगाञ्छुक्लदतः कृष्णान् हिरण्येन परीवृतान्[6] ।
अदात् कर्मणि मघ्णारे[7] नियुतानि चतुर्दश ॥ २८

महर्षि कण्वने वनमें ही राजकुमारके जातकर्म आदि संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न किये । वह बालक बचपनमें ही इतना बलवान् था कि बड़े-बड़े सिंहोंको बलपूर्वक बाँध लेता और उनसे खेला करता ॥ १८ ॥

वह बालक भगवान्‌का अंशांशावतार था । उसका बल-विक्रम अपरिमित था । उसे अपने साथ लेकर रमणीरत्न शकुन्तला अपने पतिके पास गयी ॥ १९ ॥ जब राजा दुष्यन्तने अपनी निर्दोष पत्नी और पुत्रको स्वीकार नहीं किया, तब जिसका वक्ता नहीं दीख रहा था और जिसे सब लोगोंने सुना, ऐसी आकाशवाणी हुई ॥ २० ॥ 'पुत्र उत्पन्न करनेमें माता तो केवल धौंकनीके समान है । वास्तवमें पुत्र पिताका ही है । क्योंकि पिता ही पुत्रके रूपमें उत्पन्न होता है । इसलिये दुष्यन्त ! तुम शकुन्तलाका तिरस्कार न करो, अपने पुत्रका भरण-पोषण करो ॥ २१ ॥ राजन् ! वंशकी वृद्धि करनेवाला पुत्र अपने पिताको नरकसे उबार लेता है । शकुन्तलाका कहना बिलकुल ठीक है । इस गर्भको धारण करानेवाले तुम्हीं हो' ॥ २२ ॥

परीक्षित् ! पिता दुष्यन्तकी मृत्यु हो जानेके बाद वह परम यशस्वी बालक चक्रवर्ती सम्राट् हुआ । उसका जन्म भगवान्‌के अंशसे हुआ था । आज भी पृथ्वीपर उसकी महिमाका गान किया जाता है ॥ २३ ॥ उसके दाहिने हाथमें चक्रका चिह्न था और पैरोंमें कमलकोषका । महाभिषेककी विधिसे राजाधिराजके पदपर उसका अभिषेक हुआ । भरत बड़ा शक्तिशाली राजा था ॥ २४ ॥ भरतने ममताके पुत्र दीर्घतमा मुनिको पुरोहित बनाकर गङ्गातटपर गङ्गासागरसे लेकर गङ्गोत्रीपर्यन्त पचपन पवित्र अश्वमेध यज्ञ किये । और इसी प्रकार यमुनातटपर भी प्रयागसे लेकर यमुनोत्रीतक उन्होंने अठहत्तर अश्वमेध यज्ञ किये । इन सभी यज्ञोंमें उन्होंने अपार धनराशिका दान किया था । दुष्यन्तकुमार भरतका यज्ञीय अग्निस्थापन बड़े ही उत्तम गुणवाले स्थानमें किया गया था । उस स्थानमें भरतने इतनी गौएँ दान दी थीं कि एक हजार ब्राह्मणोंमें प्रत्येक ब्राह्मणको एक-एक बद्ध (१३०८४) गौएँ मिली थीं ॥ २५-२६ ॥ इस प्रकार राजा भरतने उन यज्ञोंमें एक सौ तैंतीस (५५+७८) घोड़े बाँधकर (१३३ यज्ञ करके) समस्त नरपतियोंको असीम आश्चर्यमें डाल दिया । इन यज्ञोंके द्वारा इस लोकमें तो राजा भरतको परम यश मिला ही, अन्तमें उन्होंने मायापर भी विजय प्राप्त की और देवताओंके परमगुरु भगवान् श्रीहरिको प्राप्त कर लिया ॥ २७ ॥ यज्ञमें एक कर्म होता है 'मघ्णार' । उसमें भरतने

१. कुमारस्य वने चक्रे सर्वाः समुदिताः । २. गेन्द्र तरसा क्रीडते स च बाल० । ३. विराड् । ४. गङ्गातोयं । ५. तु । ६. परिष्कृतान् । ७. मन्तारे ।

भरतस्य महत् कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः ।
नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥ २९

किरातहूणान् यवनानन्ध्रान् कङ्कान् खशाञ्शकान् ।
अब्रह्मण्यान् नृपांश्चाहन् म्लेच्छान् दिग्विजयेऽखिलान् ॥ ३०

जित्वा पुरासुरा देवान् ये रसौकांसि भेजिरे ।
देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ॥ ३१

सर्वकामान् दुदुहतुः प्रजानां तस्य रोदसी ।
समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ॥ ३२

स सम्राड् लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट् श्रियम् ।
चक्रं चास्खलितं प्राणान्[1] मृषेत्युपरराम ह ॥ ३३

तस्यासन् नृप[2] वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसम्मताः ।
जघ्नुस्त्यागभयात् पुत्रान् नानुरूपा इतीरिते ॥ ३४

तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् ।
मरुत्स्तोमेन मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥ ३५

अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः ।
प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥ ३६

तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशङ्कितां ।
नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं[3] सुरा जगुः ॥ ३७

मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते ।
यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ३८

सुवर्णसे विभूषित, श्वेत दाँतोंवाले तथा काले रंगके चौदह लाख हाथी दान किये ॥ २८ ॥ भरतने जो महान् कर्म किया, वह न तो पहले कोई राजा कर सका था और न तो आगे ही कोई कर सकेगा। क्या कभी कोई हाथसे स्वर्गको छू सकता है ? ॥ २९ ॥ भरतने दिग्विजयके समय किरात, हूण, यवन, अन्ध्र, कङ्क, खश, शक और म्लेच्छ आदि समस्त ब्राह्मणद्रोही राजाओंको मार डाला ॥ ३० ॥ पहले युगमें बलवान् असुरोंने देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली थी और वे रसातलमें रहने लगे थे। उस समय वे बहुत-सी देवाङ्गनाओंको रसातलमें ले गये थे। राजा भरतने फिरसे उन्हें छुड़ा दिया ॥ ३१ ॥ उनके राज्यमें पृथ्वी और आकाश प्रजाकी सारी आवश्यकताएँ पूर्ण कर देते थे। भरतने सत्ताईस हजार वर्षतक समस्त दिशाओंका एकछत्र शासन किया ॥ ३२ ॥ अन्तमें सार्वभौम सम्राट् भरतने यही निश्चय किया कि लोकपालोंको भी चकित कर देनेवाला ऐश्वर्य, सार्वभौम सम्पत्ति, अखण्ड शासन और यह जीवन भी मिथ्या ही है। यह निश्चय करके वे संसारसे उदासीन हो गये ॥ ३३ ॥

परीक्षित् ! विदर्भराजकी तीन कन्याएँ सम्राट् भरतकी पत्नियाँ थीं। वे उनका बड़ा आदर भी करते थे। परन्तु जब भरतने उनसे कह दिया कि तुम्हारे पुत्र मेरे अनुरूप नहीं हैं, तब वे डर गयीं कि कहीं सम्राट् हमें त्याग न दें। इसलिये उन्होंने अपने बच्चोंको मार डाला ॥ ३४ ॥ इस प्रकार सम्राट् भरतका वंश वितथ अर्थात् विच्छिन्न होने लगा। तब उन्होंने सन्तानके लिये 'मरुत्स्तोम' नामका यज्ञ किया। इससे मरुद्गणोंने प्रसन्न होकर भरतको भरद्वाज नामका पुत्र दिया ॥ ३५ ॥ भरद्वाजकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग यह है कि एक बार बृहस्पतिजीने अपने भाई उतथ्यकी गर्भवती पत्नीसे मैथुन करना चाहा। उस समय गर्भमें जो बालक (दीर्घतमा) था, उसने मना किया। किन्तु बृहस्पतिजीने उसकी बातपर ध्यान न दिया और उसे 'तू अंधा हो जा' यह शाप देकर बलपूर्वक गर्भाधान कर दिया ॥ ३६ ॥ उतथ्यकी पत्नी ममता इस बातसे डर गयी कि कहीं मेरे पति मेरा त्याग न कर दें। इसलिये उसने बृहस्पतिजीके द्वारा होनेवाले लड़केको त्याग देना चाहा। उस समय देवताओंने गर्भस्थ शिशुके नामका निर्वचन करते हुए यह कहा ॥ ३७ ॥ बृहस्पतिजी कहते हैं कि 'अरी मूढे ! यह मेरा औरस और मेरे भाईका क्षेत्रज—इस प्रकार दोनोंका पुत्र (द्वाज) है; इसलिये तू डर मत, इसका भरण-पोषण कर (भर)।' इसपर ममताने कहा— 'बृहस्पते ! यह मेरे पतिका नहीं, हम दोनोंका ही पुत्र है; इसलिये तुम्हीं इसका भरण-पोषण करो।' इस प्रकार आपसमें विवाद करते हुए माता-पिता दोनों ही इसको छोड़कर चले गये। इसलिये इस लड़केका नाम 'भरद्वाज' हुआ ॥ ३८ ॥

---

१. पुंसां । २. ब्रूपि । ३. कमेकं ।

चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ।
व्यसृजन् मरुतोऽबिभ्रन् दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३९

देवताओंके द्वारा नामका ऐसा निर्वचन होनेपर भी ममताने यही समझा कि मेरा यह पुत्र वितथ अर्थात् अन्यायसे पैदा हुआ है। अतः उसने उस बच्चेको छोड़ दिया। अब मरुद्गणोंने उसका पालन किया और जब राजा भरतका वंश नष्ट होने लगा, तब उसे लाकर उनको दे दिया। यही वितथ (भरद्वाज) भरतका दत्तक पुत्र हुआ ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे[1] विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथैकविंशोऽध्यायः

भरतवंशका वर्णन, राजा रन्तिदेवकी कथा

श्रीशुक उवाच

वितथस्य सुतो[2] मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ।
महावीर्यो नरो गर्गः सङ्कृतिस्तु नरात्मजः ॥ १

गुरुश्च रन्तिदेवश्च सङ्कृतेः पाण्डुनन्दन ।
रन्तिदेवस्य हि यश इहामुत्र च गीयते ॥ २

वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धं बुभुक्षतः ।
निष्किञ्चनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥ ३

व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपिबतः किल ।
घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥ ४

कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः ।
अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥ ५

तस्मै संव्यभजत् सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः ।
हरिं सर्वत्र संपश्यन् स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥ ६

अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपते ।
विभक्तं व्यभजत् तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥ ७

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! वितथ अथवा भरद्वाजका पुत्र था मन्यु। मन्युके पाँच पुत्र हुए—बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग। नरका पुत्र था संकृति ॥ १ ॥ संकृतिके दो पुत्र हुए—गुरु और रन्तिदेव। परीक्षित् ! रन्तिदेवका निर्मल यश इस लोक और परलोकमें सब जगह गाया जाता है ॥ २ ॥ रन्तिदेव आकाशके समान बिना उद्योगके ही दैववश प्राप्त वस्तुका उपभोग करते और दिनोंदिन उनकी पूँजी घटती जाती। जो कुछ मिल जाता उसे भी दे डालते और स्वयं भूखे रहते। वे संग्रह-परिग्रह, ममतासे रहित तथा बड़े धैर्यशाली थे और अपने कुटुम्बके साथ दुःख भोग रहे थे ॥ ३ ॥ एक बार तो लगातार अड़तालीस दिन ऐसे बीत गये कि उन्हें पानीतक पीनेको न मिला। उनचासवें दिन प्रातःकाल ही उन्हें कुछ घी, खीर, हलवा और जल मिला ॥ ४ ॥ उनका परिवार बड़े सङ्कटमें था। भूख और प्यासके मारे वे लोग काँप रहे थे। परन्तु ज्यों ही उन लोगोंने भोजन करना चाहा, त्यों ही एक ब्राह्मण अतिथिके रूपमें आ गया ॥ ५ ॥ रन्तिदेव सबमें श्रीभगवान्‌के ही दर्शन करते थे। अतएव उन्होंने बड़ी श्रद्धासे आदरपूर्वक उसी अन्नमेंसे ब्राह्मणको भोजन कराया। ब्राह्मणदेवता भोजन करके चले गये ॥ ६ ॥

परीक्षित् ! अब बचे हुए अन्नको रन्तिदेवने आपसमें बाँट लिया और भोजन करना चाहा। उसी समय एक दूसरा शूद्र-अतिथि आ गया। रन्तिदेवने भगवान्‌का स्मरण करते हुए उस बचे हुए अन्नमेंसे भी कुछ भाग शूद्रके रूपमें आये अतिथिको खिला दिया ॥ ७ ॥

---

१. प्राचीन प्रतिमें 'पुरुवंशानुकीर्तनं' नाम इतना अंश अधिक है। २. सुतान् वक्ष्ये बृह०।

याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः ।
राजन् मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते ॥ ८

स आदृत्यावशिष्टं यद् बहुमानपुरस्कृतम् ।
तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥ ९

पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् ।
पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य[1] मे ॥ १०

तस्य[2] तां करुणां वाचं निशाम्य विपुलश्रमाम् ।
कृपया भृशसन्तप्त इदमाहामृतं वचः ॥ ११

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥ १२

क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिश्रमश्च
दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः ।
सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तो-
र्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥ १३

इति प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया ।
पुल्कसायाददाद्धीरो[3] निसर्गकरुणो नृपः ॥ १४

तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम् ।
आत्मानं दर्शयाञ्चक्रुर्माया विष्णुविनिर्मिताः ॥ १५

स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निःसङ्गो विगतस्पृहः[4] ।
वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे मनः परम् ॥ १६

ईश्वरालम्बनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः ।
माया गुणमयी राजन् स्वप्नवत् प्रत्यलीयत ॥ १७

जब शूद्र खा-पीकर चला गया, तब कुत्तोंको लिये हुए एक और अतिथि आया। उसने कहा—'राजन्! मैं और मेरे ये कुत्ते बहुत भूखे हैं। हमें कुछ खानेको दीजिये' ॥ ८ ॥ रन्तिदेवने अत्यन्त आदरभावसे, जो कुछ बच रहा था, सब-का-सब उसे दे दिया और भगवन्मय होकर उन्होंने कुत्ते और कुत्तोंके स्वामीके रूपमें आये हुए भगवान्‌को नमस्कार किया ॥ ९ ॥ अब केवल जल ही बच रहा था और वह भी केवल एक मनुष्यके पीनेभरका था। वे उसे आपसमें बाँटकर पीना ही चाहते थे कि एक चाण्डाल और आ पहुँचा। उसने कहा—'मैं अत्यन्त नीच हूँ। मुझे जल पिला दीजिये' ॥ १० ॥ चाण्डालकी वह करुणापूर्ण वाणी जिसके उच्चारणमें भी वह अत्यन्त कष्ट पा रहा था, सुनकर रन्तिदेव दयासे अत्यन्त सन्तप्त हो उठे और ये अमृतमय वचन कहने लगे ॥ ११ ॥ 'मैं भगवान्‌से आठों सिद्धियोंसे युक्त परम गति नहीं चाहता। और तो क्या, मैं मोक्षकी भी कामना नहीं करता। मैं चाहता हूँ तो केवल यही कि मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित हो जाऊँ और उनका सारा दुःख मैं ही सहन करूँ, जिससे और किसी भी प्राणीको दुःख न हो ॥ १२ ॥ यह दीन प्राणी जल पी करके जीना चाहता था। जल दे देनेसे इसके जीवनकी रक्षा हो गयी। अब मेरी भूख-प्यासकी पीड़ा, शरीरकी शिथिलता, दीनता, ग्लानि, शोक, विषाद और मोह—ये सब-के-सब जाते रहे। मैं सुखी हो गया' ॥ १३ ॥ इस प्रकार कहकर रन्तिदेवने वह बचा हुआ जल भी उस चाण्डालको दे दिया। यद्यपि जलके बिना वे स्वयं मर रहे थे, फिर भी स्वभावसे ही उनका हृदय इतना करुणापूर्ण था कि वे अपनेको रोक न सके। उनके धैर्यकी भी कोई सीमा है? ॥ १४ ॥ परीक्षित्! ये अतिथि वास्तवमें भगवान्‌की रची हुई मायाके ही विभिन्न रूप थे। परीक्षा पूरी हो जानेपर अपने भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले त्रिभुवनस्वामी ब्रह्मा, विष्णु और महेश—तीनों उनके सामने प्रकट हो गये ॥ १५ ॥ रन्तिदेवने उनके चरणोंमें नमस्कार किया। उन्हें कुछ लेना तो था नहीं। भगवान्‌की कृपासे वे आसक्ति और स्पृहासे भी रहित हो गये तथा परम प्रेममय भक्तिभावसे अपने मनको भगवान् वासुदेवमें तन्मय कर दिया। कुछ भी माँगा नहीं ॥ १६ ॥ परीक्षित्! उन्हें भगवान्‌के सिवा और किसी भी वस्तुकी इच्छा तो थी नहीं, उन्होंने अपने मनको पूर्णरूपसे भगवान्‌में लगा दिया। इसलिये त्रिगुणमयी माया जागनेपर स्वप्न-दृश्यके समान नष्ट हो गयी ॥ १७ ॥

---

१. भाय मे। २. तस्येति करु०। ३. द्धीरो। ४. तज्वरः।

तत्प्रसङ्गानुभावेन रन्तिदेवानुवर्तिनः ।
अभवन् योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥ १८

रन्तिदेवके अनुयायी भी उनके सङ्गके प्रभावसे योगी हो गये और सब भगवान्‌के ही आश्रित परम भक्त बन गये ॥ १८ ॥

गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद् ब्रह्म[1] ह्यवर्तत ।
दुरितक्षयो महावीर्यात्[2] तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥ १९

पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ।
बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ॥ २०

अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ।
अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥ २१

अजमीढाद् बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ।
बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥ २२

तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित् समजायत ।
रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥ २३

रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ।
पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ २४

स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् ।
स[3] योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात् सुतम् ॥ २५

जैगीषव्योपदेशेन योगतन्त्रं चकार ह ।
उदक्स्वनस्ततस्तस्माद् भल्लादो बार्हदीषवाः ॥ २६

यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः ।
नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥ २७

सुपार्श्वात् सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः ।
कृतिर्हिरण्यनाभाद् यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥ २८

मन्युपुत्र गर्गसे शिनि और शिनिसे गार्ग्यका जन्म हुआ । यद्यपि गार्ग्य क्षत्रिय था, फिर भी उससे ब्राह्मणवंश चला । महावीर्यका पुत्र था दुरितक्षय । दुरितक्षयके तीन पुत्र हुए—त्रय्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि । ये तीनों ब्राह्मण हो गये । बृहत्क्षत्रका पुत्र हुआ हस्ती, उसीने हस्तिनापुर बसाया था ॥ १९-२० ॥ हस्तीके तीन पुत्र थे—अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ । अजमीढके पुत्रोंमें प्रियमेध आदि ब्राह्मण हुए ॥ २१ ॥ इन्हीं अजमीढके एक पुत्रका नाम था बृहदिषु । बृहदिषुका पुत्र हुआ बृहद्धनु, बृहद्धनुका बृहत्काय और बृहत्कायका जयद्रथ हुआ ॥ २२ ॥ जयद्रथका पुत्र हुआ विशद और विशदका सेनजित् । सेनजित्के चार पुत्र हुए— रुचिराश्व, दृढहनु, काश्य और वत्स ॥ २३ ॥ रुचिराश्वका पुत्र पार था और पारका पृथुसेन । पारके दूसरे पुत्रका नाम नीप था । उसके सौ पुत्र थे ॥ २४ ॥ इसी नीपने (छाया) * शुककी कन्या कृत्वीसे विवाह किया था । उससे ब्रह्मदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । ब्रह्मदत्त बड़ा योगी था । उसने अपनी पत्नी सरस्वतीके गर्भसे विष्वक्सेन नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ इसी विष्वक्सेनने जैगीषव्यके उपदेशसे योगशास्त्रकी रचना की । विष्वक्सेनका पुत्र था उदक्स्वन और उदक्स्वनका भल्लाद । ये सब बृहदिषुके वंशज हुए ॥ २६ ॥

द्विमीढका पुत्र था यवीनर, यवीनरका कृतिमान्, कृतिमान्‌का सत्यधृति, सत्यधृतिका दृढनेमि और दृढनेमिका पुत्र सुपार्श्व हुआ ॥ २७ ॥ सुपार्श्वसे सुमति, सुमतिसे सन्नतिमान् और सन्नतिमान्‌से कृतिका जन्म हुआ । उसने हिरण्यनाभसे योगविद्या प्राप्त की थी और

१. ब्रह्मण्यवर्तत । २. वीर्यो यस्य त्र० । ३. योगी स ।

* श्रीशुकदेवजी असंग थे पर वे वन जाते समय एक छाया शुक रचकर छोड़ गये थे । उस छाया शुकने ही गृहस्थोचित व्यवहार किये थे ।

संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युग्रायुधस्ततः ।
तस्य क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुञ्जयः ॥ २९

ततो बहुरथो नाम पुरमीढोऽप्रजोऽभवत् ।
नलिन्यामजमीढस्य नीलः शान्तिः[1] सुतस्ततः ॥ ३०

शान्तेः सुशान्तिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् ।
भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन्मुद्गलादयः ॥ ३१

यवीनरो बृहदिषुः[2] काम्पिल्यः संजयः सुताः ।
भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि[3] ॥ ३२

विषयाणामलमिमे इति पञ्चालसंज्ञिताः ।
मुद्गलाद् ब्रह्म निर्वृत्तं[4] गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥ ३३

मिथुनं मुद्गलाद् भार्म्याद् दिवोदासः पुमानभूत् ।
अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दस्तु गौतमात् ॥ ३४

तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः ।
शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात् किल ॥ ३५

शरस्तम्बेऽपतद् रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ।
तद् दृष्ट्वा कृपयागृह्णाच्छन्तनुर्मृगयां चरन् ।
कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत् कृपी ॥ ३६

'प्राच्यसाम' नामक ऋचाओंकी छः संहिताएँ कही थीं। कृतिका पुत्र नीप था, नीपका उग्रायुध, उग्रायुधका क्षेम्य, क्षेम्यका सुवीर और सुवीरका पुत्र था रिपुञ्जय ॥ २८-२९ ॥ रिपुञ्जयका पुत्र था बहुरथ। द्विमीढके भाई पुरुमीढको कोई सन्तान न हुई। अजमीढकी दूसरी पत्नीका नाम था नलिनी। उसके गर्भसे नीलका जन्म हुआ। नीलका शान्ति, शान्तिका सुशान्ति, सुशान्तिका पुरुज, पुरुजका अर्क और अर्कका पुत्र हुआ भर्म्याश्व। भर्म्याश्वके पाँच पुत्र थे—मुद्गल, यवीनर, बृहदिषु, काम्पिल्य और सञ्जय। भर्म्याश्वने कहा—'ये मेरे पुत्र पाँच देशोंका शासन करनेमें समर्थ (पञ्च अलम्) हैं।' इसलिये ये 'पञ्चाल' नामसे प्रसिद्ध हुए। इनमें मुद्गलसे 'मौद्गल्य' नामक ब्राह्मणगोत्रकी प्रवृत्ति हुई ॥ ३०—३३॥

भर्म्याश्वके पुत्र मुद्गलसे यमज (जुड़वाँ) सन्तान हुई। उनमें पुत्रका नाम था दिवोदास और कन्याका अहल्या। अहल्याका विवाह महर्षि गौतमसे हुआ। गौतमके पुत्र हुए शतानन्द ॥ ३४ ॥ शतानन्दका पुत्र सत्यधृति था, वह धनुर्विद्यामें अत्यन्त निपुण था। सत्यधृतिके पुत्रका नाम था शरद्वान्। एक दिन उर्वशीको देखनेसे शरद्वान्का वीर्य मूँजके झाड़पर गिर पड़ा, उससे एक शुभ लक्षणवाले पुत्र और पुत्रीका जन्म हुआ। महाराज शन्तनुकी उसपर दृष्टि पड़ गयी, क्योंकि वे उधर शिकार खेलनेके लिये गये हुए थे। उन्होंने दयावश दोनोंको उठा लिया। उनमें जो पुत्र था, उसका नाम कृपाचार्य हुआ और जो कन्या थी, उसका नाम हुआ कृपी। यही कृपी द्रोणाचार्यकी पत्नी हुई ॥ ३५-३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे[5]
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

१. त्तिस्ततः सुतः । २. हद्विधः । ३. वै । ४. संवृ० । ५. प्राचीन प्रतिमें 'भरतवंशानुकीर्तने' इतना अंश अधिक है।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

पाञ्चाल, कौरव और मगधदेशीय राजाओंके वंशका वर्णन

श्रीशुक उवाच

मित्रेयुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप ।
सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जन्तुजन्मकृत्[1] ॥ १

तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान् पृषतः सुतः ।
द्रुपदो द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥ २

धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतुर्भार्म्याः पञ्चालका इमे ।
योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः ॥ ३

तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः ।
परीक्षित् सुधनुर्जह्नुर्निषधाश्चः कुरोः सुताः ॥ ४

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! दिवोदासका पुत्र था मित्रेयु। मित्रेयुके चार पुत्र हुए—च्यवन, सुदास, सहदेव और सोमक। सोमकके सौ पुत्र थे, उनमें सबसे बड़ा जन्तु और सबसे छोटा पृषत था। पृषतके पुत्र द्रुपद थे, द्रुपदके द्रौपदी नामकी पुत्री और धृष्टद्युम्न आदि पुत्र हुए॥ १-२॥ धृष्टद्युम्नका पुत्र था धृष्टकेतु। भर्म्याश्वके वंशमें उत्पन्न हुए ये नरपति 'पाञ्चाल' कहलाये। अजमीढका दूसरा पुत्र था ऋक्ष। उनके पुत्र हुए संवरण॥ ३॥ संवरणका विवाह सूर्यकी कन्या तपतीसे हुआ। उन्हींके गर्भसे कुरुक्षेत्रके स्वामी कुरुका जन्म हुआ। कुरुके चार पुत्र हुए—परीक्षित्, सुधन्वा, जह्नु और निषधाश्च॥ ४॥

सुहोत्रोऽभूत् सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती ।
वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ॥ ५

कुशाम्बमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः ।
बृहद्रथात् कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुतः ॥ ६

जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जहुः ।
अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ॥ ७

ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसन्धिते ।
जीव जीवेति क्रीडन्त्या जरासन्धोऽभवत् सुतः ॥ ८

ततश्च सहदेवोऽभूत् सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः ।
परीक्षिदनपत्योऽभूत् सुरथो नाम जाह्नवः ॥ ९

ततो विदूरथस्तस्मात् सार्वभौमस्ततोऽभवत् ।
जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुतो ह्यभूत् ॥ १०

सुधन्वासे सुहोत्र, सुहोत्रसे च्यवन, च्यवनसे कृती, कृतीसे उपरिचरवसु और उपरिचरवसुसे बृहद्रथ आदि कई पुत्र उत्पन्न हुए॥ ५॥ उनमें बृहद्रथ, कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप आदि चेदिदेशके राजा हुए। बृहद्रथका पुत्र था कुशाग्र, कुशाग्रका ऋषभ, ऋषभका सत्यहित, सत्यहितका पुष्पवान् और पुष्पवान्के जहु नामक पुत्र हुआ। बृहद्रथकी दूसरी पत्नीके गर्भसे एक शरीरके दो टुकड़े उत्पन्न हुए॥ ६-७॥

उन्हें माताने बाहर फेंकवा दिया। तब 'जरा' नामकी राक्षसीने 'जियो, जियो' इस प्रकार कहकर खेल-खेलमें उन दोनों टुकड़ोंको जोड़ दिया। उसी जोड़े हुए बालकका नाम हुआ जरासन्ध॥ ८॥ जरासन्धका सहदेव, सहदेवका सोमापि और सोमापिका पुत्र हुआ श्रुतश्रवा। कुरुके ज्येष्ठ पुत्र परीक्षित्के कोई सन्तान न हुई। जह्नुका पुत्र था सुरथ॥ ९॥ सुरथका विदूरथ, विदूरथका सार्वभौम, सार्वभौमका जयसेन, जयसेनका राधिक और राधिकका पुत्र हुआ अयुत॥ १०॥

---

१. जातुकर्मकृत्।

ततश्च क्रोधनस्तस्माद् देवातिथिरमुष्य च ।
ऋष्यस्तस्य[1] दिलीपोऽभूत् प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥ ११

देवापिः शन्तनुस्तस्य बाह्लीक इति चात्मजाः ।
पितृराज्यं परित्यज्य[2] देवापिस्तु वनं गतः ॥ १२

अभवच्छन्तनू राजा प्राङ्महाभिषसंज्ञितः ।
यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ॥ १३

शान्तिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शन्तनुः ।
समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥ १४

शन्तनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्तायमग्रभुक् ।
राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥ १५

एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छन्दयामास सोऽब्रवीत् ।
तन्मन्त्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद् विभ्रंशितो गिरा ॥ १६

वेदवादातिवादान् वै तदा[3] देवो ववर्ष ह ।
देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राममाश्रितः ॥ १७

सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति ।
बाह्लीकात् सोमदत्तोऽभूद् भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥ १८

शलश्च शन्तनोरासीद् गङ्गायां भीष्म आत्मवान् ।
सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥ १९

वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः ।
शन्तनोर्दाशकन्यायां जज्ञे चित्राङ्गदः सुतः ॥ २०

अयुतका क्रोधन, क्रोधनका देवातिथि, देवातिथिका ऋष्य, ऋष्यका दिलीप और दिलीपका पुत्र प्रतीप हुआ ॥ ११ ॥ प्रतीपके तीन पुत्र थे—देवापि, शन्तनु और बाह्लीक । देवापि अपना पैतृक राज्य छोड़कर वनमें चला गया ॥ १२ ॥ इसलिये उसके छोटे भाई शन्तनु राजा हुए । पूर्वजन्ममें शन्तनुका नाम महाभिष था । इस जन्ममें भी वे अपने हाथोंसे जिसे छू देते थे, वह बूढ़ेसे जवान हो जाता था ॥ १३ ॥ उसे परम शान्ति मिल जाती थी । इसी करामातके कारण उनका नाम 'शन्तनु' हुआ । एक बार शन्तनुके राज्यमें बारह वर्षतक इन्द्रने वर्षा नहीं की । इसपर ब्राह्मणोंने शन्तनुसे कहा कि 'तुमने अपने बड़े भाई देवापिसे पहले ही विवाह, अग्निहोत्र और राजपदको स्वीकार कर लिया, अतः तुम परिवेत्ता * हो; इसीसे तुम्हारे राज्यमें वर्षा नहीं होती । अब यदि तुम अपने नगर और राष्ट्रकी उन्नति चाहते हो, तो शीघ्र-से-शीघ्र अपने बड़े भाईको राज्य लौटा दो' ॥ १४-१५ ॥ जब ब्राह्मणोंने शन्तनुसे इस प्रकार कहा, तब उन्होंने वनमें जाकर अपने बड़े भाई देवापिसे राज्य स्वीकार करनेका अनुरोध किया । परन्तु शन्तनुके मन्त्री अश्मरातने पहलेसे ही उनके पास कुछ ऐसे ब्राह्मण भेज दिये थे, जो वेदको दूषित करनेवाले वचनोंसे देवापिको वेदमार्गसे विचलित कर चुके थे । इसका फल यह हुआ कि देवापि वेदोंके अनुसार गृहस्थाश्रम स्वीकार करनेकी जगह उनकी निन्दा करने लगे । इसलिये वे राज्यके अधिकारसे वञ्चित हो गये और तब शन्तनुके राज्यमें वर्षा हुई । देवापि इस समय भी योगसाधना कर रहे हैं और योगियोंके प्रसिद्ध निवासस्थान कलापग्राममें रहते हैं ॥ १६-१७ ॥ जब कलियुगमें चन्द्रवंशका नाश हो जायगा, तब सत्ययुगके प्रारम्भमें वे फिर उसकी स्थापना करेंगे । शन्तनुके छोटे भाई बाह्लीकका पुत्र हुआ सोमदत्त । सोमदत्तके तीन पुत्र हुए—भूरि, भूरिश्रवा और शल । शन्तनुके द्वारा गङ्गाजीके गर्भसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी भीष्मका जन्म हुआ । वे समस्त धर्मज्ञोंके सिरमौर, भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त और परम ज्ञानी थे ॥ १८-१९ ॥ वे संसारके समस्त वीरोंके अग्रगण्य नेता थे । औरोंकी तो बात ही क्या, उन्होंने अपने गुरु भगवान्

---

१. ऋक्ष० । २. समुत्सृज्य । ३. ततो ।

* दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥

अर्थात् जो पुरुष अपने बड़े भाईके रहते हुए उससे पहले ही विवाह और अग्निहोत्रका संयोग करता है उसे परिवेत्ता जानना चाहिये, और उसका बड़ा भाई 'परिवित्ति' कहलाता है ।

विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्राङ्गदो हतः ।
यस्यां पराशरात् साक्षादवतीर्णो हरेः कला ॥ २१

वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् ।
हित्वा स्वशिष्यान् पैलादीन् भगवान् बादरायणः ॥ २२

महां पुत्राय शान्ताय परं गुह्यमिदं जगौ ।
विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात् ॥ २३

स्वयंवरादुपानीते अम्बिकाम्बालिके उभे ।
तयोरासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः ॥ २४

क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः ।
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥ २५

गान्धार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं[1] नृप ।
तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि कन्यका ॥ २६

शापान्मैथुनरुद्धस्य पाण्डोः कुन्त्यां महारथाः ।
जाता धर्मानिलेन्द्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥ २७

नकुलः सहदेवश्च माद्र्यां नासत्यदस्रयोः ।
द्रौपद्यां पञ्च पञ्चभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन् ॥ २८

युधिष्ठिरात् प्रतिविन्ध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् ।
अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ २९

सहदेवसुतो राजञ्छ्रुतकर्मा[2] तथापरे ।
युधिष्ठिरात् तु पौरव्यां देवकोऽथ घटोत्कचः ॥ ३०

परशुरामको भी युद्धमें सन्तुष्ट कर दिया था। शन्तनुके द्वारा दाशराजकी कन्या * के गर्भसे दो पुत्र हुए—चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। चित्राङ्गदको चित्राङ्गद नामक गन्धर्वने मार डाला। इसी दाशराजकी कन्या सत्यवतीसे पराशरजीके द्वारा मेरे पिता, भगवान्‌के कलावतार स्वयं भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने वेदोंकी रक्षा की। परीक्षित्! मैंने उन्हींसे इस श्रीमद्भागवत-पुराणका अध्ययन किया था। यह पुराण परम गोपनीय—अत्यन्त रहस्यमय है। इसीसे मेरे पिता भगवान् व्यासजीने अपने पैल आदि शिष्योंको इसका अध्ययन नहीं कराया, मुझे ही इसके योग्य अधिकारी समझा! एक तो मैं उनका पुत्र था और दूसरे शान्ति आदि गुण भी मुझमें विशेषरूपसे थे। शन्तनुके दूसरे पुत्र विचित्रवीर्यने काशिराजकी कन्या अम्बिका और अम्बालिकासे विवाह किया। उन दोनोंको भीष्मजी स्वयंवरसे बलपूर्वक ले आये थे। विचित्रवीर्य अपनी दोनों पत्नियोंमें इतना आसक्त हो गया कि उसे राजयक्ष्मा रोग हो गया और उसकी मृत्यु हो गयी ॥ २०—२४ ॥ माता सत्यवतीके कहनेसे भगवान् व्यासजीने अपने सन्तानहीन भाईकी स्त्रियोंसे धृतराष्ट्र और पाण्डु दो पुत्र उत्पन्न किये। उनकी दासीसे तीसरे पुत्र विदुरजी हुए ॥ २५ ॥

परीक्षित्! धृतराष्ट्रकी पत्नी थी गान्धारी। उसके गर्भसे सौ पुत्र हुए, उनमें सबसे बड़ा था दुर्योधन। कन्याका नाम था दुःशला ॥ २६ ॥ पाण्डुकी पत्नी थी कुन्ती। शापवश पाण्डु स्त्री-सहवास नहीं कर सकते थे। इसलिये उनकी पत्नी कुन्तीके गर्भसे धर्म, वायु और इन्द्रके द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन नामके तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ये तीनों-के-तीनों महारथी थे ॥ २७ ॥

पाण्डुकी दूसरी पत्नीका नाम था माद्री। दोनों अश्विनीकुमारोंके द्वारा उसके गर्भसे नकुल और सहदेवका जन्म हुआ। परीक्षित्! इन पाँच पाण्डवोंके द्वारा द्रौपदीके गर्भसे तुम्हारे पाँच चाचा उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥ इनमेंसे युधिष्ठिरके पुत्रका नाम था प्रतिविन्ध्य, भीमसेनका पुत्र था श्रुतसेन, अर्जुनका श्रुतकीर्ति, नकुलका शतानीक और सहदेवका श्रुतकर्मा। इनके सिवा युधिष्ठिरके पौरवी नामकी पत्नीसे देवक और भीमसेनके हिडिम्बासे घटोत्कच और कालीसे सर्वगत नामके पुत्र हुए। सहदेवके

---

१. सुतः। २. श्रुतकीर्तिस्तथाः।

* यह कन्या वास्तवमें उपरिचरवसुके वीर्यसे मछलीके गर्भसे उत्पन्न हुई थी, किन्तु दाशों (केवटों) के द्वारा पालित होनेसे वह केवटोंकी कन्या कहलायी।

भीमसेनाद्धिडिम्बायां काल्यां सर्वगतस्ततः ।
सहदेवात् सुहोत्रं तु विजयासूत पार्वती ॥ ३१

करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथार्जुनः ।
इरावन्तमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम् ।
मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥ ३२

तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत ।
सर्वातिरथजिद् वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥ ३३

परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा ।
त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽन्तकात् ॥ ३४

तवेमे तनयास्तात जनमेजयपूर्वकाः ।
श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३५

जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम् ।
सर्पान् वै सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषान्वितः ॥ ३६

कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट् ।
समन्तात् पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः ॥ ३७

तस्य पुत्रः शतानीको याज्ञवल्क्यात् त्रयीं पठन् ।
अस्त्रज्ञानं[1] क्रियाज्ञानं शौनकात् परमेष्यति ॥ ३८

सहस्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधजः ।
असीमकृष्णस्तस्यापि नेमिचक्रस्तु[2] तत्सुतः ॥ ३९

गजाह्वये हृते नद्या कौशाम्ब्यां साधु वत्स्यति ।
उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात् कविरथः[3] सुतः ॥ ४०

तस्माद्य वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः ।
सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्[4] सुखीनलः ॥ ४१

पर्वतकुमारी विजयासे सुहोत्र और नकुलके करेणुमतीसे निरमित्र हुआ। अर्जुनद्वारा नागकन्या उलूपीके गर्भसे इरावान् और मणिपूर नरेशकी कन्यासे बभ्रुवाहनका जन्म हुआ। बभ्रुवाहन अपने नानाका ही पुत्र माना गया। क्योंकि पहलेसे ही यह बात तय हो चुकी थी ॥ २९—३२ ॥ अर्जुनकी सुभद्रा नामकी पत्नीसे तुम्हारे पिता अभिमन्युका जन्म हुआ। वीर अभिमन्युने सभी अतिरथियोंको जीत लिया था। अभिमन्युके द्वारा उत्तराके गर्भसे तुम्हारा जन्म हुआ ॥ ३३ ॥ परीक्षित्! उस समय कुरुवंशका नाश हो चुका था। अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे तुम भी जल ही चुके थे, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रभावसे तुम्हें उस मृत्युसे जीता-जागता बचा लिया ॥ ३४ ॥

परीक्षित्! तुम्हारे पुत्र तो सामने ही बैठे हुए हैं—इनके नाम हैं—जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन। ये सब-के-सब बड़े पराक्रमी हैं ॥ ३५ ॥

जब तक्षकके काटनेसे तुम्हारी मृत्यु हो जायगी, तब इस बातको जानकर जनमेजय बहुत क्रोधित होगा और यह सर्प-यज्ञकी आगमें सर्पोंका हवन करेगा ॥ ३६ ॥ यह कावषेय तुरको पुरोहित बनाकर अश्वमेध यज्ञ करेगा और सब ओरसे सारी पृथ्वीपर विजय प्राप्त करके यज्ञोंके द्वारा भगवान्‌की आराधना करेगा ॥ ३७ ॥

जनमेजयका पुत्र होगा शतानीक। वह याज्ञवल्क्य ऋषिसे तीनों वेद और कर्मकाण्डकी तथा कृपाचार्यसे अस्त्रविद्याकी शिक्षा प्राप्त करेगा एवं शौनकजीसे आत्मज्ञानका सम्पादन करके परमात्माको प्राप्त होगा ॥ ३८ ॥ शतानीकका सहस्रानीक, सहस्रानीकका अश्वमेधज, अश्वमेधजका असीमकृष्ण और असीम-कृष्णका पुत्र होगा नेमिचक्र ॥ ३९ ॥ जब हस्तिनापुर गङ्गाजीमें बह जायगा, तब वह कौशाम्बीपुरीमें सुखपूर्वक निवास करेगा। नेमिचक्रका पुत्र होगा चित्ररथ, चित्ररथका कविरथ, कविरथका वृष्टिमान्, वृष्टिमान्‌का राजा सुषेण, सुषेणका सुनीथ, सुनीथका नृचक्षु, नृचक्षुका

१. ग्रामे। २. विचक्रस्तत्सुतस्ततः। ३. च्छविरथ०। ४. त्रिच०।

परिप्लवः सुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मजः ।
नृपञ्जयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति[1] ॥ ४२

तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः[2] सुदासजः ।
शतानीकाद् दुर्दमनस्तस्यापत्यं बहीनरः ॥ ४३

दण्डपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृपः ।
ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तो[3] वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥ ४४

क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ।
अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते ॥ ४५

भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः ।
ततोऽयुतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः ॥ ४६

सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद् बृहत्सेनोऽथ कर्मजित् ।
ततः सृतञ्जयाद् विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥ ४७

क्षेमोऽथ सुव्रतस्तस्माद् धर्मसूत्रः शमस्ततः[4] ।
द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः ॥ ४८

सुनीथः[5] सत्यजिदथ विश्वजिद् यद् रिपुञ्जयः ।
बार्हद्रथाश्च[6] भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥ ४९

सुखीनल, सुखीनलका परिप्लव, परिप्लवका सुनय, सुनयका मेधावी, मेधावीका नृपञ्जय, नृपञ्जयका दूर्व और दूर्वका पुत्र तिमि होगा ॥ ४०-४२ ॥ तिमिसे बृहद्रथ, बृहद्रथसे सुदास, सुदाससे शतानीक, शतानीकसे दुर्दमन, दुर्दमनसे बहीनर, बहीनरसे दण्डपाणि, दण्डपाणिसे निमि और निमिसे राजा क्षेमकका जन्म होगा। इस प्रकार मैंने तुम्हें ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनोंके उत्पत्तिस्थान सोमवंशका वर्णन सुनाया। बड़े-बड़े देवता और ऋषि इस वंशका सत्कार करते हैं ॥ ४३-४४ ॥ यह वंश कलियुगमें राजा क्षेमकके साथ ही समाप्त हो जायगा। अब मैं भविष्यमें होनेवाले मगध देशके राजाओंका वर्णन सुनाता हूँ ॥ ४५ ॥

जरासन्धके पुत्र सहदेवसे मार्जारि, मार्जारिसे श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवासे अयुतायु और अयुतायुसे निरमित्र नामक पुत्र होगा ॥ ४६ ॥ निरमित्रके सुनक्षत्र, सुनक्षत्रके बृहत्सेन, बृहत्सेनके कर्मजित्, कर्मजित्के सृतञ्जय, सृतञ्जयके विप्र और विप्रके पुत्रका नाम होगा शुचि ॥ ४७ ॥ शुचिसे क्षेम, क्षेमसे सुव्रत, सुव्रतसे धर्मसूत्र, धर्मसूत्रसे शम, शमसे द्युमत्सेन, द्युमत्सेनसे सुमति और सुमतिसे सुबलका जन्म होगा ॥ ४८ ॥ सुबलका सुनीथ, सुनीथका सत्यजित्, सत्यजित्का विश्वजित् और विश्वजित्का पुत्र रिपुञ्जय होगा। ये सब बृहद्रथवंशके राजा होंगे। इनका शासनकाल एक हजार वर्षके भीतर ही होगा ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
नवमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः[7] ॥ २२ ॥

१. हस्ती निमिस्त० । २. नि० । ३. योनिर्वंशो । ४. शमः सुतः । ५. तः । ६. थास्तु । ७. सोमवंशे द्वाविंशतितमो ।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु और यदुके वंशका वर्णन

श्रीशुक उवाच

अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्च त्रयः सुताः ।
सभानरात् कालनरः सृञ्जयस्तत्सुतस्ततः[1] ॥ १

जनमेजयस्तस्य पुत्रो महाशीलो महामनाः ।
उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ ॥ २

शिबिर्वनः[2] शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः ।
वृषादर्भः सुवीरश्च मद्रः कैकेय आत्मजाः[3] ॥ ३

शिबेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः ।
ततो हेमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोऽभवत् ॥ ४

अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्याः सुह्मपुण्ड्रान्ध्रसंज्ञिताः ।
जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ॥ ५

चक्रुः स्वनाम्ना विषयान् षडिमान् प्राच्यकांश्चते ।
खनपानोऽङ्गतो जज्ञे तस्माद् दिविरथस्ततः ॥ ६

सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजाः ।
रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥ ७

शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यशृङ्ग उवाह ताम् ।
देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ॥ ८

नाट्यसङ्गीतवादित्रैर्विभ्रमालिङ्गनार्हणैः ।
स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः ॥ ९

प्रजामदाद् दशरथो येन लेभेऽप्रजाः प्रजाः ।
चतुरङ्गो रोमपादात् पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ॥ १०

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! ययाति-नन्दन अनुके तीन पुत्र हुए—सभानर, चक्षु और परोक्ष। सभानरका कालनर, कालनरका सृञ्जय, सृञ्जयका जनमेजय, जनमेजयका महाशील, महाशीलका पुत्र हुआ महामना। महामनाके दो पुत्र हुए— उशीनर एवं तितिक्षु ॥ १-२ ॥ उशीनरके चार पुत्र थे—शिबि, वन, शमी और दक्ष। शिबिके चार पुत्र हुए—बृषादर्भ, सुवीर, मद्र और कैकेय। उशीनरके भाई तितिक्षुके रुशद्रथ, रुशद्रथके हेम, हेमके सुतपा और सुतपाके बलि नामक पुत्र हुआ ॥ ३-४ ॥

राजा बलिकी पत्नीके गर्भसे दीर्घतमा मुनिने छः पुत्र उत्पन्न किये—अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और अन्ध ॥ ५ ॥ इन लोगोंने अपने-अपने नामसे पूर्व दिशामें छः देश बसाये। अङ्गका पुत्र हुआ खनपान, खनपानका दिविरथ, दिविरथका धर्मरथ और धर्मरथका चित्ररथ। यह चित्ररथ ही रोमपादके नामसे प्रसिद्ध था। इसके मित्र थे अयोध्याधिपति महाराज दशरथ। रोमपादको कोई सन्तान न थी। इसलिये दशरथने उन्हें अपनी शान्ता नामकी कन्या गोद दे दी। शान्ताका विवाह ऋष्यशृङ्ग मुनिसे हुआ। ऋष्यशृङ्ग विभाण्डक ऋषिके द्वारा हरिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। एक बार राजा रोमपादके राज्यमें बहुत दिनोंतक वर्षा नहीं हुई। तब गणिकाएँ अपने नृत्य, संगीत, वाद्य, हाव-भाव, आलिङ्गन और विविध उपहारोंसे मोहित करके ऋष्यशृङ्गको वहाँ ले आयीं। उनके आते ही वर्षा हो गयी। उन्होंने ही इन्द्र देवताका यज्ञ कराया, तब सन्तानहीन राजा रोमपादको भी पुत्र हुआ और पुत्रहीन दशरथने भी उन्हींके प्रयत्नसे चार पुत्र प्राप्त किये। रोमपादका पुत्र हुआ चतुरङ्ग और चतुरङ्गका पृथुलाक्ष ॥ ६-१० ॥

---

१. तत्सुतः सृञ्जयस्ततः । २. सृष्टिर्वेनः क्षमिर्दक्षः । ३. आत्मवान् ।

बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुताः ।
आद्याद् बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः ॥ ११

विजयस्तस्य सम्भूत्यां ततो धृतिरजायत ।
ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माधिरथस्ततः ॥ १२

योऽसौ गङ्गातटे क्रीडन् मञ्जूषान्तर्गतं शिशुम् ।
कुन्त्यापविद्धं कानीनमनपत्योऽकरोत् सुतम् ॥ १३

वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपतेः ।
द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः ॥ १४

आरब्धस्तस्य गान्धारस्तस्य धर्मस्ततो धृतः ।
धृतस्य दुर्मनास्तस्मात् प्रचेताः प्राचेतसं शतम्[1] ॥ १५

म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः ।
तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान्[2] ॥ १६

त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्यापि करन्धम उदारधीः ।
मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत् ॥ १७

दुष्यन्तः स पुनर्भेजे स्वं वंशं राज्यकामुकः ।
ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ॥ १८

वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ।
यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १९

यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा नराकृतिः ।
यदोः सहस्रजित्क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः ॥ २०

चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित्[3] प्रथमात्मजः ।
महाहयो वेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः ॥ २१

पृथुलाक्षके बृहद्रथ, बृहत्कर्मा और बृहद्भानु—तीन पुत्र हुए। बृहद्रथका पुत्र हुआ बृहन्मना और बृहन्मनाका जयद्रथ ॥ ११ ॥ जयद्रथकी पत्नीका नाम था सम्भूति। उसके गर्भसे विजयका जन्म हुआ। विजयका धृति, धृतिका धृतव्रत, धृतव्रतका सत्कर्मा और सत्कर्माका पुत्र था अधिरथ ॥ १२ ॥

अधिरथको कोई सन्तान न थी। किसी दिन वह गङ्गातटपर क्रीडा कर रहा था कि देखा एक पिटारीमें नन्हा-सा शिशु बहा चला जा रहा है। वह बालक कर्ण था, जिसे कुन्तीने कन्यावस्थामें उत्पन्न होनेके कारण उस प्रकार बहा दिया था। अधिरथने उसीको अपना पुत्र बना लिया ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! राजा कर्णके पुत्रका नाम था वृषसेन। ययातिके पुत्र द्रुह्युसे बभ्रुका जन्म हुआ। बभ्रुका सेतु, सेतुका आरब्ध, आरब्धका गान्धार, गान्धारका धर्म, धर्मका धृत, धृतका दुर्मना और दुर्मनाका पुत्र प्रचेता हुआ। प्रचेताके सौ पुत्र हुए, ये उत्तर दिशामें म्लेच्छोंके राजा हुए। ययातिके पुत्र तुर्वसुका वह्नि, वह्निका भर्ग, भर्गका भानुमान्, भानुमान्का त्रिभानु, त्रिभानुका उदारबुद्धि करन्धम और करन्धमका पुत्र हुआ मरुत। मरुत सन्तानहीन था। इसलिये उसने पूरुवंशी दुष्यन्तको अपना पुत्र बनाकर रखा था ॥ १४—१७ ॥ परन्तु दुष्यन्त राज्यकी कामनासे अपने ही वंशमें लौट गये। परीक्षित् ! अब मैं राजा ययातिके बड़े पुत्र यदुके वंशका वर्णन करता हूँ ॥ १८ ॥

परीक्षित् ! महाराज यदुका वंश परम पवित्र और मनुष्योंके समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है। जो मनुष्य इसका श्रवण करेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा ॥ १९ ॥ इस वंशमें स्वयं भगवान् परब्रह्म श्रीकृष्णने मनुष्यके-से रूपमें अवतार लिया था। यदुके चार पुत्र थे—सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल और रिपु। सहस्रजित्से शतजित्का जन्म हुआ। शतजित्के तीन पुत्र थे—महाहय, वेणुहय और हैहय ॥ २०-२१ ॥

---

१. सुतम् । २. वह्निमान् । ३. सत्यजित्तत्सु० ।

धर्मस्तु[1] हैहयसुतो नेत्रः कुन्तेः[2] पिता ततः ।
सोहञ्जिरभवत् कुन्तेर्महिष्मान् भद्रसेनकः ॥ २२

दुर्मदो[3] भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः ।
कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः ॥ २३

अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ।
दत्तात्रेयाद्धरेरंशात् प्राप्तयोगमहागुणः ॥ २४

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ।
यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः[4] ॥ २५

पञ्चाशीतिसहस्राणि ह्यव्याहतबलः समाः ।
अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु ॥ २६

तस्य पुत्रसहस्रेषु[5] पञ्चैवोर्वरिता मृधे ।
जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः ॥ २७

जयध्वजात् तालजङ्घस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ।
क्षत्रं[6] यत् तालजङ्घाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम्[7] ॥ २८

तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीद् वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम् ॥ २९

माधवा वृष्णयो राजन् यादवाश्चेति संज्ञिताः ।
यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोः पुत्रो वृजिनवांस्ततः ॥ ३०

श्वाहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः ।
शशबिन्दुर्महायोगी महाभोजो महानभूत् ॥ ३१

चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजितः ।
तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥ ३२

हैहयका धर्म, धर्मका नेत्र, नेत्रका कुन्ति, कुन्तिका सोहंजि, सोहंजिका महिष्मान् और महिष्मान्का पुत्र भद्रसेन हुआ ॥ २२ ॥ भद्रसेनके दो पुत्र थे—दुर्मद और धनक। धनकके चार पुत्र हुए— कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा ॥ २३ ॥ कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन था। वह सातों द्वीपका एकछत्र सम्राट् था। उसने भगवान्के अंशावतार श्रीदत्तात्रेयजीसे योगविद्या और अणिमा-लघिमा आदि बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं ॥ २४ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि संसारका कोई भी सम्राट् यज्ञ, दान, तपस्या, योग, शास्त्रज्ञान, पराक्रम और विजय आदि गुणोंमें कार्तवीर्य अर्जुनकी बराबरी नहीं कर सकेगा ॥ २५ ॥ सहस्रबाहु अर्जुन पचासी हजार वर्षतक छहों इन्द्रियोंसे अक्षय विषयोंका भोग करता रहा। इस बीचमें न तो उसके शरीरका बल ही क्षीण हुआ और न तो कभी उसने यही स्मरण किया कि मेरे धनका नाश हो जायगा। उसके धनके नाशकी तो बात ही क्या है, उसका ऐसा प्रभाव था कि उसके स्मरणसे दूसरोंका खोया हुआ धन भी मिल जाता था ॥ २६ ॥ उसके हजारों पुत्रोंमेंसे केवल पाँच ही जीवित रहे। शेष सब परशुरामजीकी क्रोधाग्निमें भस्म हो गये। बचे हुए पुत्रोंके नाम थे—जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और ऊर्जित ॥ २७ ॥

जयध्वजके पुत्रका नाम था तालजङ्घ। तालजङ्घके सौ पुत्र हुए। वे 'तालजङ्घ' नामक क्षत्रिय कहलाये। महर्षि और्वकी शक्तिसे राजा सगरने उनका संहार कर डाला ॥ २८ ॥ उन सौ पुत्रोंमें सबसे बड़ा था वीतिहोत्र। वीतिहोत्रका पुत्र मधु हुआ। मधुके सौ पुत्र थे। उनमें सबसे बड़ा था वृष्णि ॥ २९ ॥ परीक्षित्! इन्हीं मधु, वृष्णि और यदुके कारण यह वंश माधव, वार्ष्णेय और यादवके नामसे प्रसिद्ध हुआ। यदुनन्दन क्रोष्टुके पुत्रका नाम था वृजिनवान् ॥ ३० ॥ वृजिनवान्का पुत्र श्वाहि, श्वाहिका रुशेकु, रुशेकुका चित्ररथ और चित्ररथके पुत्रका नाम था शशबिन्दु। वह परम योगी, महान् भोगैश्वर्यसम्पन्न और अत्यन्त पराक्रमी था ॥ ३१ ॥ वह चौदह रत्नों * का स्वामी, चक्रवर्ती और युद्धमें अजेय था। परम यशस्वी शशबिन्दुके दस हजार पत्नियाँ थीं। उनमेंसे एक-एकके लाख-लाख सन्तान हुई थीं। इस प्रकार उसके सौ

---

१. मंश्च। २. कुन्तेस्ततः पिता। ३. दुर्दमो। ४. योगैः श्रुत०। ५. स्वस्य। ६. क्षात्रं। ७. वंशापोष०।

* चौदह रत्न ये हैं—हाथी, घोड़ा, रथ, स्त्री, बाण, खजाना, माला, वस्त्र, वृक्ष, शक्ति, पाश, मणि,, छत्र और विमान।

दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत् ।
तेषां तु षट्प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः ॥ ३३

धर्मो नामोशना तस्य हयमेधशतस्य याट् ।
तत्सुतो रुचकस्तस्य पञ्चासन्नात्मजाः शृणु ॥ ३४

पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्यामघसंज्ञिताः ।
ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् ॥ ३५

नाविन्दच्छत्रुभवनाद्[1] भोज्यां कन्यामहारषीत् ।
रथस्थां तां निरीक्ष्याह शैब्या पतिममर्षिता ॥ ३६

केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै ।
स्नुषा तवेत्यभिहिते स्मयन्ती पतिमब्रवीत् ॥ ३७

अहं वन्ध्यासपत्नी च स्नुषा मे[2] युज्यते कथम् ।
जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥ ३८

अन्वमोदन्त[3] तद्विश्वेदेवाः पितर एव च ।
शैब्या गर्भमधात् काले कुमारं सुषुवे शुभम् ।
स विदर्भ इति प्रोक्त उपयेमे स्नुषां सतीम् ॥ ३९

करोड़—एक अरब सन्तानें उत्पन्न हुईं। उनमें पृथुश्रवा आदि छः पुत्र प्रधान थे। पृथुश्रवाके पुत्रका नाम था धर्म। धर्मका पुत्र उशना हुआ। उसने सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। उशनाका पुत्र हुआ रुचक। रुचकके पाँच पुत्र हुए, उनके नाम सुनो ॥ ३२—३४ ॥ पुरुजित्, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु और ज्यामघ। ज्यामघकी पत्नीका नाम था शैब्या। ज्यामघके बहुत दिनोंतक कोई सन्तान न हुई। परन्तु उसने अपनी पत्नीके भयसे दूसरा विवाह नहीं किया। एक बार वह अपने शत्रुके घरसे भोज्या नामकी कन्या हर लाया। जब शैब्याने पतिके रथपर उस कन्याको देखा, तब वह चिढ़कर अपने पतिसे बोली—'कपटी! मेरे बैठनेकी जगहपर आज किसे बैठाकर लिये आ रहे हो?' ज्यामघने कहा—'यह तो तुम्हारी पुत्रवधू है।' शैब्याने मुसकराकर अपने पतिसे कहा ॥ ३५—३७ ॥

'मैं तो जन्मसे ही बाँझ हूँ और मेरी कोई सौत भी नहीं है। फिर यह मेरी पुत्रवधू कैसे हो सकती है?' ज्यामघने कहा—'रानी! तुमको जो पुत्र होगा, उसकी यह पत्नी बनेगी' ॥ ३८ ॥ राजा ज्यामघके इस वचनका विश्वेदेव और पितरोंने अनुमोदन किया। फिर क्या था, समयपर शैब्याको गर्भ रहा और उसने बड़ा ही सुन्दर बालक उत्पन्न किया। उसका नाम हुआ विदर्भ। उसीने शैब्याकी साध्वी पुत्रवधू भोज्यासे विवाह किया ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे
यदुवंशानुवर्णने[4] त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

विदर्भके वंशका वर्णन

श्रीशुक उवाच

तस्यां विदर्भोऽजनयत् पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ।
तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम् ॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजा विदर्भकी भोज्या नामक पत्नीसे तीन पुत्र हुए—कुश, क्रथ और रोमपाद। रोमपाद विदर्भवंशमें बहुत ही श्रेष्ठ पुरुष हुए ॥ १ ॥

१. नाद्रव्यां। २. युज्येत मे कथम्। ३. प्रत्यमोदन्त। ४. नुकथने।

रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत ।
उशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृप ॥ २

रोमपादका पुत्र बभ्रु, बभ्रुका कृति, कृतिका उशिक और उशिकका चेदि। राजन्! इस चेदिके वंशमें ही दमघोष एवं शिशुपाल आदि हुए ॥ २ ॥

क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद् धृष्टिस्तस्याथ निर्वृतिः ।
ततो दशार्हो नाम्नाभूत् तस्य व्योमः सुतस्ततः ॥ ३

क्रथका पुत्र हुआ कुन्ति, कुन्तिका धृष्टि, धृष्टिका निर्वृति, निर्वृतिका दशार्ह और दशार्हका व्योम ॥ ३ ॥

जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः ।
ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥ ४

व्योमका जीमूत, जीमूतका विकृति, विकृतिका भीमरथ, भीमरथका नवरथ और नवरथका दशरथ हुआ ॥ ४ ॥

करम्भिः शकुनेः पुत्रो देवरातस्तदात्मजः ।
देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः[1] ॥ ५

दशरथसे शकुनि, शकुनिसे करम्भि, करम्भिसे देवरात, देवरातसे देवक्षत्र, देवक्षत्रसे मधु, मधुसे कुरुवश और कुरुवशसे अनु हुए ॥ ५ ॥

पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः ।
भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः ॥ ६

अनुसे पुरुहोत्र, पुरुहोत्रसे आयु और आयुसे सात्वतका जन्म हुआ। परीक्षित्! सात्वतके सात पुत्र हुए—भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक और महाभोज। भजमानकी दो पत्नियाँ थीं एकसे तीन पुत्र हुए—निम्लोचि, किङ्किण और धृष्टि। दूसरी पत्नीसे भी तीन पुत्र हुए—शताजित्, सहस्राजित् और अयुताजित् ॥ ६—८ ॥

सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष ।
भजमानस्य निम्लोचिः[2] किङ्किणो धृष्टिरेव च ॥ ७

एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः ।
शताजिच्च सहस्राजिदयुताजिदिति प्रभो ॥ ८

बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यमू ।
यथैव[3] शृणुमो दूरात् सम्पश्यामस्तथान्तिकात् ॥ ९

देवावृधके पुत्रका नाम था बभ्रु। देवावृध और बभ्रुके सम्बन्धमें यह बात कही जाती है—'हमने दूरसे जैसा सुन रखा था, अब वैसा ही निकटसे देखते भी हैं ॥ ९ ॥

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।
पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च षट् सहस्राणि चाष्ट च ॥ १०

बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ है और देवावृध देवताओंके समान है। इसका कारण यह है कि बभ्रु और देवावृधसे उपदेश लेकर चौदह हजार पैंसठ मनुष्य परम पदको प्राप्त कर चुके हैं।' सात्वतके पुत्रोंमें महाभोज भी बड़ा धर्मात्मा था। उसीके वंशमें भोजवंशी यादव हुए ॥ १०-११ ॥

येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ।
महाभोजोऽपि[4] धर्मात्मा भोजा[5] आसंस्तदन्वये ॥ ११

वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद् युधाजिच्च परंतप ।
शिनिस्तस्यानमित्रश्च निम्नोऽभूदनमित्रतः ॥ १२

परीक्षित्! वृष्णिके दो पुत्र हुए—सुमित्र और युधाजित्। युधाजित्के शिनि और अनमित्र—ये दो पुत्र थे। अनमित्रसे निम्नका जन्म हुआ ॥ १२ ॥

---

१. शस्ततः । २. विम्बोविः । ३. यथा च । ४. जोऽतिधर्मा° । ५. जाश्चासं° ।

सत्राजितः प्रसेनश्च निम्नस्याप्यासतुः सुतौ ।
अनमित्रसुतो योऽन्यः शिनिस्तस्याथ सत्यकः ॥ १३

सत्राजित् और प्रसेन नामसे प्रसिद्ध यदुवंशी निम्नके ही पुत्र थे। अनमित्रका एक और पुत्र था, जिसका नाम था शिनि। शिनिसे ही सत्यकका जन्म हुआ ॥ १३ ॥

युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणिस्ततः ।
युगन्धरोऽनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रोऽपरस्ततः ॥ १४

इसी सत्यकके पुत्र युयुधान थे, जो सात्यकिके नामसे प्रसिद्ध हुए। सात्यकिका जय, जयका कुणि और कुणिका पुत्र युगन्धर हुआ। अनमित्रके तीसरे पुत्रका नाम वृष्णि था। वृष्णिके दो पुत्र हुए—श्वफल्क और चित्ररथ। श्वफल्ककी पत्नीका नाम था गान्दिनी। उनमें सबसे श्रेष्ठ

श्वफल्कश्चित्ररथश्च गान्दिन्यां च श्वफल्कतः ।
अक्रूरप्रमुखा[1] आसन् पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥ १५

आसङ्गः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद् गिरिः ।
धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः ॥ १६

शत्रुघ्नो गन्धमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश ।
तेषां स्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥ १७

देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः ।
पृथुर्विदूरथाद्याश्च[2] बहवो वृष्णिनन्दनाः ॥ १८

अक्रूरके अतिरिक्त बारह पुत्र उत्पन्न हुए—आसङ्ग, सारमेय, मृदुर, मृदुविद्, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गन्धमादन और प्रतिबाहु। इनके एक बहिन भी थी, जिसका नाम था सुचीरा। अक्रूरके दो पुत्र थे—देववान् और उपदेव। श्वफल्कके भाई चित्ररथके पृथु, विदूरथ आदि बहुत-से पुत्र हुए—जो वृष्णिवंशियोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥ १४-१८ ॥

कुकुरो भजमानश्च शुचिः कम्बलबर्हिषः ।
कुकुरस्य सुतो वह्निर्विलोमा[3] तनयस्ततः ॥ १९

सात्वतके पुत्र अन्धकके चार पुत्र हुए—कुकुर, भजमान, शुचि और कम्बलबर्हि। उनमें कुकुरका पुत्र वह्नि, वह्निका विलोमा, विलोमाका कपोतरोमा और कपोतरोमाका अनु हुआ। तुम्बुरु गन्धर्वके साथ अनुकी बड़ी मित्रता थी। अनुका पुत्र अन्धक, अन्धकका दुन्दुभि, दुन्दुभिका अरिद्योत, अरिद्योतका पुनर्वसु और पुनर्वसुके

कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च[4] तुम्बुरुः ।
अन्धको दुन्दुभिस्तस्मादरिद्योतः पुनर्वसुः ॥ २०

तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या[5] चैवाहुकात्मजौ ।
देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥ २१

आहुक नामका एक पुत्र तथा आहुकी नामकी एक कन्या हुई। आहुकके दो पुत्र हुए—देवक और उग्रसेन। देवकके चार पुत्र हुए ॥ १९-२१ ॥

देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः ।
तेषां स्वसारः सप्तासन् धृतदेवादयो[6] नृप ॥ २२

शान्तिदेवोपदेवा[7] च श्रीदेवा देवरक्षिता ।
सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥ २३

देववान्, उपदेव, सुदेव और देववर्धन। इनकी सात बहिनें भी थीं—धृत, देवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी। वसुदेवजीने इन सबके साथ विवाह किया था ॥ २२-२३ ॥

---

१. खाद्यासन्० । २. र्विपृथुधन्याद्याः । ३. धृष्टि० । ४. तु । ५. द्वावा० । ६. वीत० । ७. देवी च श्रीदेवी ।

कंसः सुनामा न्यग्रोधः कङ्कः शङ्कुः सुहूस्तथा ।
राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः[1] ॥ २४

कंसा कंसवती कङ्का शूरभू राष्ट्रपालिका ।
उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥ २५

शूरो विदूरथादासीद् भजमानः सुतस्ततः ।
शिनिस्तस्मात् स्वयम्भोजो[2] हृदीकस्तत्सुतो मतः ॥ २६

देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति[3] तत्सुताः ।
देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥ २७

तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् ।
वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम् ॥ २८

सृञ्जयं श्यामकं कङ्कं शमीकं वत्सकं वृकम् ।
देवदुन्दुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि ॥ २९

वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुन्दुभिम् ।
पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥ ३०

राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पञ्च कन्यकाः ।
कुन्तेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात् ॥ ३१

साऽऽप दुर्वाससो विद्यां देवहूतीं प्रतोषितात् ।
तस्या[4] वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम् ॥ ३२

तदैवोपागतं[5] देवं वीक्ष्य विस्मितमानसा ।
प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि[6] देव क्षमस्व मे ॥ ३३

अमोघं दर्शनं[7] देवि आधित्से त्वयि चात्मजम् ।
योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताहं ते सुमध्यमे ॥ ३४

उग्रसेनके नौ लड़के थे—कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कङ्क, शङ्कु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान्॥ २४॥ उग्रसेनके पाँच कन्याएँ भी थीं—कंसा, कंसवती, कङ्का, शूरभू और राष्ट्रपालिका। इनका विवाह देवभाग आदि वसुदेवजीके छोटे भाइयोंसे हुआ था॥ २५॥

चित्ररथके पुत्र विदूरथसे शूर, शूरसे भजमान, भजमानसे शिनि, शिनिसे स्वयम्भोज और स्वयम्भोजसे हृदीक हुए॥ २६॥ हृदीकसे तीन पुत्र हुए—देवबाहु, शतधन्वा और कृतवर्मा। देवमीढके पुत्र शूरकी पत्नीका नाम था मारिषा॥ २७॥ उन्होंने उसके गर्भसे दस निष्पाप पुत्र उत्पन्न किये—वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कङ्क, शमीक, वत्सक और वृक। ये सब-के-सब बड़े पुण्यात्मा थे। वसुदेवजीके जन्मके समय देवताओंके नगारे और नौबत स्वयं ही बजने लगे थे। अतः वे 'आनकदुन्दुभि' भी कहलाये। वे ही भगवान् श्रीकृष्णके पिता हुए। वसुदेव आदिकी पाँच बहनें भी थीं—पृथा (कुन्ती), श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी। वसुदेवके पिता शूरसेनके एक मित्र थे—कुन्तिभोज। कुन्तिभोजके कोई सन्तान न थी। इसलिये शूरसेनने उन्हें पृथा नामकी अपनी सबसे बड़ी कन्या गोद दे दी॥ २८—३१॥

पृथाने दुर्वासा ऋषिको प्रसन्न करके उनसे देवताओंको बुलानेकी विद्या सीख ली। एक दिन उस विद्याके प्रभावकी परीक्षा लेनेके लिये पृथाने परम पवित्र भगवान् सूर्यका आवाहन किया॥ ३२॥ उसी समय भगवान् सूर्य वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर कुन्तीका हृदय विस्मयसे भर गया। उसने कहा—'भगवन्! मुझे क्षमा कीजिये। मैंने तो परीक्षा करनेके लिये ही इस विद्याका प्रयोग किया था। अब आप पधार सकते हैं'॥ ३३॥ सूर्यदेवने कहा—'देवि! मेरा दर्शन निष्फल नहीं हो सकता। इसलिये हे सुन्दरी! अब मैं तुझसे एक पुत्र उत्पन्न करना चाहता हूँ। हाँ, अवश्य ही तुम्हारी योनि दूषित न हो, इसका उपाय मैं कर दूँगा'॥ ३४॥

---

१. नुग्रसेनजाः। २. त्सुतोऽजोऽभूद् हृदी०। ३. धर्मे०। ४. तया। ५. प०। ६. आदिदेव क्षम०। ७. देवसंकाशमाधास्ये त्व०।

इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः ।
सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥ ३५

यह कहकर भगवान् सूर्यने गर्भ स्थापित कर दिया और इसके बाद वे स्वर्ग चले गये। उसी समय उससे एक बड़ा सुन्दर एवं तेजस्वी शिशु उत्पन्न हुआ। वह देखनेमें दूसरे सूर्यके समान जान पड़ता था ॥ ३५ ॥

तं सात्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती ।
प्रपितामहस्तामुवाह पाण्डुर्वै सत्यविक्रमः ॥ ३६

पृथा लोकनिन्दासे डर गयी। इसलिये उसने बड़े दुःखसे उस बालकको नदीके जलमें छोड़ दिया। परीक्षित्! उसी पृथाका विवाह तुम्हारे परदादा पाण्डुसे हुआ था, जो वास्तवमें बड़े सच्चे वीर थे ॥ ३६ ॥

श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् ।
यस्यामभूद् दन्तवक्त्र ऋषिशप्तो[1] दितेः सुतः ॥ ३७

परीक्षित्! पृथाकी छोटी बहिन श्रुतदेवाका विवाह करूष देशके अधिपति वृद्धशर्मासे हुआ था। उसके गर्भसे दन्तवक्त्रका जन्म हुआ। यह वही दन्तवक्त्र है, जो पूर्वजन्ममें सनकादि ऋषियोंके शापसे हिरण्याक्ष हुआ था ॥ ३७ ॥

कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविन्दत ।
सन्तर्दनादयस्तस्य पञ्चासन् कैकयाः सुताः ॥ ३८

केकय देशके राजा धृष्टकेतुने श्रुतकीर्तिसे विवाह किया था। उससे सन्तर्दन आदि पाँच कैकय राजकुमार हुए ॥ ३८ ॥

राजाधिदेव्यामावन्त्यौ जयसेनोऽजनिष्ट[2] ह ।
दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत् ॥ ३९

राजाधिदेवीका विवाह जयसेनसे हुआ था। उसके दो पुत्र हुए—विन्द और अनुविन्द। वे दोनों ही अवन्तीके राजा हुए। चेदिराज दमघोषने श्रुतश्रवाका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥

शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य सम्भवः ।
देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ ॥ ४०

उसका पुत्र था शिशुपाल, जिसका वर्णन मैं पहले (सप्तम स्कन्धमें) कर चुका हूँ। वसुदेवजीके भाइयोंमेंसे देवभागकी पत्नी कंसाके गर्भसे दो पुत्र हुए—चित्रकेतु और—बृहद्बल ॥ ४० ॥

कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा ।
कङ्कायामानकाज्जातः सत्यजित् पुरुजित् तथा ॥ ४१

देवश्रवाकी पत्नी कंसवतीसे सुवीर और इषुमान् नामके दो पुत्र हुए। आनककी पत्नी कङ्काके गर्भसे भी दो पुत्र हुए—सत्यजित् और पुरुजित् ॥ ४१ ॥

सृञ्जयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान् ।
हरिकेशहिरण्याक्षौ श्यामकः शूरभूम्यां च ॥ ४२

सृञ्जयने अपनी पत्नी राष्ट्रपालिकाके गर्भसे वृष और दुर्मर्षण आदि कई पुत्र उत्पन्न किये। इसी प्रकार श्यामकने शूरभूमि (शूरभू) नामकी पत्नीसे हरिकेश और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४२ ॥

मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन् वत्सकस्तथा ।
तक्षपुष्करशालादीन् दुर्वाक्ष्यां वृक आदधे ॥ ४३

मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे वत्सकके भी वृक आदि कई पुत्र हुए। वृकने दुर्वाक्षीके गर्भसे तक्ष, पुष्कर और शाल आदि कई पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४३ ॥

सुमित्रार्जुनपालादीञ्छमीकात्तु सुदामिनी ।
कङ्कश्च कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि ॥ ४४

शमीककी पत्नी सुदामिनीने भी सुमित्र और अर्जुनपाल आदि कई बालक उत्पन्न किये। कङ्ककी पत्नी कर्णिकाके गर्भसे दो पुत्र हुए—ऋतधाम और जय ॥ ४४ ॥

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला ।
देवकीप्रमुखा आसन् पत्न्य आनकदुन्दुभेः ॥ ४५

आनकदुन्दुभि वसुदेवजीकी पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी आदि बहुत-सी पत्नियाँ थीं ॥ ४५ ॥

बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम् ।
वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत् ॥ ४६

रोहिणीके गर्भसे वसुदेवजीके बलराम, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृत आदि पुत्र हुए थे ॥ ४६ ॥

---

१. इतिशब्दो दि० । २. जयत्सेनो ।

सुभद्रो भद्रवाहश्च दुर्मदो भद्र एव च ।
पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाभवन् ॥ ४७

नन्दोपनन्दकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः ।
कौसल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनन्दनम् ॥ ४८

रोचनायामतो जाता हस्तहेमाङ्गदादयः ।
इलायामुरुवल्कादीन् यदुमुख्यानजीजनत् ॥ ४९

विपृष्ठो धृतदेवायामेक आनकदुन्दुभेः ।
शान्तिदेवात्मजा राजञ्छमप्रतिश्रुतादयः ॥ ५०

राजानः कल्पवर्षाद्या उपदेवासुता दश ।
वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट् सुताः ॥ ५१

देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः ।
वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥ ५२

पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद् धर्मो वसूनिव ।
वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् ॥ ५३

कीर्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः ।
ऋजुं सम्मर्दनं भद्रं संकर्षणमहीश्वरम् ॥ ५४

अष्टमस्तु तयोरासीत् स्वयमेव हरिः किल ।
सुभद्रा च महाभागा तव राजन् पितामही ॥ ५५

यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥ ५६

न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ।
आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥ ५७

यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि ।
अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ ५८

अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनैः ।
भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥ ५९

कर्माण्यपरिमेयाणि मनसापि सुरैश्वरैः ।
सहसंकर्षणश्चक्रे भगवान् मधुसूदनः ॥ ६०

पौरवीके गर्भसे उनके बारह पुत्र हुए—भूत, सुभ्रद, भद्रवाह, दुर्मद और भद्र आदि ॥ ४७ ॥ नन्द, उपनन्द, कृतक, शूर आदि मदिराके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। कौसल्याने एक ही वंश-उजागर पुत्र उत्पन्न किया था। उसका नाम था केशी ॥ ४८ ॥ उसने रोचनासे हस्त और हेमाङ्गद आदि तथा इलासे उरुवल्क आदि प्रधान यदुवंशी पुत्रोंको जन्म दिया ॥ ४९ ॥ परीक्षित्! वसुदेवजीके धृतदेवाके गर्भसे विपृष्ठ नामका एक ही पुत्र हुआ और शान्तिदेवासे श्रम और प्रतिश्रुत आदि कई पुत्र हुए ॥ ५० ॥ उपदेवाके पुत्र कल्पवर्ष आदि दस राजा हुए और श्रीदेवाके वसु, हंस, सुवंश आदि छः पुत्र हुए ॥ ५१ ॥ देवरक्षिताके गर्भसे गद आदि नौ पुत्र हुए तथा जैसे स्वयं धर्मने आठ वसुओंको उत्पन्न किया था, वैसे ही वसुदेवजीने सहदेवाके गर्भसे पुरुविश्रुत आदि आठ पुत्र उत्पन्न किये। परम उदार वसुदेवजीने देवकीके गर्भसे भी आठ पुत्र उत्पन्न किये, जिनमें सातके नाम हैं—कीर्तिमान्, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, संमर्दन, भद्र और शेषावतार श्रीबलरामजी ॥ ५२—५४ ॥ उन दोनोंके आठवें पुत्र स्वयं श्रीभगवान् ही थे। परीक्षित्! तुम्हारी परम सौभाग्यवती दादी सुभद्रा भी देवकीजीकी ही कन्या थीं ॥ ५५ ॥

जब-जब संसारमें धर्मका ह्रास और पापकी वृद्धि होती है, तब-तब सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि अवतार ग्रहण करते हैं ॥ ५६ ॥ परीक्षित्! भगवान् सबके द्रष्टा और वास्तवमें असङ्ग आत्मा ही हैं। इसलिये उनकी आत्मस्वरूपिणी योगमायाके अतिरिक्त उनके जन्म अथवा कर्मका और कोई भी कारण नहीं है ॥ ५७ ॥ उनकी मायाका विलास ही जीवके जन्म, जीवन और मृत्युका कारण है। और उनका अनुग्रह ही मायाको अलग करके आत्मस्वरूपको प्राप्त करानेवाला है ॥ ५८ ॥ जब असुरोंने राजाओंका वेष धारण कर लिया और कई अक्षौहिणी सेना इकट्ठी करके वे सारी पृथ्वीको रौंदने लगे, तब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भगवान् मधुसूदन बलरामजीके साथ अवतीर्ण हुए। उन्होंने ऐसी-ऐसी लीलाएँ कीं, जिनके सम्बन्धमें बड़े-बड़े देवता मनसे अनुमान भी नहीं कर सकते—शरीरसे करनेकी बात तो अलग रही ॥ ५९-६० ॥

कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् ।
अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद् यशः ॥ ६१

पृथ्वीका भार तो उतरा ही, साथ ही कलियुगमें पैदा होनेवाले भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये भगवान्‌ने ऐसे परम पवित्र यशका विस्तार किया, जिसका गान और श्रवण करनेसे ही उनके दुःख, शोक और अज्ञान सब-के-सब नष्ट हो जायँगे ॥ ६१ ॥ उनका यश क्या है, लोगोंको पवित्र करनेवाला श्रेष्ठ तीर्थ है। संतोंके कानोंके लिये तो वह साक्षात् अमृत ही है। एक बार भी यदि कानकी अञ्जलियोंसे उसका आचमन कर लिया जाता है, तो कर्मकी वासनाएँ निर्मूल हो जाती हैं ॥ ६२ ॥ परीक्षित् ! भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन, दशार्ह, कुरु, सृञ्जय और पाण्डुवंशी वीर निरन्तर भगवान्‌की लीलाओंकी आदरपूर्वक सराहना करते रहते थे ॥ ६३ ॥ उनका श्यामल शरीर सर्वाङ्गसुन्दर था। उन्होंने उस मनोरम विग्रहसे तथा अपनी प्रेमभरी मुसकान, मधुर चितवन, प्रसादपूर्ण वचन और पराक्रमपूर्ण लीलाके द्वारा सारे मनुष्यलोकको आनन्दमें सराबोर कर दिया था ॥ ६४ ॥ भगवान्‌के मुखकमलकी शोभा तो निराली ही थी। मकराकृति कुण्डलोंसे उनके कान बड़े कमनीय मालूम पड़ते थे। उनकी आभासे कपोलोंका सौन्दर्य और भी खिल उठता था। जब वे विलासके साथ हँस देते, तो उनके मुखपर निरन्तर रहनेवाले आनन्दमें मानो बाढ़-सी आ जाती। सभी नर-नारी अपने नेत्रोंके प्यालोंसे उनके मुखकी माधुरीका निरन्तर पान करते रहते, परन्तु तृप्त नहीं होते। वे उसका रस ले-लेकर आनन्दित तो होते ही, परन्तु पलकके गिरनेसे उनके गिरानेवाले निमिपर खीझते भी ॥ ६५ ॥ लीलापुरुषोत्तम भगवान् अवतीर्ण हुए मथुरामें वसुदेवजीके घर, परन्तु वहाँ रहे नहीं, वहाँसे गोकुलमें नन्दबाबाके घर चले गये। वहाँ अपना प्रयोजन—जो ग्वाल, गोपी और गौओंको सुखी करना था—पूरा करके मथुरा लौट आये। व्रजमें, मथुरामें तथा द्वारकामें रहकर अनेकों शत्रुओंका संहार किया। बहुत-सी स्त्रियोंसे विवाह करके हजारों पुत्र उत्पन्न किये। साथ ही लोगोंमें अपने स्वरूपका साक्षात्कार करानेवाली अपनी वाणीस्वरूप श्रुतियोंकी मर्यादा स्थापित करनेके लिये अनेक यज्ञोंके द्वारा स्वयं अपना ही यजन किया ॥ ६६ ॥ कौरव और पाण्डवोंके बीच उत्पन्न हुए आपसके कलहसे उन्होंने पृथ्वीका बहुत-सा भार हलका कर दिया तथा युद्धमें अपनी दृष्टिसे ही राजाओंकी बहुत-सी अक्षौहिणियोंको ध्वंस करके संसारमें अर्जुनकी जीतका डंका पिटवा दिया। फिर उद्धवको आत्मतत्त्वका उपदेश किया और इसके बाद वे अपने परम धामको सिधार गये ॥ ६७ ॥

यस्मिन् सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत् ।
श्रोत्राञ्जलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥ ६२

भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकैः ।
श्लाघनीयेहितः शश्वत् कुरुसृञ्जयपाण्डुभिः ॥ ६३

स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया ।
नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया ॥ ६४

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्ण-
भ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम् ।
नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो
नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ॥ ६५

जातो गतः पितृगृहाद् व्रजमेधितार्थो
हत्वा रिपून् सुतशतानि कृतोरुदारः ।
उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे
आत्मानमात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु ॥ ६६

पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन् कुरूणा-
मन्तःसमुत्थकलिना युधि भूपचम्वः ।
दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्घोष्य
प्रोच्योद्धवाय च परं समगात् स्वधाम ॥ ६७

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे
श्रीसूर्यसोमवंशानुकीर्तने यदुवंशानुकीर्तनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इति नवमः स्कन्धः समाप्तः

हरिः ॐ तत्सत्

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

(पूर्वार्ध)

देवक्या पालितो गर्भे लालितोऽङ्के यशोदया।
यशोदयायुतो बालो गोपालो रमतां हृदि॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

(पूर्वार्धः)

अथ प्रथमोऽध्यायः

भगवान्‌के द्वारा पृथ्वीको आश्वासन, वसुदेव-देवकीका विवाह और कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रोंकी हत्या

राजोवाच

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ।
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १

यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ।
तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥ २

अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान् भूतभावनः ।
कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्
भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्
पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ ४

पितामहा मे समरेऽमरञ्जयै-
र्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः ।
दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं
कृत्वातरन् वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ ५

द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं
सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम् ।
जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो
मातुश्च मे यः शरणं गताया: ॥ ६

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! आपने चन्द्रवंश और सूर्यवंशके विस्तार तथा दोनों वंशोंके राजाओंका अत्यन्त अद्‌भुत चरित्र वर्णन किया। भगवान्‌के परम प्रेमी मुनिवर! आपने स्वभावसे ही धर्मप्रेमी यदुवंशका भी विशद वर्णन किया। अब कृपा करके उसी वंशमें अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ अवतीर्ण हुए भगवान् श्रीकृष्णके परम पवित्र चरित्र भी हमें सुनाइये ॥ १-२ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके जीवनदाता एवं सर्वात्मा हैं। उन्होंने यदुवंशमें अवतार लेकर जो-जो लीलाएँ कीं, उनका विस्तारसे हमलोगोंको श्रवण कराइये ॥ ३ ॥ जिनकी तृष्णाकी प्यास सर्वदाके लिये बुझ चुकी है, वे जीवन्मुक्त महापुरुष जिसका पूर्ण प्रेमसे अतृप्त रहकर गान किया करते हैं, मुमुक्षुजनोंके लिये जो भवरोगका रामबाण औषध है तथा विषयी लोगोंके लिये भी उनके कान और मनको परम आह्लाद देनेवाला है, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे सुन्दर, सुखद, रसीले, गुणानुवादसे पशुघाती अथवा आत्मघाती मनुष्यके अतिरिक्त और ऐसा कौन है जो विमुख हो जाय, उससे प्रीति न करे ? ॥ ४ ॥ (श्रीकृष्ण तो मेरे कुलदेव ही हैं।) जब कुरुक्षेत्रमें महाभारत-युद्ध हो रहा था और देवताओंको भी जीत लेनेवाले भीष्मपितामह आदि अतिरथियोंसे मेरे दादा पाण्डवोंका युद्ध हो रहा था, उस समय कौरवोंकी सेना उनके लिये अपार समुद्रके समान थी—जिसमें भीष्म आदि वीर बड़े-बड़े मच्छोंको भी निगल जानेवाले तिमिङ्गिल मच्छोंकी भाँति भय उत्पन्न कर रहे थे। परन्तु मेरे स्वनाम-धन्य पितामह भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी नौकाका आश्रय लेकर उस समुद्रको अनायास ही पार कर गये—ठीक वैसे ही जैसे कोई मार्गमें चलता हुआ स्वभावसे ही बछड़ेके खुरका गड्ढा पार कर जाय ॥ ५ ॥ महाराज ! मेरा यह शरीर—जो आपके सामने है तथा जो कौरव और पाण्डव दोनों ही वंशोंका एकमात्र सहारा था—अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे जल चुका था। उस समय मेरी

वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजा-
मन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः ।
प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च
मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७

रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः सङ्कर्षणस्त्वया ।
देवक्या गर्भसम्बन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥ ८

कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् व्रजं गतः ।
क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं[1] कृतवान् सात्वतांपतिः ॥ ९

व्रजे वसन् किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः ।
भ्रातरं चावधीत् कंसं मातुरद्धातदर्हणम् ॥ १०

देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ।
यदुपुर्यां सहावात्सीत् पत्न्यः कत्यभवन् प्रभोः ॥ ११

एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् ।
वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥ १२

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥ १३

सूत उवाच

एवं[2] निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं
वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम् ।
प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं
व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥ १४

माता जब भगवान्‌की शरणमें गयीं, तब उन्होंने हाथमें चक्र लेकर मेरी माताके गर्भमें प्रवेश किया और मेरी रक्षा की ॥ ६ ॥ (केवल मेरी ही बात नहीं,) वे समस्त शरीरधारियोंके भीतर आत्मारूपसे रहकर अमृतत्वका दान कर रहे हैं और बाहर कालरूपसे रहकर मृत्युका * । मनुष्यके रूपमें प्रतीत होना, यह तो उनकी एक लीला है। आप उन्हींकी ऐश्वर्य और माधुर्यसे परिपूर्ण लीलाओंका वर्णन कीजिये ॥ ७ ॥

भगवन्! आपने अभी बतलाया था कि बलरामजी रोहिणीके पुत्र थे। इसके बाद देवकीके पुत्रोंमें भी आपने उनकी गणना की। दूसरा शरीर धारण किये बिना दो माताओंका पुत्र होना कैसे सम्भव है ? ॥ ८ ॥ असुरोंको मुक्ति देनेवाले और भक्तोंको प्रेम वितरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने वात्सल्य-स्नेहसे भरे हुए पिताका घर छोड़कर व्रजमें क्यों चले गये ? यदुवंशशिरोमणि भक्तवत्सल प्रभुने नन्द आदि गोप-बन्धुओंके साथ कहाँ-कहाँ निवास किया ? ॥ ९ ॥ ब्रह्मा और शङ्करका भी शासन करनेवाले प्रभुने व्रजमें तथा मधुपुरीमें रहकर कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं ? और महाराज! उन्होंने अपनी माँके भाई मामा कंसको अपने हाथों क्यों मार डाला ? वह मामा होनेके कारण उनके द्वारा मारे जाने योग्य तो नहीं था ॥ १० ॥ मनुष्याकार सच्चिदानन्दमय विग्रह प्रकट करके द्वारकापुरीमें यदुवंशियोंके साथ उन्होंने कितने वर्षोंतक निवास किया ? और उन सर्वशक्तिमान् प्रभुकी पत्नियाँ कितनी थीं ? ॥ ११ ॥ मुने! मैंने श्रीकृष्णकी जितनी लीलाएँ पूछी हैं और जो नहीं पूछी हैं, वे सब आप मुझे विस्तारसे सुनाइये; क्योंकि आप सब कुछ जानते हैं और मैं बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें सुनना चाहता हूँ ॥ १२ ॥ भगवन्! अन्नकी तो बात ही क्या, मैंने जलका भी परित्याग कर दिया है। फिर भी वह असह्य भूख-प्यास (जिसके कारण मैंने मुनिके गलेमें मृत सर्प डालनेका अन्याय किया था) मुझे तनिक भी नहीं सता रही है; क्योंकि मैं आपके मुखकमलसे झरती हुई भगवान्‌की सुधामयी लीला-कथाका पान कर रहा हूँ ॥ १३ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! भगवान्‌के प्रेमियोंमें अग्रगण्य एवं सर्वज्ञ श्रीशुकदेवजी महाराजने परीक्षित्‌का ऐसा समीचीन प्रश्न सुनकर (जो संतोंकी सभामें भगवान्‌की लीलाके वर्णनका हेतु हुआ करता है) उनका अभिनन्दन किया और भगवान् श्रीकृष्णकी उन लीलाओंका वर्णन प्रारम्भ किया, जो समस्त कलिमलोंको सदाके लिये धो डालती है ॥ १४ ॥

---

१. साकं। २. एतं।

* समस्त देहधारियोंके अन्तःकरणमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित भगवान् उनके जीवनके कारण हैं तथा बाहर कालरूपसे स्थित हुए वे ही उनका नाश करते हैं। अतः जो आत्मज्ञानीजन अन्तर्दृष्टिद्वारा उन अन्तर्यामीकी उपासना करते हैं, वे मोक्षरूप अमरपद पाते हैं और जो विषयपरायण अज्ञानी पुरुष बाह्यदृष्टिसे विषयचिन्तनमें ही लगे रहते हैं, वे जन्म-मरणरूप मृत्युके भागी होते हैं।

श्रीशुक उवाच

सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ।
वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः[1] ॥ १५

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि ।
वक्तारं पृच्छकं श्रोतृंस्तत्पादसलिलं यथा ॥ १६

भूमिर्द्रुमनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ।
आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १७

गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः ।
उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत[2] ॥ १८

ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह ।
जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ।
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥ २०

गिरं समाधौ गगने समीरितां
निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ।
गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुन-
र्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥ २१

पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो
भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ।
स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः
स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद् भुवि ॥ २२

वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः ।
जनिष्यते[3] तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु[4] सुरस्त्रियः ॥ २३

श्रीशुकदेवजीने कहा—भगवान्‌के लीला-रसके रसिक राजर्षे ! तुमने जो कुछ निश्चय किया है, वह बहुत ही सुन्दर और आदरणीय है; क्योंकि सबके हृदयाराध्य श्रीकृष्णकी लीला-कथा श्रवण करनेमें तुम्हें सहज एवं सुदृढ़ प्रीति प्राप्त हो गयी है ॥ १५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी कथाके सम्बन्धमें प्रश्न करनेसे ही वक्ता, प्रश्नकर्ता और श्रोता तीनों ही पवित्र हो जाते हैं—जैसे गङ्गाजीका जल या भगवान् शालग्रामका चरणामृत सभीको पवित्र कर देता है ॥ १६ ॥

परीक्षित् ! उस समय लाखों दैत्योंके दलने घमंडी राजाओंका रूप धारण कर अपने भारी भारसे पृथ्वीको आक्रान्त कर रखा था। उससे त्राण पानेके लिये वह ब्रह्माजीकी शरणमें गयी ॥ १७ ॥ पृथ्वीने उस समय गौका रूप धारण कर रखा था। उसके नेत्रोंसे आँसू बह-बहकर मुँहपर आ रहे थे। उसका मन तो खिन्न था ही, शरीर भी बहुत कृश हो गया था। वह बड़े करुण स्वरसे रँभा रही थी। ब्रह्माजीके पास जाकर उसने उन्हें अपनी पूरी कष्ट-कहानी सुनायी ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने बड़ी सहानुभूतिके साथ उसकी दुःख-गाथा सुनी। उसके बाद वे भगवान् शङ्कर, स्वर्गके अन्यान्य प्रमुख देवता तथा गौके रूपमें आयी हुई पृथ्वीको अपने साथ लेकर क्षीरसागरके तटपर गये ॥ १९ ॥ भगवान् देवताओंके भी आराध्यदेव हैं। वे अपने भक्तोंकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण करते और उनके समस्त क्लेशोंको नष्ट कर देते हैं। वे ही जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं। क्षीरसागरके तटपर पहुँचकर ब्रह्मा आदि देवताओंने 'पुरुषसूक्त' के द्वारा उन्हीं परम पुरुष सर्वान्तर्यामी प्रभुकी स्तुति की। स्तुति करते-करते ब्रह्माजी समाधिस्थ हो गये ॥ २० ॥ उन्होंने समाधि-अवस्थामें आकाशवाणी सुनी। इसके बाद जगत्‌के-निर्माणकर्ता ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'देवताओ ! मैंने भगवान्‌की वाणी सुनी है। तुमलोग भी उसे मेरे द्वारा अभी सुन लो और फिर वैसा ही करो। उसके पालनमें विलम्ब नहीं होना चाहिये ॥ २१ ॥ भगवान्‌को पृथ्वीके कष्टका पहलेसे ही पता है। वे ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। अतः अपनी कालशक्तिके द्वारा पृथ्वीका भार हरण करते हुए वे जबतक पृथ्वीपर लीला करें, तबतक तुम लोग भी अपने-अपने अंशोंके साथ यदुकुलमें जन्म लेकर उनकी लीलामें सहयोग दो ॥ २२ ॥ वसुदेवजीके घर स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् प्रकट होंगे। उनकी और उनकी प्रियतमा (श्रीराधा) की सेवाके लिये देवाङ्गनाएँ जन्म ग्रहण करें ॥ २३ ॥

---

१. मतिः । २. समवोचत । ३. ष्यति । ४. वन्त्वमरस्त्रियः ।

वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट्।
अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥ २४

विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत्।
आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति ॥ २५

श्रीशुक उवाच

इत्यादिश्यामरगणान् प्रजापतिपतिर्विभुः।
आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥ २६

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम्।
माथुराञ्छूरसेनांश्च विषयान् बुभुजे पुरा ॥ २७

राजधानी ततः साभूत् सर्वयादवभूभुजाम्।
मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितो हरिः ॥ २८

तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः।
देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमास्रुहत् ॥ २९

उग्रसेनसुतः कंसः[1] स्वसुः प्रियचिकीर्षया।
रश्मीन् हयानां जग्राह[2] रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥ ३०

चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम्।
अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥ ३१

दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलङ्कृते।
दुहित्रे देवकः प्रादाद् याने दुहितृवत्सलः ॥ ३२

शङ्खतूर्यमृदङ्गाश्च नेदुर्दुन्दुभयः समम्।
प्रयाणप्रक्रमे तावद् वरवध्वोः सुमङ्गलम् ॥ ३३

पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक्।
अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥ ३४

स्वयंप्रकाश भगवान् शेष भी, जो भगवान्‌की कला होनेके कारण अनन्त हैं (अनन्तका अंश भी अनन्त ही होता है) और जिनके सहस्र मुख हैं, भगवान्‌के प्रिय कार्य करनेके लिये उनसे पहले ही उनके बड़े भाईके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे ॥ २४ ॥ भगवान्‌की वह ऐश्वर्यशालिनी योगमाया भी, जिसने सारे जगत्‌को मोहित कर रखा है, उनकी आज्ञासे उनकी लीलाके कार्य सम्पन्न करनेके लिये अंशरूपसे अवतार ग्रहण करेगी' ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! प्रजापतियोंके स्वामी भगवान् ब्रह्माजीने देवताओंको इस प्रकार आज्ञा दी और पृथ्वीको समझा-बुझाकर ढाढ़स बँधाया। इसके बाद वे अपने परम धामको चले गये ॥ २६ ॥ प्राचीन कालमें यदुवंशी राजा थे शूरसेन। वे मथुरापुरीमें रहकर माथुरमण्डल और शूरसेनमण्डलका राज्यशासन करते थे ॥ २७ ॥ उसी समयसे मथुरा ही समस्त यदुवंशी नरपतियोंकी राजधानी हो गयी थी। भगवान् श्रीहरि सर्वदा वहाँ विराजमान रहते हैं ॥ २८ ॥ एक बार मथुरामें शूरके पुत्र वसुदेवजी विवाह करके अपनी नवविवाहिता पत्नी देवकीके साथ घर जानेके लिये रथपर सवार हुए ॥ २९ ॥ उग्रसेनका लड़का था कंस। उसने अपनी चचेरी बहिन देवकीको प्रसन्न करनेके लिये उसके रथके घोड़ोंकी रास पकड़ ली। वह स्वयं ही रथ हाँकने लगा, यद्यपि उसके साथ सैकड़ों सोनेके बने हुए रथ चल रहे थे ॥ ३० ॥ देवकीके पिता थे देवक। अपनी पुत्रीपर उनका बड़ा प्रेम था। कन्याको विदा करते समय उन्होंने उसे सोनेके हारोंसे अलङ्कृत चार सौ हाथी, पंद्रह हजार घोड़े, अठारह सौ रथ तथा सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित दो सौ सुकुमारी दासियाँ दहेजमें दीं ॥ ३१-३२ ॥ विदाईके समय वर-वधूके मङ्गलके लिये एक ही साथ शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग और दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ ३३ ॥ मार्गमें जिस समय घोड़ोंकी रास पकड़कर कंस रथ हाँक रहा था, उस समय आकाशवाणीने उसे सम्बोधन करके कहा—'अरे मूर्ख! जिसको तू रथमें बैठाकर लिये जा रहा है, उसकी आठवें गर्भकी सन्तान तुझे मार डालेगी' ॥ ३४ ॥

---

१. कंसो भगिन्याः प्रिय० । २. जगृहे ।

इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ।
भगिनीं हन्तुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥ ३५

तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् ।
वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥ ३६

वसुदेव उवाच

श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान् भोजयशस्करः ।
स कथं भगिनीं हन्यात् स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ ३८

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥ ३९

व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ।
यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥ ४०

स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं
मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः ।
दृष्टश्रुताभ्यां मनसानुचिन्तयन्
प्रपद्यते तत् किमपि ह्यपस्मृतिः ॥ ४१

यतो यतो धावति दैवचोदितं
मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु ।
गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ
प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥ ४२

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः
समीरवेगानुगतं विभाव्यते ।
एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्
गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥ ४३

कंस बड़ा पापी था। उसकी दुष्टताकी सीमा नहीं थी। वह भोजवंशका कलङ्क ही था। आकाशवाणी सुनते ही उसने तलवार खींच ली और अपनी बहिनकी चोटी पकड़कर उसे मारनेके लिये तैयार हो गया ॥ ३५ ॥ वह अत्यन्त क्रूर तो था ही, पाप-कर्म करते-करते निर्लज्ज भी हो गया था। उसका यह काम देखकर महात्मा वसुदेवजी उसको शान्त करते हुए बोले— ॥ ३६ ॥

वसुदेवजीने कहा—राजकुमार! आप भोजवंशके होनहार वंशधर तथा अपने कुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले हैं। बड़े-बड़े शूरवीर आपके गुणोंकी सराहना करते हैं। इधर यह एक तो स्त्री, दूसरे आपकी बहिन और तीसरे यह विवाहका शुभ अवसर! ऐसी स्थितिमें आप इसे कैसे मार सकते हैं ? ॥ ३७ ॥ वीरवर! जो जन्म लेते हैं, उनके शरीरके साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है। आज हो या सौ वर्षके बाद—जो प्राणी है, उसकी मृत्यु होगी ही ॥ ३८ ॥ जब शरीरका अन्त हो जाता है, तब जीव अपने कर्मके अनुसार दूसरे शरीरको ग्रहण करके अपने पहले शरीरको छोड़ देता है। उसे विवश होकर ऐसा करना पड़ता है ॥ ३९ ॥ जैसे चलते समय मनुष्य एक पैर जमाकर ही दूसरा पैर उठाता है और जैसे जोंक किसी अगले तिनकेको पकड़ लेती है, तब पहलेके पकड़े हुए तिनकेको छोड़ती है—वैसे जीव भी अपने कर्मके अनुसार किसी शरीरको प्राप्त करनेके बाद ही इस शरीरको छोड़ता है ॥ ४० ॥ जैसे कोई पुरुष जाग्रत्-अवस्थामें राजाके ऐश्वर्यको देखकर और इन्द्रादिके ऐश्वर्यको सुनकर उसकी अभिलाषा करने लगता है और उसका चिन्तन करते-करते उन्हीं बातोंमें घुल-मिलकर एक हो जाता है तथा स्वप्नमें अपनेको राजा या इन्द्रके रूपमें अनुभव करने लगता है, साथ ही अपने दरिद्रावस्थाके शरीरको भूल जाता है। कभी-कभी तो जाग्रत् अवस्थामें ही मन-ही-मन उन बातोंका चिन्तन करते-करते तन्मय हो जाता है और उसे स्थूल शरीरकी सुधि नहीं रहती। वैसे ही जीव कर्मकृत कामना और कामनाकृत कर्मके वश होकर दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है और अपने पहले शरीरको भूल जाता है ॥ ४१ ॥ जीवका मन अनेक विकारोंका पुञ्ज है। देहान्तके समय वह अनेक जन्मोंके सञ्चित और प्रारब्ध कर्मोंकी वासनाओंके अधीन होकर मायाके द्वारा रचे हुए अनेक पाञ्चभौतिक शरीरोंमेंसे जिस किसी शरीरके चिन्तनमें तल्लीन हो जाता है और मान बैठता है कि यह मैं हूँ, उसे वही शरीर ग्रहण करके जन्म लेना पड़ता है ॥ ४२ ॥ जैसे सूर्य, चन्द्रमा आदि चमकीली वस्तुएँ जलसे भरे हुए घड़ोंमें या तेल आदि तरल पदार्थोंमें प्रतिबिम्बित होती हैं और हवाके झोंकेसे उनके जल आदिके हिलने-डोलनेपर उनमें प्रतिबिम्बित वस्तुएँ भी चञ्चल जान पड़ती हैं—वैसे ही जीव अपने स्वरूपके अज्ञानद्वारा रचे हुए शरीरोंमें राग करके उन्हें अपना आप मान बैठता है और मोहवश उनके आने-जानेको अपना आना-जाना

तस्मान्न कस्यचिद् द्रोहमाचरेत् स तथाविधः ।
आत्मनः क्षेममन्विच्छन् द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ॥ ४४

एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा ।
हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः ॥ ४५

श्रीशुक उवाच

एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि[1] दारुणः ।
न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥ ४६

निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्यानकदुन्दुभिः ।
प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥ ४७

मृत्युर्बुद्धिमतापोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् ।
यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ ४८

प्रदाय मृत्यवे पुत्रान् मोचये कृपणामिमाम् ।
सुता मे यदि जायेरन् मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥ ४९

विपर्ययो वा किं न स्याद् गतिर्धातुर्दुरत्यया ।
उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥ ५०

अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयो-
रदृष्टतोऽन्यत्र निमित्तमस्ति ।
एवं हि जन्तोरपि दुर्विभाव्यः
शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥ ५१

एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ।
पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरःसरम् ॥ ५२

प्रसन्नवदनाम्भोजो नृशंसं निरपत्रपम् ।
मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५३

मानने लगता है ॥ ४३ ॥ इसलिये जो अपना कल्याण चाहता है, उसे किसीसे द्रोह नहीं करना चाहिये; क्योंकि जीव कर्मके अधीन हो गया है और जो किसीसे भी द्रोह करेगा, उसको इस जीवनमें शत्रुसे और जीवनके बाद परलोकसे भयभीत होना ही पड़ेगा ॥ ४४ ॥ कंस ! यह आपकी छोटी बहिन अभी बच्ची और बहुत दीन है । यह तो आपकी कन्याके समान है । इसपर, अभी-अभी इसका विवाह हुआ है, विवाहके मङ्गलचिह्न भी इसके शरीरपरसे नहीं उतरे हैं । ऐसी दशामें आप-जैसे दीनवत्सल पुरुषको इस बेचारीका वध करना उचित नहीं है ॥ ४५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार वसुदेवजीने प्रशंसा आदि सामनीति और भय आदि भेदनीतिसे कंसको बहुत समझाया । परन्तु वह क्रूर तो राक्षसोंका अनुयायी हो रहा था; इसलिये उसने अपने घोर सङ्कल्पको नहीं छोड़ा ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीने कंसका विकट हठ देखकर यह विचार किया कि किसी प्रकार यह समय तो टाल ही देना चाहिये । तब वे इस निश्चयपर पहुँचे ॥ ४७ ॥ 'बुद्धिमान् पुरुषको, जहाँतक उसकी बुद्धि और बल साथ दें, मृत्युको टालनेका प्रयत्न करना चाहिये । प्रयत्न करनेपर भी वह न टल सके, तो फिर प्रयत्न करनेवालेका कोई दोष नहीं रहता ॥ ४८ ॥ इसलिये इस मृत्युरूप कंसको अपने पुत्र दे देनेकी प्रतिज्ञा करके मैं इस दीन देवकीको बचा लूँ । यदि मेरे लड़के होंगे और तबतक यह कंस स्वयं नहीं मर जायगा, तब क्या होगा ? ॥ ४९ ॥ सम्भव है, उलटा ही हो । मेरा लड़का ही इसे मार डाले ! क्योंकि विधाताके विधानका पार पाना बहुत कठिन है । मृत्यु सामने आकर भी टल जाती है और टली हुई भी लौट आती है ॥ ५० ॥ जिस समय वनमें आग लगती है, उस समय कौन-सी लकड़ी जले और कौन-सी न जले, दूरकी जल जाय और पासकी बच रहे—इन सब बातोंमें अदृष्टके सिवा और कोई कारण नहीं होता । वैसे ही किस प्राणीका कौन-सा शरीर बना रहेगा और किस हेतुसे कौन-सा शरीर नष्ट हो जायगा—इस बातका पता लगा लेना बहुत ही कठिन है' ॥ ५१ ॥ अपनी बुद्धिके अनुसार ऐसा निश्चय करके वसुदेवजीने बहुत सम्मानके साथ पापी कंसकी बड़ी प्रशंसा की ॥ ५२ ॥ परीक्षित् ! कंस बड़ा क्रूर और निर्लज्ज था; अतः ऐसा करते समय वसुदेवजीके मनमें बड़ी पीड़ा भी हो रही थी । फिर भी उन्होंने ऊपरसे अपने मुख-कमलको प्रफुल्लित करके हँसते हुए कहा— ॥ ५३ ॥

---

१. ओद्यमानो ।

वसुदेव उवाच

न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद् वागाहाशरीरिणी ।
पुत्रान् समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥ ५४

श्रीशुक उवाच

स्वसुर्वधान्निववृते[1] कंसस्तद्वाक्यसारवित् ।
वसुदेवोऽपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद् गृहम् ॥ ५५

अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ।
पुत्रान् प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥ ५६

कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ।
अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥ ५७

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ।
किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥ ५८

दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ।
कंसस्तुष्टमना राजन् प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५९

प्रतियातु[2] कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम् ।
अष्टमाद् युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे[3] विहितः किल ॥ ६०

तथेति सुतमादाय ययावानकदुन्दुभिः[4] ।
नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः ॥ ६१

नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः ।
वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥ ६२

सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ।
ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥ ६३

वसुदेवजीने कहा—सौम्य ! आपको देवकीसे तो कोई भय है नहीं, जैसा कि आकाशवाणीने कहा है । भय है पुत्रोंसे, सो इसके पुत्र मैं आपको लाकर सौंप दूँगा ॥ ५४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कंस जानता था कि वसुदेवजीके वचन झूठे नहीं होते और इन्होंने जो कुछ कहा है, वह युक्तिसंगत भी है । इसलिये उसने अपनी बहिन देवकीको मारनेका विचार छोड़ दिया । इससे वसुदेवजी बहुत प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करके अपने घर चले आये ॥ ५५ ॥ देवकी बड़ी सती-साध्वी थी । सारे देवता उसके शरीरमें निवास करते थे । समय आनेपर देवकीके गर्भसे प्रतिवर्ष एक-एक करके आठ पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ५६ ॥ पहले पुत्रका नाम था कीर्तिमान् । वसुदेवजीने उसे लाकर कंसको दे दिया । ऐसा करते समय उन्हें कष्ट तो अवश्य हुआ, परन्तु उससे भी बड़ा कष्ट उन्हें इस बातका था कि कहीं मेरे वचन झूठे न हो जायँ ॥ ५७ ॥ परीक्षित् ! सत्यसन्ध पुरुष बड़े-से-बड़ा कष्ट भी सह लेते हैं, ज्ञानियोंको किसी बातकी अपेक्षा नहीं होती, नीच पुरुष बुरे-से-बुरा काम भी कर सकते हैं और जो जितेन्द्रिय हैं—जिन्होंने भगवान्‌को हृदयमें धारण कर रखा है, वे सब कुछ त्याग सकते हैं ॥ ५८ ॥ जब कंसने देखा कि वसुदेवजीका अपने पुत्रके जीवन और मृत्युमें समान भाव है एवं वे सत्यमें पूर्ण निष्ठावान् भी हैं, तब वह बहुत प्रसन्न हुआ और उनसे हँसकर बोला ॥ ५९ ॥ वसुदेवजी ! आप इस नन्हें-से सुकुमार बालकको ले जाइये । इससे मुझे कोई भय नहीं है । क्योंकि आकाशवाणीने तो ऐसा कहा था कि देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न सन्तानके द्वारा मेरी मृत्यु होगी ॥ ६० ॥ वसुदेवजीने कहा—'ठीक है' और उस बालकको लेकर वे लौट आये । परन्तु उन्हें मालूम था कि कंस बड़ा दुष्ट है और उसका मन उसके हाथमें नहीं है । वह किसी क्षण बदल सकता है । इसलिये उन्होंने उसकी बातपर विश्वास नहीं किया ॥ ६१ ॥

परीक्षित् ! इधर भगवान् नारद कंसके पास आये और उससे बोले कि 'कंस ! व्रजमें रहनेवाले नन्द आदि गोप, उनकी स्त्रियाँ, वसुदेव आदि वृष्णिवंशी यादव, देवकी आदि यदुवंशकी स्त्रियाँ और नन्द, वसुदेव दोनोंके सजातीय बन्धु-बान्धव और सगे-सम्बन्धी—सब-के-सब देवता हैं; जो इस समय तुम्हारी सेवा कर रहे हैं, वे भी देवता ही हैं ।' उन्होंने यह भी बतलाया कि 'दैत्योंके कारण पृथ्वीका भार बढ़

१. सुहृद्वधा० । २. यवीयांस्तु । ३. योः पुत्रान्मृ० । ४. यावदानक० ।

एतत् कंसाय भगवाञ्छशंसाभ्येत्य[1] नारदः ।
भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥ ६४

ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून् मत्वा सुरानिति ।
देवक्या गर्भसम्भूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥ ६५

देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे ।
जातं जातमहन् पुत्रं तयोरजनशङ्कया ॥ ६६

मातरं पितरं भ्रातॄन् सर्वांश्च सुहृदस्तथा[2] ।
घ्नन्ति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥ ६७

आत्मानमिह सञ्जातं जानन् प्राग् विष्णुना हतम् ।
महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥ ६८

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम्[3] ।
स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान् महाबलः ॥ ६९

गया है, इसलिये देवताओंकी ओरसे अब उनके वधकी तैयारी की जा रही है' ॥ ६२—६४ ॥ जब देवर्षि नारद इतना कहकर चले गये, तब कंसको यह निश्चय हो गया कि यदुवंशी देवता हैं और देवकीके गर्भसे विष्णुभगवान् ही मुझे मारनेके लिये पैदा होनेवाले हैं। इसलिये उसने देवकी और वसुदेवको हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़कर कैदमें डाल दिया और उन दोनोंसे जो-जो पुत्र होते गये, उन्हें वह मारता गया। उसे हर बार यह शंका बनी रहती कि कहीं विष्णु ही उस बालकके रूपमें न आ गया हो ॥ ६५-६६ ॥ परीक्षित्! पृथ्वीमें यह बात प्रायः देखी जाती है कि अपने प्राणोंका ही पोषण करनेवाले लोभी राजा अपने स्वार्थके लिये माता-पिता, भाई-बन्धु और अपने अत्यन्त हितैषी इष्ट-मित्रोंकी भी हत्या कर डालते हैं ॥ ६७ ॥ कंस जानता था कि मैं पहले कालनेमि असुर था और विष्णुने मुझे मार डाला था। इससे उसने यदुवंशियोंसे घोर विरोध ठान लिया ॥ ६८ ॥ कंस बड़ा बलवान् था। उसने यदु, भोज और अन्धक वंशके अधिनायक अपने पिता उग्रसेनको कैद कर लिया और शूरसेन-देशका राज्य वह स्वयं करने लगा ॥ ६९ ॥

—★—

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे[4] पूर्वार्धे श्रीकृष्णावतारोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

—★—

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवान्‌का गर्भ-प्रवेश और देवताओंद्वारा गर्भ-स्तुति

श्रीशुक उवाच

प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः[5] ।
मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १

अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ।
यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥ २

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कंस एक तो स्वयं बड़ा बली था और दूसरे, मगधनरेश जरासन्धकी उसे बहुत बड़ी सहायता प्राप्त थी। तीसरे, उसके साथी थे—प्रलम्बासुर, बकासुर, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्टासुर, द्विविद, पूतना, केशी और धेनुक। तथा बाणासुर और भौमासुर आदि बहुत-से दैत्य राजा उसके सहायक थे। इनको साथ लेकर वह यदुवंशियोंको नष्ट करने लगा ॥ १-२ ॥

---

१. चाञ्छावयामास नारः । २. सुहृदः सखीन् । ३. यदूनामन्धका० । ४. स्कन्धे प्रथ० । ५. ह्यसुरैः ।

ते पीडिता निविविशुः कुरुपञ्चालकेकयान् ।
शाल्वान् विदर्भान् निषधान् विदेहान् कोसलानपि ॥ ३

एके तमनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासते ।
हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४

सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ।
गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ॥ ५

भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ।
यदूनां निजनाथानां योगमायां[1] समादिशत् ॥ ६

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलङ्कृतम् ।
रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नन्दगोकुले ।
अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि[2] ॥ ७

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ।
तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ॥ ८

अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ।
प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ॥ ९

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम्[3] ।
धूपोपहारबलिभिः[4] सर्वकामवरप्रदाम् ॥ १०

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥ ११

कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ।
माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च ॥ १२

वे लोग भयभीत होकर कुरु, पञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह और कोसल आदि देशोंमें जा बसे ॥ ३ ॥ कुछ लोग ऊपर-ऊपरसे उसके मनके अनुसार काम करते हुए उसकी सेवामें लगे रहे। जब कंसने एक-एक करके देवकीके छः बालक मार डाले, तब देवकीके सातवें गर्भमें भगवान्‌के अंशस्वरूप श्रीशेषजी* जिन्हें अनन्त भी कहते हैं—पधारे । आनन्दस्वरूप शेषजीके गर्भमें आनेके कारण देवकीको स्वाभाविक ही हर्ष हुआ । परन्तु कंस शायद इसे भी मार डाले, इस भयसे उनका शोक भी बढ़ गया ॥ ४-५ ॥

विश्वात्मा भगवान्‌ने देखा कि मुझे ही अपना स्वामी और सर्वस्व माननेवाले यदुवंशी कंसके द्वारा बहुत ही सताये जा रहे हैं। तब उन्होंने अपनी योगमायाको यह आदेश दिया— ॥ ६ ॥'देवि ! कल्याणी ! तुम व्रजमें जाओ ! वह प्रदेश ग्वालों और गौओंसे सुशोभित है। वहाँ नन्दबाबाके गोकुलमें वसुदेवकी पत्नी रोहिणी निवास करती हैं। उनकी और भी पत्नियाँ कंससे डरकर गुप्त स्थानोंमें रह रही हैं ॥ ७ ॥ इस समय मेरा वह अंश जिसे शेष कहते हैं, देवकीके उदरमें गर्भ रूपसे स्थित है। उसे वहाँसे निकालकर तुम रोहिणीके पेटमें रख दो ॥ ८ ॥ कल्याणी ! अब मैं अपने समस्त ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ देवकीका पुत्र बनूँगा और तुम नन्दबाबाकी पत्नी यशोदाके गर्भसे जन्म लेना ॥ ९ ॥ तुम लोगोंको मुँहमाँगे वरदान देनेमें समर्थ होओगी । मनुष्य तुम्हें अपनी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाली जानकर धूप-दीप, नैवेद्य एवं अन्य प्रकारकी सामग्रियोंसे तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ १० ॥ पृथ्वीमें लोग तुम्हारे लिये बहुत-से स्थान बनायेंगे और दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्या, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका आदि बहुत-से नामोंसे पुकारेंगे ॥ ११-१२ ॥

---

१. निद्रां । २. याः । ३. कर्मवरे० । ४. नानोप० ।

* शेष भगवान्‌ने विचार किया कि 'रामावतारमें मैं छोटा भाई बना, इसीसे मुझे बड़े भाईकी आज्ञा माननी पड़ी और वन जानेसे मैं उन्हें रोक नहीं सका। श्रीकृष्णावतारमें मैं बड़ा भाई बनकर भगवान्‌की अच्छी सेवा कर सकूँगा। इसलिये वे श्रीकृष्णसे पहले ही गर्भमें आ गये।

गर्भसंकर्षणात् तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि ।
रामेति लोकरमणाद् बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥ १३

देवकीके गर्भमेंसे खींचे जानेके कारण शेषजीको लोग संसारमें 'संकर्षण' कहेंगे, लोकरंजन करनेके कारण 'राम' कहेंगे और बलवानोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण 'बलभद्र' भी कहेंगे ॥ १३ ॥

सन्दिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ।
प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत् तथाकरोत् ॥ १४

जब भगवान्‌ने इस प्रकार आदेश दिया, तब योगमायाने 'जो आज्ञा'—ऐसा कहकर उनकी बात शिरोधार्य की और उनकी परिक्रमा करके वे पृथ्वीलोकमें चली आयीं तथा भगवान्‌ने जैसा कहा था, वैसे ही किया ॥ १४ ॥

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ।
अहो बिस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५

जब योगमायाने देवकीका गर्भ ले जाकर रोहिणीके उदरमें रख दिया, तब पुरवासी बड़े दुःखके साथ आपसमें कहने लगे—'हाय ! बेचारी देवकीका यह गर्भ तो नष्ट ही हो गया' ॥ १५ ॥

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्करः ।
आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥ १६

भगवान् भक्तोंको अभय करनेवाले हैं। वे सर्वत्र सब रूपमें हैं, उन्हें कहीं आना-जाना नहीं है। इसलिये वे वसुदेवजीके मनमें अपनी समस्त कलाओंके साथ प्रकट हो गये ॥ १६ ॥ उसमें विद्यमान रहनेपर भी अपनेको अव्यक्तसे व्यक्त कर दिया। भगवान्‌की ज्योतिको धारण करनेके कारण वसुदेवजी सूर्यके समान तेजस्वी हो गये, उन्हें देखकर लोगोंकी आँखें चौंधिया जातीं। कोई भी अपने बल, वाणी या प्रभावसे उन्हें दबा नहीं सकता था ॥ १७ ॥ भगवान्‌के उस ज्योतिर्मय अंशको, जो जगत्‌का परम मङ्गल करनेवाला है, वसुदेवजीके द्वारा आधान किये जानेपर देवी देवकीने ग्रहण किया । जैसे पूर्वदिशा चन्द्रदेवको धारण करती है, वैसे ही शुद्ध सत्त्वसे सम्पन्न देवी देवकीने विशुद्ध मनसे सर्वात्मा एवं आत्मस्वरूप भगवान्‌को धारण किया ॥ १८ ॥ भगवान् सारे जगत्‌के निवासस्थान हैं। देवकी उनका भी निवासस्थान बन गयी। परन्तु घड़े आदिके भीतर बंद किये हुए दीपकका और अपनी विद्या दूसरेको न देनेवाले ज्ञानखलकी श्रेष्ठ विद्याका प्रकाश जैसे चारों ओर नहीं फैलता, वैसे ही कंसके कारागारमें बंद देवकीकी भी उतनी शोभा नहीं हुई ॥ १९ ॥ देवकीके गर्भमें भगवान् विराजमान हो गये थे। उसके मुखपर पवित्र मुसकान थी और उसके शरीरकी कान्तिसे बंदीगृह जगमगाने लगा था। जब कंसने उसे देखा, तब वह मन-ही-मन कहने लगा—'अबकी बार मेरे प्राणोंके ग्राहक विष्णुने इसके गर्भमें अवश्य ही प्रवेश किया है; क्योंकि इसके पहले देवकी कभी ऐसी न थी ॥ २० ॥ अब इस विषयमें शीघ्र-से-शीघ्र मुझे क्या करना चाहिये ? देवकीको मारना तो ठीक न होगा; क्योंकि वीर पुरुष स्वार्थवश अपने पराक्रमको कलङ्कित नहीं करते। एक तो यह स्त्री है, दूसरे बहिन और तीसरे गर्भवती है। इसको मारनेसे तो तत्काल ही मेरी कीर्ति, लक्ष्मी और आयु नष्ट हो

स बिभ्रत् पौरुषं धाम भ्राजमानो[1] यथा रविः ।
दुरासदोऽतिदुर्धर्षो[2] भूतानां सम्बभूव ह ॥ १७

ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं
समाहितं शूरसुतेन देवी ।
दधार सर्वात्मकमात्मभूतं
काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं मनस्तः ॥ १८

सा देवकी सर्वजगन्निवास-
निवासभूता नितरां न[3] रेजे ।
भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा
सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥ १९

तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाजितान्तरां
विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मिताम् ।
आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां
ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥ २०

किमद्य तस्मिन् करणीयमाशु मे
यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम् ।
स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं
यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ॥ २१

१. राज० । २. सदः सुदु० । ३. विरेजे ।

स एष जीवन् खलु सम्परेतो
वर्तेत योऽत्यन्तनृशंसितेन ।
देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति
गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥ २२

इति घोरतमाद् भावात् सन्निवृत्तः स्वयं प्रभुः ।
आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥ २३

आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन्[1] महीम् ।
चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत् तन्मयं जगत् ॥ २४

ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ।
देवैः[2] सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥ २५

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ २६

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूल-
श्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा ।
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो
दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ २७

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूति-
स्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च ।

जायगी ॥ २१ ॥ वह मनुष्य तो जीवित रहनेपर भी मरा हुआ ही है, जो अत्यन्त क्रूरताका व्यवहार करता है। उसकी मृत्युके बाद लोग उसे गाली देते हैं। इतना ही नहीं, वह देहाभिमानियोंके योग्य घोर नरकमें भी अवश्य-अवश्य जाता है ॥ २२ ॥ यद्यपि कंस देवकीको मार सकता था, किन्तु स्वयं ही वह इस अत्यन्त क्रूरताके विचारसे निवृत्त हो गया * । अब भगवान्‌के प्रति दृढ़ वैरका भाव मनमें गाँठकर उनके जन्मकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ २३ ॥ वह उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते और चलते-फिरते—सर्वदा ही श्रीकृष्णके चिन्तनमें लगा रहता । जहाँ उसकी आँख पड़ती, जहाँ कुछ खड़का होता, वहाँ उसे श्रीकृष्ण दीख जाते । इस प्रकार उसे सारा जगत् ही श्रीकृष्णमय दीखने लगा ॥ २४ ॥

परीक्षित् ! भगवान् शङ्कर और ब्रह्माजी कंसके कैदखानेमें आये। उनके साथ अपने अनुचरोंके सहित समस्त देवता और नारदादि ऋषि भी थे। वे लोग सुमधुर वचनोंसे सबकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले श्रीहरिकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ 'प्रभो ! आप सत्यसङ्कल्प हैं। सत्य ही आपकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है। सृष्टिके पूर्व, प्रलयके पश्चात् और संसारकी स्थितिके समय—इन असत्य अवस्थाओंमें भी आप सत्य हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच दृश्यमान सत्योंके आप ही कारण हैं। और उनमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान भी हैं। आप इस दृश्यमान जगत्‌के परमार्थस्वरूप हैं। आप ही मधुर वाणी और समदर्शनके प्रवर्तक हैं। भगवन् ! आप तो बस, सत्यस्वरूप ही हैं। हम सब आपकी शरणमें आये हैं ॥ २६ ॥ यह संसार क्या है, एक सनातन वृक्ष। इस वृक्षका आश्रय है—एक प्रकृति। इसके दो फल हैं—सुख और दुःख; तीन जड़ें हैं—सत्त्व, रज और तम; चार रस हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसके जाननेके पाँच प्रकार हैं—श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका। इसके छः स्वभाव हैं—पैदा होना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और नष्ट हो जाना। इस वृक्षकी छाल हैं सात धातुएँ—रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र। आठ शाखाएँ हैं—पाँच महाभूत, मन, बुद्धि और अहङ्कार। इसमें मुख आदि नवों द्वार खोड़र हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय—ये दस प्राण ही इसके दस पत्ते हैं। इस संसाररूप वृक्षपर दो पक्षी हैं—जीव और ईश्वर ॥ २७ ॥ इस संसाररूप वृक्षकी उत्पत्तिके आधार एकमात्र आप ही हैं। आपमें ही

१. टन् पिबन्। २. देवाः सानुचराः ।

* जो कंस विवाहके मङ्गलचिह्नोंको धारण की हुई देवकीका गला काटनेके उद्योगसे न हिचका, वही आज इतना सद्-विचारवान् हो गया, इसका क्या कारण है ? अवश्य ही आज वह जिस देवकीको देख रहा है, उसके अन्तरङ्गमें—गर्भमें श्रीभगवान् हैं। जिसके भीतर भगवान् हैं, उसके दर्शनसे सद्बुद्धिका उदय होना कोई आश्चर्य नहीं है।

त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां
पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥ २८

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा
क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ।
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि
सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥ २९

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि
समाधिनाऽऽवेशितचेतसैके ।
त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन
कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥ ३०

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्
भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते
निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥ ३१

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥ ३२

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्
भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥ ३३

सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ
शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः ।
वेदक्रियायोगतपःसमाधिभि-
स्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥ ३४

सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्
विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ।

इसका प्रलय होता है और आपके ही अनुग्रहसे इसकी रक्षा भी होती है। जिनका चित्त आपकी मायासे आवृत हो रहा है, इस सत्यको समझनेकी शक्ति खो बैठा है—वे ही उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको अनेक देखते हैं। तत्त्वज्ञानी पुरुष तो सबके रूपमें केवल आपका ही दर्शन करते हैं ॥ २८ ॥ आप ज्ञानस्वरूप आत्मा हैं। चराचर जगत्के कल्याणके लिये ही अनेकों रूप धारण करते हैं। आपके वे रूप विशुद्ध अप्राकृत सत्त्वमय होते हैं और संत पुरुषोंको बहुत सुख देते हैं। साथ ही दुष्टोंको उनकी दुष्टताका दण्ड भी देते हैं। उनके लिये अमङ्गलमय भी होते हैं ॥ २९ ॥ कमलके समान कोमल अनुग्रहभरे नेत्रोंवाले प्रभो ! कुछ बिरले लोग ही आपके समस्त पदार्थों और प्राणियोंके आश्रयस्वरूप रूपमें पूर्ण एकाग्रतासे अपना चित्त लगा पाते हैं और आपके चरणकमलरूपी जहाजका आश्रय लेकर इस संसारसागरको बछड़ेके खुरके गढ़ेके समान अनायास ही पार कर जाते हैं। क्यों न हो, अबतकके संतोंने इसी जहाजसे संसारसागरको पार जो किया है ॥ ३० ॥ परम प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आपके भक्तजन सारे जगत्के निष्कपट प्रेमी, सच्चे हितैषी होते हैं। वे स्वयं तो इस भयङ्कर और कष्टसे पार करनेयोग्य संसारसागरको पार कर ही जाते हैं, किन्तु औरोंके कल्याणके लिये भी वे यहाँ आपके चरण-कमलोंकी नौका स्थापित कर जाते हैं। वास्तवमें सत्पुरुषोंपर आपकी महान् कृपा है। उनके लिये आप अनुग्रहस्वरूप ही हैं ॥ ३१ ॥ कमलनयन ! जो लोग आपके चरणकमलोंकी शरण नहीं लेते तथा आपके प्रति भक्तिभावसे रहित होनेके कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं है, वे अपनेको झूठ-मूठ मुक्त मानते हैं। वास्तवमें तो वे बद्ध ही हैं। वे यदि बड़ी तपस्या और साधनाका कष्ट उठाकर किसी प्रकार ऊँचे-से-ऊँचे पदपर भी पहुँच जायँ, तो भी वहाँसे नीचे गिर जाते हैं ॥ ३२ ॥ परन्तु भगवन् ! जो आपके अपने निज जन हैं, जिन्होंने आपके चरणोंमें अपनी सच्ची प्रीति जोड़ रखी है, वे कभी उन ज्ञानाभिमानियोंकी भाँति अपने साधन-मार्गसे गिरते नहीं। प्रभो ! वे बड़े-बड़े विघ्न डालनेवालोंकी सेनाके सरदारोंके सिरपर पैर रखकर निर्भय विचरते हैं, कोई भी विघ्न उनके मार्गमें रुकावट नहीं डाल सकते; क्योंकि उनके रक्षक आप जो हैं ॥ ३३ ॥ आप संसारकी स्थितिके लिये समस्त देहधारियोंको परम कल्याण प्रदान करनेवाला विशुद्ध सत्त्वमय, सच्चिदानन्दमय परम दिव्य मङ्गल-विग्रह प्रकट करते हैं। उस रूपके प्रकट होनेसे ही आपके भक्त वेद, कर्मकाण्ड, अष्टाङ्गयोग, तपस्या और समाधिके द्वारा आपकी आराधना करते हैं। बिना किसी आश्रयके वे किसकी आराधना करेंगे ? ॥ ३४ ॥ प्रभो ! आप सबके विधाता हैं। यदि आपका यह विशुद्ध सत्त्वमय निज स्वरूप न हो, तो अज्ञान और उसके द्वारा होनेवाले भेदभावको नष्ट करनेवाला अपरोक्ष ज्ञान ही किसीको

गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्
प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ ३५

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभि-[1]
र्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ।
मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो
देव क्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ॥ ३६

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्
नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते[2] ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो-[3]
राविष्टचेता[4] न भवाय कल्पते ॥ ३७

दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो
भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ।
दिष्ट्याङ्कितां त्वत्पदकैः सुशोभनै-
र्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकम्पिताम् ॥ ३८

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं
विना विनोदं बत तर्कयामहे ।
भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया
कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥ ३९

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस-
राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश[5]
भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥ ४०

दिष्ट्याम्ब[6] ते कुक्षिगतः परः पुमा-
नंशेन साक्षाद् भगवान् भवाय नः ।
मा भूद् भयं भोजपतेर्मुमूर्षो-
र्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥ ४१

न हो । जगत्‌में दीखनेवाले तीनों गुण आपके हैं और आपके द्वारा ही प्रकाशित होते हैं, यह सत्य है । परन्तु इन गुणोंकी प्रकाशक वृत्तियोंसे आपके स्वरूपका केवल अनुमान ही होता है, वास्तविक स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता । (आपके स्वरूपका साक्षात्कार तो आपके इस विशुद्ध सत्त्वमय स्वरूपकी सेवा करनेपर आपकी कृपासे ही होता है) ॥ ३५ ॥ भगवन् ! मन और वेद-वाणीके द्वारा केवल आपके स्वरूपका अनुमानमात्र होता है । क्योंकि आप उनके द्वारा दृश्य नहीं; उनके साक्षी हैं । इसलिये आपके गुण, जन्म और कर्म आदिके द्वारा आपके नाम और रूपका निरूपण नहीं किया जा सकता । फिर भी प्रभो ! आपके भक्तजन उपासना आदि क्रियायोगोंके द्वारा आपका साक्षात्कार तो करते ही हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष आपके मङ्गलमय नामों और रूपोंका श्रवण, कीर्तन, स्मरण और ध्यान करता है और आपके चरणकमलोंकी सेवामें ही अपना चित्त लगाये रहता है—उसे फिर जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें नहीं आना पड़ता ॥ ३७ ॥ सम्पूर्ण दुःखोंके हरनेवाले भगवन् ! आप सर्वेश्वर हैं । यह पृथ्वी तो आपका चरणकमल ही है । आपके अवतारसे इसका भार दूर हो गया । धन्य है ! प्रभो ! हमारे लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि हमलोग आपके सुन्दर-सुन्दर चिह्नोंसे युक्त चरणकमलोंके द्वारा विभूषित पृथ्वीको देखेंगे और स्वर्गलोकको भी आपकी कृपासे कृतार्थ देखेंगे ॥ ३८ ॥ प्रभो ! आप अजन्मा हैं । यदि आपके जन्मके कारणके सम्बन्धमें हम कोई तर्कना करें, तो यही कह सकते हैं कि यह आपका एक लीला-विनोद है । ऐसा कहनेका कारण यह है कि आप तो द्वैतके लेशसे रहित सर्वाधिष्ठानस्वरूप हैं और इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय अज्ञानके द्वारा आपमें आरोपित हैं ॥ ३९ ॥ प्रभो ! आपने जैसे अनेकों बार मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, राम, परशुराम और वामन अवतार धारण करके हमलोगोंकी और तीनों लोकोंकी रक्षा की है—वैसे ही आप इस बार भी पृथ्वीका भार हरण कीजिये । यदुनन्दन ! हम आपके चरणोंमें वन्दना करते हैं' ॥ ४० ॥ [देवकीजीको सम्बोधित करके] 'माताजी ! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपकी कोखमें हम सबका कल्याण करनेके लिये स्वयं भगवान् पुरुषोत्तम अपने ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ पधारे हैं । अब आप कंससे तनिक भी मत डरिये । अब तो वह कुछ ही दिनोंका मेहमान है । आपका पुत्र यदुवंशकी रक्षा करेगा' ॥ ४१ ॥

---

१. गुणकर्मजन्मभिर्नि० । २. वः । ३. युष्मच्चर० । ४. चित्तो । ५. तथा० । ६. दिष्ट्या च ते ।

श्रीशुक उवाच

इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा।
ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम्॥ ४२

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! ब्रह्मादि देवताओंने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की। उनका रूप 'यह है' इस प्रकार निश्चितरूपसे तो कहा नहीं जा सकता, सब अपनी-अपनी मतिके अनुसार उसका निरूपण करते हैं। इसके बाद ब्रह्मा और शङ्करजीको आगे करके देवगण स्वर्गमें चले गये॥ ४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे[1] पूर्वार्धे गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृतस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य

श्रीशुक उवाच

अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः।
यर्ह्योवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम्॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब समस्त शुभ गुणोंसे युक्त बहुत सुहावना समय आया। रोहिणी नक्षत्र था। आकाशके सभी नक्षत्र, ग्रह और तारे शान्त—सौम्य हो रहे थे* ॥ १॥

---

१. न्धे द्विती०।

* जैसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर उसमें भगवान्‌का आविर्भाव होता है, श्रीकृष्णावतारके अवसरपर भी ठीक उसी प्रकारकी समष्टिकी शुद्धिका वर्णन किया गया है। इसमें काल, दिशा, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन और आत्मा—इन नौ द्रव्योंका अलग-अलग नामोल्लेख करके साधकके लिये एक अत्यन्त उपयोगी साधन-पद्धतिकी ओर संकेत किया गया है।

काल—

भगवान् कालसे परे हैं। शास्त्रों और सत्पुरुषोंके द्वारा ऐसा निरूपण सुनकर काल मानो क्रुद्ध हो गया था और रुद्ररूप धारण करके सबको निगल रहा था। आज जब उसे मालूम हुआ कि स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण मेरे अंदर अवतीर्ण हो रहे हैं, तब वह आनन्दसे भर गया और समस्त सद्गुणोंको धारणकर तथा सुहावना बनकर प्रकट हो गया।

दिशा—

१. प्राचीन शास्त्रोंमें दिशाओंको देवी माना गया है। उनके एक-एक स्वामी भी होते हैं—जैसे प्राचीके इन्द्र, प्रतीचीके वरुण आदि। कंसके राज्य-कालमें ये देवता पराधीन—कैदी हो गये थे। अब भगवान् श्रीकृष्णके अवतारसे देवताओंकी गणनाके अनुसार ग्यारह-बारह दिनोंमें ही उन्हें छुटकारा मिल जायगा, इसलिये अपने पतियोंके सङ्गम-सौभाग्यका अनुसंधान करके देवियाँ प्रसन्न हो गयीं। जो देव एवं दिशाके परिच्छेदसे रहित हैं, वे ही प्रभु भारत देशके व्रज-प्रदेशमें आ रहे हैं, यह अपूर्व आनन्दोत्सव भी दिशाओंकी प्रसन्नताका हेतु है।

२. संस्कृत-साहित्यमें दिशाओंका एक नाम 'आशा' भी है। दिशाओंकी प्रसन्नताका एक अर्थ यह भी है कि अब सत्पुरुषोंकी आशा-अभिलाषा पूर्ण होगी।

३. विराट् पुरुषके अवयव-संस्थानका वर्णन करते समय दिशाओंको उनका कान बताया गया है। श्रीकृष्णके अवतारके अवसरपर दिशाएँ मानो यह सोचकर प्रसन्न हो गयीं कि प्रभु असुर-असाधुओंके उपद्रवसे दुःखी प्राणियोंकी प्रार्थना सुननेके लिये सतत सावधान हैं।

पृथ्वी—

१. पुराणोंमें भगवान्‌की दो पत्नियोंका उल्लेख मिलता है—एक श्रीदेवी और दूसरी भूदेवी। ये दोनों चल-सम्पत्ति और

दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम्।
महीमङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २

दिशाएँ स्वच्छ प्रसन्न थीं। निर्मल आकाशमें तारे जगमगा रहे थे। पृथ्वीके बड़े-बड़े नगर, छोटे-छोटे गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ और हीरे आदिकी खानें मङ्गलमय हो रही थीं ॥ २ ॥ नदियोंका जल निर्मल हो गया था। रात्रिके समय भी सरोवरोंमें कमल खिल रहे थे। वनमें वृक्षोंकी पंक्तियाँ रंग-बिरंगे पुष्पोंके गुच्छोंसे लद गयी थीं। कहीं पक्षी चहक रहे थे, तो कहीं भौंरे गुनगुना रहे थे ॥ ३ ॥

नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः।
द्विजालिकुलसंनादस्तबका वनराजयः ॥ ३

अचल-सम्पत्तिकी स्वामिनी हैं। इनके पति हैं—भगवान्, जीव नहीं। जिस समय श्रीदेवीके निवासस्थान वैकुण्ठसे उतरकर भगवान् भूदेवीके निवासस्थान पृथ्वीपर आने लगे, तब जैसे परदेशसे पतिके आगमनका समाचार सुनकर पत्नी सज-धजकर अगवानी करनेके लिये निकलती है, वैसे ही पृथ्वीका मङ्गलमयी होना, मङ्गलचिह्नोंको धारण करना स्वाभाविक ही है।

२. भगवान्‌के श्रीचरण मेरे वक्षःस्थलपर पड़ेंगे, अपने सौभाग्यका ऐसा अनुसन्धान करके पृथ्वी आनन्दित हो गयी।

३. वामन ब्रह्मचारी थे। परशुरामजीने ब्राह्मणोंको दान दे दिया। श्रीरामचन्द्रने मेरी पुत्री जानकीसे विवाह कर लिया। इसलिये उन अवतारोंमें मैं भगवान्‌से जो सुख नहीं प्राप्त कर सकी, वही श्रीकृष्णसे प्राप्त करूँगी। यह सोचकर पृथ्वी मङ्गलमयी हो गयी।

४. अपने पुत्र मङ्गलको गोदमें लेकर पतिदेवका स्वागत करने चली।

जल (नदियाँ)—

१. नदियोंने विचार किया कि रामावतारमें सेतु-बन्धके बहाने हमारे पिता पर्वतोंको हमारी ससुराल समुद्रमें पहुँचाकर इन्होंने हमें मायकेका सुख दिया था। अब इनके शुभागमनके अवसरपर हमें भी प्रसन्न होकर इनका स्वागत करना चाहिये।

२. नदियाँ सब गङ्गाजीसे कहती थीं—'तुमने हमारे पिता पर्वत देखे हैं, अपने पिता भगवान् विष्णुके दर्शन कराओ।' गङ्गाजीने सुनी-अनसुनी कर दी। अब वे इसलिये प्रसन्न हो गयीं कि हम स्वयं देख लेंगी।

३. यद्यपि भगवान् समुद्रमें नित्य निवास करते हैं, फिर भी ससुराल होनेके कारण वे उन्हें वहाँ देख नहीं पातीं। अब उन्हें पूर्णरूपसे देख सकेंगी, इसलिये वे निर्मल हो गयीं।

४. निर्मल हृदयको भगवान् मिलते हैं, इसलिये वे निर्मल हो गयीं।

५. नदियोंको जो सौभाग्य किसी भी अवतारमें नहीं मिला। वह कृष्णावतारमें मिला। श्रीकृष्णकी चतुर्थ पटरानी हैं—श्रीकालिन्दीजी। अवतार लेते ही यमुनाजीके तटपर जाना, ग्वालबाल एवं गोपियोंके साथ जलक्रीडा करना, उन्हें अपनी पटरानी बनाना—इन सब बातोंको सोचकर नदियाँ आनन्दसे भर गयीं।

ह्रद—

कालिय-दमन करके कालिय-दहका शोधन, ग्वालबालों और अक्रूरको ब्रह्म-ह्रदमें ही अपने स्वरूपके दर्शन आदि स्व-सम्बन्धी लीलाओंका अनुसन्धान करके ह्रदोंने कमलके बहाने अपने प्रफुल्लित हृदयको ही श्रीकृष्णके प्रति अर्पित कर दिया। उन्होंने कहा कि 'प्रभो! भले ही हमें लोग जड समझा करें, आप हमें कभी स्वीकार करेंगे, इस भावी सौभाग्यके अनुसन्धानसे हम सहृदय हो रहे हैं।'

अग्नि—

१. इस अवतारमें श्रीकृष्णने व्योमासुर, तृणावर्त, कालियके दमनसे आकाश, वायु और जलकी शुद्धि की है। मृद्-भक्षणसे पृथ्वीकी और अग्निपानसे अग्निकी। भगवान् श्रीकृष्णने दो बार अग्निको अपने मुँहमें धारण किया। इस भावी सुखका अनुसन्धान करके ही अग्निदेव शान्त होकर प्रज्वलित होने लगे।

२. देवताओंके लिये यज्ञ-भाग आदि बन्द हो जानेके कारण अग्निदेव भी भूखे ही थे। अब श्रीकृष्णावतारसे अपने भोजन मिलनेकी आशासे अग्निदेव प्रसन्न होकर प्रज्वलित हो उठे।

वायु—

१. उदारशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके जन्मके अवसरपर वायुने सुख लुटाना प्रारम्भ किया; क्योंकि समान शीलसे ही मैत्री होती है। जैसे स्वामीके सामने सेवक, प्रजा अपने गुण प्रकट करके उसे प्रसन्न करती है, वैसे ही वायु भगवान्‌के सामने

ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ।
अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत ॥ ४

उस समय परम पवित्र और शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु अपने स्पर्शसे लोगोंको सुखदान करती हुई बह रही थी। ब्राह्मणोंके अग्निहोत्रकी कभी न बुझनेवाली अग्नियाँ जो कंसके अत्याचारसे बुझ गयी थीं, वे इस समय अपने-आप जल उठीं ॥ ४ ॥

मनांस्यासन् प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ।
जायमानेऽजने तस्मिन् नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ॥ ५

संत पुरुष पहलेसे ही चाहते थे कि असुरोंकी बढ़ती न होने पाये। अब उनका मन सहसा प्रसन्नतासे भर गया। जिस समय भगवान्‌के आविर्भावका अवसर आया, स्वर्गमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ अपने-आप बज उठीं ॥ ५ ॥

अपने गुण प्रकट करने लगे।

२. आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके मुखारविन्दपर जब श्रमजनित स्वेदबिन्दु आ जायँगे, तब मैं ही शीतल-मन्द सुगन्ध गतिसे उसे सुखाऊँगा—यह सोचकर पहलेसे ही वायु सेवाका अभ्यास करने लगा।

३. यदि मनुष्यको प्रभु-चरणारविन्दके दर्शनकी लालसा हो तो उसे विश्वकी सेवा ही करनी चाहिये, मानो यह उपदेश करता हुआ वायु सबकी सेवा करने लगा।

४. रामावतारमें मेरे पुत्र हनुमान्‌ने भगवान्‌की सेवा की, इससे मैं कृतार्थ ही हूँ; परन्तु इस अवतारमें मुझे स्वयं ही सेवा कर लेनी चाहिये। इस विचारसे वायु लोगोंको सुख पहुँचाने लगा।

५. सम्पूर्ण विश्वके प्राण वायुने सम्पूर्ण विश्वकी ओरसे भगवान्‌के स्वागत-समारोहमें प्रतिनिधित्व किया।

आकाश—

१. आकाशकी एकता, आधारता, विशालता और समताकी उपमा तो सदासे ही भगवान्‌के साथ दी जाती रही, परन्तु अब उसकी झूठी नीलिमा भी भगवान्‌के अङ्गसे उपमा देनेसे चरितार्थ हो जायगी, इसलिये आकाशने मानो आनन्दोत्सव मनानेके लिये नीले चँदोवेमें हीरोंके समान तारोंकी झालरें लटका ली हैं।

२. स्वामीके शुभागमनके अवसरपर जैसे सेवक स्वच्छ वेष-भूषा धारण करते हैं और शान्त हो जाते हैं, इसी प्रकार आकाशके सब नक्षत्र, ग्रह, तारे शान्त एवं निर्मल हो गये। वक्रता, अतिचार और युद्ध छोड़कर श्रीकृष्णका स्वागत करने लगे।

नक्षत्र—

मैं देवकीके गर्भसे जन्म ले रहा हूँ तो रोहिणीके संतोषके लिये कम-से-कम रोहिणी नक्षत्रमें जन्म तो लेना ही चाहिये। अथवा चन्द्रवंशमें जन्म ले रहा हूँ, तो चन्द्रमाकी सबसे प्यारी पत्नी रोहिणीमें ही जन्म लेना उचित है। यह सोचकर भगवान्‌ने रोहिणी नक्षत्रमें जन्म लिया।

मन—

१. योगी मनका निरोध करते हैं, मुमुक्षु निर्विषय करते हैं और जिज्ञासु बाध करते हैं। तत्त्वज्ञोंने तो मनका सत्यानाश ही कर दिया। भगवान्‌के अवतारका समय जानकर उसने सोचा कि अब तो मैं अपनी पत्नी—इन्द्रियाँ और विषय—बाल-बच्चे सबके साथ ही भगवान्‌के साथ खेलूँगा। निरोध और बाधसे पिण्ड छूटा। इसीसे मन प्रसन्न हो गया।

२. निर्मलको ही भगवान् मिलते हैं, इसलिये मन निर्मल हो गया।

३. वैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका परित्याग कर देनेपर भगवान् मिलते हैं। अब तो स्वयं भगवान् ही वह सब बनकर आ रहे हैं। लौकिक आनन्द भी प्रभुमें मिलेगा। यह सोचकर मन प्रसन्न हो गया।

४. वसुदेवके मनमें निवास करके ये ही भगवान् प्रकट हो रहे हैं। वह हमारी ही जातिका है, यह सोचकर मन प्रसन्न हो गया।

५. सुमन (देवता और शुद्ध मन) को सुख देनेके लिये ही भगवान्‌का अवतार हो रहा है। यह जानकर सुमन प्रसन्न हो गये।

६. संतोंमें, स्वर्गमें और उपवनमें सुमन (शुद्ध मन, देवता और पुष्प) आनन्दित हो गये। क्यों न हो, माधव (विष्णु और वसन्त) का आगमन जो हो रहा है।

जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ।
विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥ ६

किन्नर और गन्धर्व मधुर स्वरमें गाने लगे तथा सिद्ध और चारण भगवान्‌के मङ्गलमय गुणोंकी स्तुति करने लगे। विद्याधरियाँ अप्सराओंके साथ नाचने लगीं ॥ ६ ॥

मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ।
मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥ ७

बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि आनन्दसे भरकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे * । जलसे भरे हुए बादल समुद्रके पास जाकर धीरे-धीरे गर्जना करने लगे †१ ॥ ७ ॥

निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने ।
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः[1] ।
आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥ ८

जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ानेवाले जनार्दनके अवतारका समय था निशीथ। चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य था। उसी समय सबके हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णु देवरूपिणी देवकीके गर्भसे प्रकट हुए, जैसे पूर्व दिशामें सोलहों कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमाका उदय हो गया हो ॥ ८ ॥

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्[2] ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥ ९

महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डल-
त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभि-
र्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ १०

वसुदेवजीने देखा, उनके सामने एक अद्भुत बालक है। उसके नेत्र कमलके समान कोमल और विशाल हैं। चार सुन्दर हाथोंमें शङ्ख, गदा, चक्र और कमल लिये हुए हैं। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न—अत्यन्त सुन्दर सुवर्णमयी रेखा है। गलेमें कौस्तुभमणि झिलमिला रही है। वर्षाकालीन मेघके समान परम सुन्दर श्यामल शरीरपर मनोहर पीताम्बर फहरा रहा है। बहुमूल्य वैदूर्यमणिके किरीट और कुण्डलकी कान्तिसे सुन्दर-सुन्दर घुँघराले बाल सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे हैं। कमरमें चमचमाती करधनीकी लड़ियाँ लटक रही हैं। बाँहोंमें बाजूबंद और कलाइयोंमें कङ्कण शोभायमान हो रहे हैं। इन सब आभूषणोंसे सुशोभित बालकके अङ्ग-अङ्गसे अनोखी छटा छिटक रही है ॥ ९-१० ॥

भाद्रमास—

भद्र अर्थात् कल्याण देनेवाला है। कृष्णपक्ष स्वयं कृष्णसे सम्बद्ध है। अष्टमी तिथि पक्षके बीचोबीच सन्धि-स्थलपर पड़ती है। रात्रि योगीजनोंको प्रिय है। निशीथ यतियोंका सन्ध्याकाल और रात्रिके दो भागोंकी सन्धि है। उस समय श्रीकृष्णके आविर्भावका अर्थ है—अज्ञानके घोर अन्धकारमें दिव्य प्रकाश। निशानाथ चन्द्रके वंशमें जन्म लेना है, तो निशाके मध्यभागमें अवतीर्ण होना उचित भी है। अष्टमीके चन्द्रोदयका समय भी वही है। यदि वसुदेवजी मेरा जातकर्म नहीं कर सकते तो हमारे वंशके आदिपुरुष चन्द्रमा समुद्रस्नान करके अपने कर-किरणोंसे अमृतका वितरण करें।

१. गुणाश्रयः । २. दाद्युदायुधम् ।

*ऋषि, मुनि और देवता जब अपने सुमनकी वर्षा करनेके लिये मथुराकी ओर दौड़े, तब उनका आनन्द भी पीछे छूट गया और उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। उन्होंने अपने निरोध और बाधसम्बन्धी सारे विचार त्यागकर मनको श्रीकृष्णकी ओर जानेके लिये मुक्त कर दिया, उनपर न्योछावर कर दिया।

†१. मेघ समुद्रके पास जाकर मन्द-मन्द गर्जना करते हुए कहते—जलनिधे ! यह तुम्हारे उपदेश (पास आने) का फल है कि हमारे पास जल-ही-जल हो गया। अब ऐसा कुछ उपदेश करो कि जैसे तुम्हारे भीतर भगवान् रहते हैं, वैसे हमारे भीतर भी रहें।

२. बादल समुद्रके पास जाते और कहते कि समुद्र ! तुम्हारे हृदयमें भगवान् रहते हैं, हमें भी उनका दर्शन-प्यार प्राप्त करवा दो। समुद्र उन्हें थोड़ा-सा जल देकर कह देता—अपनी उत्ताल तरङ्गोंसे ढकेल देता—जाओ अभी विश्वकी सेवा करके अन्तःकरण शुद्ध करो, तब भगवान्‌के दर्शन होंगे। स्वयं भगवान् मेघश्याम बनकर समुद्रसे बाहर व्रजमें आ रहे हैं। हम धूपमें उनपर छाया करेंगे, अपनी फुइयाँ बरसाकर जीवन न्योछावर करेंगे और उनकी बाँसुरीके स्वरपर ताल देंगे। अपने इस सौभाग्यका अनुसन्धान करके बादल समुद्रके पास पहुँचे और मन्द-मन्द गर्जना करने लगे। मन्द-मन्द इसलिये कि यह ध्वनि प्यारे श्रीकृष्णके कानोंतक न पहुँच जाय।

स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं
सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा ।
कृष्णावतारोत्सवसम्भ्रमोऽस्पृशन्
मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥ ११

अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं
परं नताङ्गः कृतधीः कृताञ्जलिः ।
स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं
विरोचयन्तं गतभीः प्रभाववित् ॥ १२

वसुदेव उवाच[1]

विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः ।
केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥ १३

स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् ।
तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥ १४

यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह ।
नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि[2] ॥ १५

सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव ।
प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह सम्भवः ॥ १६

एवं भवान् बुद्ध्यनुमेयलक्षणै-
र्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः ।
अनावृतत्वाद् बहिरन्तरं न ते
सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥ १७

य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति
व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ।
विनानुवादं न च तन्मनीषितं
सम्यग् यतस्त्यक्तमुपाददत् पुमान् ॥ १८

जब वसुदेवजीने देखा कि मेरे पुत्रके रूपमें तो स्वयं भगवान् ही आये हैं, तब पहले तो उन्हें असीम आश्चर्य हुआ; फिर आनन्दसे उनकी आँखें खिल उठीं। उनका रोम-रोम परमानन्दमें मग्न हो गया। श्रीकृष्णका जन्मोत्सव मनानेकी उतावलीमें उन्होंने उसी समय ब्राह्मणोंके लिये दस हजार गायोंका सङ्कल्प कर दिया ॥ ११ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अङ्गकान्तिसे सूतिकागृहको जगमग कर रहे थे। जब वसुदेवजीको यह निश्चय हो गया कि ये तो परम पुरुष परमात्मा ही हैं, तब भगवान्‌का प्रभाव जान लेनेसे उनका सारा भय जाता रहा। अपनी बुद्धि स्थिर करके उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें अपना सिर झुका दिया और फिर हाथ जोड़कर वे उनकी स्तुति करने लगे— ॥ १२ ॥

वसुदेवजीने कहा—मैं समझ गया कि आप प्रकृतिसे अतीत साक्षात् पुरुषोत्तम हैं। आपका स्वरूप है केवल अनुभव और केवल आनन्द। आप समस्त बुद्धियोंके एकमात्र साक्षी हैं ॥ १३ ॥ आप ही सर्गके आदिमें अपनी प्रकृतिसे इस त्रिगुणमय जगत्‌की सृष्टि करते हैं। फिर उसमें प्रविष्ट न होनेपर भी आप प्रविष्टके समान जान पड़ते हैं ॥ १४ ॥ जैसे जबतक महत्तत्त्व आदि कारण-तत्त्व पृथक्-पृथक् रहते हैं, तबतक उनकी शक्ति भी पृथक्-पृथक् होती है; जब वे इन्द्रियादि सोलह विकारोंके साथ मिलते हैं, तभी इस ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं और इसे उत्पन्न करके इसीमें अनुप्रविष्ट-से जान पड़ते हैं; परंतु सच्ची बात तो यह है कि वे किसी भी पदार्थमें प्रवेश नहीं करते। ऐसा होनेका कारण यह है कि उनसे बनी हुई जो भी वस्तु है, उसमें वे पहलेसे ही विद्यमान रहते हैं ॥ १५-१६ ॥ ठीक वैसे ही बुद्धिके द्वारा केवल गुणोंके लक्षणोंका ही अनुमान किया जाता है और इन्द्रियोंके द्वारा केवल गुणमय विषयोंका ही ग्रहण होता है। यद्यपि आप उनमें रहते हैं, फिर भी उन गुणोंके ग्रहणसे आपका ग्रहण नहीं होता। इसका कारण यह है कि आप सब कुछ हैं, सबके अन्तर्यामी हैं और परमार्थ सत्य, आत्मस्वरूप हैं। गुणोंका आवरण आपको ढक नहीं सकता। इसलिये आपमें न बाहर है न भीतर। फिर आप किसमें प्रवेश करेंगे? (इसलिये प्रवेश न करनेपर भी आप प्रवेश किये हुएके समान दीखते हैं) ॥ १७ ॥ जो अपने इन दृश्य गुणोंको अपनेसे पृथक् मानकर सत्य समझता है, वह अज्ञानी है। क्योंकि विचार करनेपर ये देह-गेह आदि पदार्थ वाग्विलासके सिवा और कुछ नहीं सिद्ध होते। विचारके द्वारा जिस वस्तुका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता, बल्कि जो बाधित हो जाती है, उसको सत्य माननेवाला पुरुष बुद्धिमान्

१. प्राचीन प्रतिमें 'वसुदेव उवाच' यह पाठ नहीं है। २. च।

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान् विभो
वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् ।
त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते
त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया
बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ।
सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं
कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥ २०

त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषु-
र्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर ।
राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपै-
र्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥ २१

अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे
श्रुत्वाग्रजांस्ते न्यवधीत्[1] सुरेश्वर ।
स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं
श्रुत्वाधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥ २२

श्रीशुक उवाच

अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् ।
देवकी तमुपाधावत् कंसाद् भीता शुचिस्मिता ॥ २३

देवक्युवाच

रूपं यत् तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं
ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं
स त्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने
महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ।

कैसे हो सकता है ? ॥ १८ ॥ प्रभो ! कहते हैं कि आप स्वयं समस्त क्रियाओं, गुणों और विकारोंसे रहित हैं । फिर भी इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय आपसे ही होते हैं । यह बात परम ऐश्वर्यशाली परब्रह्म परमात्मा आपके लिये असंगत नहीं है । क्योंकि तीनों गुणोंके आश्रय आप ही हैं, इसलिये उन गुणोंके कार्य आदिका आपमें ही आरोप किया जाता है ॥ १९ ॥ आप ही तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके लिये अपनी मायासे सत्त्वमय शुक्लवर्ण (पोषणकारी विष्णुरूप) धारण करते हैं, उत्पत्तिके लिये रजःप्रधान रक्तवर्ण (सृजनकारी ब्रह्मारूप) और प्रलयके समय तमोगुणप्रधान कृष्णवर्ण (संहारकारी रुद्ररूप) स्वीकार करते हैं ॥ २० ॥ प्रभो ! आप सर्वशक्तिमान् और सबके स्वामी हैं । इस संसारकी रक्षाके लिये ही आपने मेरे घर अवतार लिया है । आजकल कोटि-कोटि असुर सेनापतियोंने राजाका नाम धारण कर रखा है और आपने अधीन बड़ी-बड़ी सेनाएँ कर रखी हैं । आप उन सबका संहार करेंगे ॥ २१ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव प्रभो ! यह कंस बड़ा दुष्ट है । इसे जब मालूम हुआ कि आपका अवतार हमारे घर होनेवाला है, तब उसने आपके भयसे आपके बड़े भाइयोंको मार डाला । अभी उसके दूत आपके अवतारका समाचार उसे सुनायेंगे और वह अभी-अभी हाथमें शस्त्र लेकर दौड़ा आयेगा ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इधर देवकीने देखा कि मेरे पुत्रमें तो पुरुषोत्तम भगवान्के सभी लक्षण मौजूद हैं । पहले तो उन्हें कंससे कुछ भय मालूम हुआ, परन्तु फिर वे बड़े पवित्र भावसे मुसकराती हुई स्तुति करने लगीं ॥ २३ ॥

माता देवकीने कहा—प्रभो ! वेदोंने आपके जिस रूपको अव्यक्त और सबका कारण बतलाया है, जो ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप, समस्त गुणोंसे रहित और विकारहीन है, जिसे विशेषणरहित—अनिर्वचनीय, निष्क्रिय एवं केवल विशुद्ध सत्ताके रूपमें कहा गया है—वही बुद्धि आदिके प्रकाशक विष्णु आप स्वयं हैं ॥ २४ ॥ जिस समय ब्रह्माकी पूरी आयु—दो परार्ध समाप्त हो जाते हैं, काल शक्तिके प्रभावसे सारे लोक नष्ट हो जाते हैं, पञ्च महाभूत अहङ्कारमें, अहङ्कार महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्व प्रकृतिमें लीन हो जाता है—उस समय एकमात्र आप ही

१. हतवान् ।

व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते
भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः ॥ २५

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो
चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम्।
निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयां-[1]
स्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ २६

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्
लोकान् सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत्।
त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य
स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ २७

स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्न-
स्त्राहि त्रस्तान् भृत्यवित्रासहासि।
रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं
मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥ २८

जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन।
समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्।
शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥ ३०

विश्वं यदेतत् स्वतनौ निशान्ते
यथावकाशं पुरुषः परो भवान्।
बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभू-
दहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ॥ ३१

श्रीभगवानुवाच

त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायम्भुवे सति।
तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥ ३२

शेष रह जाते हैं। इसीसे आपका एक नाम 'शेष' भी है ॥ २५ ॥ प्रकृतिके एकमात्र सहायक प्रभो ! निमेषसे लेकर वर्षपर्यन्त अनेक विभागोंमें विभक्त जो काल है, जिसकी चेष्टासे यह सम्पूर्ण विश्व सचेष्ट हो रहा है और जिसकी कोई सीमा नहीं है, वह आपकी लीलामात्र है। आप सर्वशक्तिमान् और परम कल्याणके आश्रय हैं। मैं आपकी शरण लेती हूँ ॥ २६ ॥ प्रभो ! यह जीव मृत्युग्रस्त हो रहा है। यह मृत्युरूप कराल व्यालसे भयभीत होकर सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरोंमें भटकता रहा है; परन्तु इसे कभी कहीं भी ऐसा स्थान न मिल सका, जहाँ यह निर्भय होकर रहे। आज बड़े भाग्यसे इसे आपके चरणारविन्दोंकी शरण मिल गयी। अतः अब यह स्वस्थ होकर सुखकी नींद सो रहा है। औरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं मृत्यु भी इससे भयभीत होकर भाग गयी है ॥ २७ ॥ प्रभो ! आप हैं भक्तभयहारी। और हमलोग इस दुष्ट कंससे बहुत ही भयभीत हैं। अतः आप हमारी रक्षा कीजिये। आपका यह चतुर्भुज दिव्यरूप ध्यानकी वस्तु है। इसे केवल मांस-मज्जामय शरीरपर ही दृष्टि रखनेवाले देहाभिमानी पुरुषोंके सामने प्रकट मत कीजिये ॥ २८ ॥ मधुसूदन ! इस पापी कंसको यह बात मालूम न हो कि आपका जन्म मेरे गर्भसे हुआ है। मेरा धैर्य टूट रहा है । आपके लिये मैं कंससे बहुत डर रही हूँ ॥ २९ ॥ विश्वात्मन् ! आपका यह रूप अलौकिक है। आप शङ्ख, चक्र, गदा और कमलकी शोभासे युक्त अपना यह चतुर्भुजरूप छिपा लीजिये ॥ ३० ॥ प्रलयके समय आप इस सम्पूर्ण विश्वको अपने शरीरमें वैसे ही स्वाभाविक रूपसे धारण करते हैं, जैसे कोई मनुष्य अपने शरीरमें रहनेवाले छिद्ररूप आकाशको । वही परम पुरुष परमात्मा आप मेरे गर्भवासी हुए, यह आपकी अद्भुत मनुष्य-लीला नहीं तो और क्या है ? ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवि ! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें जब तुम्हारा पहला जन्म हुआ था, उस समय तुम्हारा नाम था पृश्नि और ये वसुदेव सुतपा नामके प्रजापति थे। तुम दोनोंके हृदय बड़े ही शुद्ध थे ॥ ३२ ॥

---

१. गरी०।

युवां वै ब्रह्मणाऽऽदिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः ।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं[1] तेपाथे परमं तपः ॥ ३३

वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु ।
सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४

शीर्णपर्णानिलाहारावुपशान्तेन चेतसा ।
मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥ ३५

एवं वां तप्यतोस्तीव्रं[2] तपः परमदुष्करम् ।
दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६

तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषानघे ।
तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥ ३७

प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया ।
ब्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥ ३८

अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दम्पती ।
न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ मम मायया ॥ ३९

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ।
ग्राम्यान् भोगानभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥ ४०

अदृष्ट्वान्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् ।
अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः[3] ॥ ४१

तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ।
उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ४२

तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषाथ वाम् ।
जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३

जब ब्रह्माजीने तुम दोनोंको सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी, तब तुमलोगोंने इन्द्रियोंका दमन करके उत्कृष्ट तपस्या की ॥ ३३ ॥ तुम दोनोंने वर्षा, वायु, घाम, शीत, उष्ण आदि कालके विभिन्न गुणोंका सहन किया और प्राणायामके द्वारा अपने मनके मल धो डाले ॥ ३४ ॥ तुम दोनों कभी सूखे पत्ते खा लेते और कभी हवा पीकर ही रह जाते। तुम्हारा चित्त बड़ा शान्त था। इस प्रकार तुमलोगोंने मुझसे अभीष्ट वस्तु प्राप्त करनेकी इच्छासे मेरी आराधना की ॥ ३५ ॥ मुझमें चित्त लगाकर ऐसा परम दुष्कर और घोर तप करते-करते देवताओंके बारह हजार वर्ष बीत गये ॥ ३६ ॥ पुण्यमयी देवि ! उस समय मैं तुम दोनोंपर प्रसन्न हुआ। क्योंकि तुम दोनोंने तपस्या, श्रद्धा और प्रेममयी भक्तिसे अपने हृदयमें नित्य-निरन्तर मेरी भावना की थी। उस समय तुम दोनोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये वर देनेवालोंका राजा मैं इसी रूपसे तुम्हारे सामने प्रकट हुआ। जब मैंने कहा कि 'तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो', तब तुम दोनोंने मेरे-जैसा पुत्र माँगा ॥ ३७-३८ ॥ उस समयतक विषय-भोगोंसे तुम लोगोंका कोई सम्बन्ध नहीं हुआ था। तुम्हारे कोई सन्तान भी न थी। इसलिये मेरी मायासे मोहित होकर तुम दोनोंने मुझसे मोक्ष नहीं माँगा ॥ ३९ ॥ तुम्हें मेरे-जैसा पुत्र होनेका वर प्राप्त हो गया और मैं वहाँसे चला गया। अब सफलमनोरथ होकर तुमलोग विषयोंका भोग करने लगे ॥ ४० ॥ मैंने देखा कि संसारमें शील-स्वभाव, उदारता तथा अन्य गुणोंमें मेरे-जैसा दूसरा कोई नहीं है; इसलिये मैं ही तुम दोनोंका पुत्र हुआ और उस समय मैं 'पृश्निगर्भ'के नामसे विख्यात हुआ ॥ ४१ ॥ फिर दूसरे जन्ममें तुम हुई अदिति और वसुदेव हुए कश्यप। उस समय भी मैं तुम्हारा पुत्र हुआ। मेरा नाम था 'उपेन्द्र'। शरीर छोटा होनेके कारण लोग मुझे 'वामन' भी कहते थे ॥ ४२ ॥ सती देवकी ! तुम्हारे इस तीसरे जन्ममें भी मैं उसी रूपसे फिर तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ * । मेरी वाणी सर्वदा सत्य होती है ॥ ४३ ॥

---

१. रुद्धये० । २. तोर्भद्रे । ३. स्मृतः ।

* भगवान् श्रीकृष्णने विचार किया कि मैंने इनको वर तो यह दे दिया कि मेरे सदृश पुत्र होगा, परन्तु इसको मैं पूरा नहीं कर सकता। क्योंकि वैसा कोई है ही नहीं। किसीको कोई वस्तु देनेकी प्रतिज्ञा करके पूरी न कर सके तो उसके

एतद् वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ।
नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥ ४४

मैंने तुम्हें अपना यह रूप इसलिये दिखला दिया है कि तुम्हें मेरे पूर्व अवतारोंका स्मरण हो जाय। यदि मैं ऐसा नहीं करता, तो केवल मनुष्य-शरीरसे मेरे अवतारकी पहचान नहीं हो पाती ॥ ४४ ॥

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत्[1] ।
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥ ४५

तुम दोनों मेरे प्रति पुत्रभाव तथा निरन्तर ब्रह्मभाव रखना। इस प्रकार वात्सल्य-स्नेह और चिन्तनके द्वारा तुम्हें मेरे परम पदकी प्राप्ति होगी ॥ ४५ ॥

श्रीशुक उवाच

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् इतना कहकर चुप हो गये। अब उन्होंने अपनी योगमायासे पिता-माताके देखते-देखते तुरंत एक साधारण शिशुका रूप धारण कर लिया ॥ ४६ ॥ तब वसुदेवजीने भगवान्‌की प्रेरणासे अपने पुत्रको लेकर सूतिकागृहसे बाहर निकलनेकी इच्छा की। उसी समय नन्दपत्नी यशोदाके गर्भसे उस योगमायाका जन्म हुआ, जो भगवान्‌की शक्ति होनेके कारण उनके समान ही जन्म-रहित है ॥ ४७ ॥ उसी योगमायाने द्वारपाल और पुरवासियोंकी समस्त इन्द्रिय वृत्तियोंकी चेतना हर ली, वे सब-के-सब अचेत होकर सो गये। बंदीगृहके सभी दरवाजे बंद थे। उनमें बड़े-बड़े किवाड़, लोहेकी जंजीरें और ताले जड़े हुए थे। उनके बाहर जाना बड़ा ही कठिन था; परन्तु वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णको गोदमें लेकर ज्यों ही उनके निकट पहुँचे, त्यों ही वे सब दरवाजे आप-से-आप खुल गये * । ठीक वैसे ही, जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार दूर हो जाता है। उस समय बादल धीरे-धीरे गरजकर जलकी फुहारें छोड़ रहे थे। इसलिये शेषजी अपने फनोंसे जलको रोकते हुए भगवान्‌के पीछे-पीछे चलने लगे † ॥ ४८-४९ ॥ उन दिनों बार-बार वर्षा होती रहती थी, इससे यमुनाजी बहुत बढ़ गयी थीं ‡ । उनका प्रवाह

तत्श्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः
सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ।
यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा
या योगमायाजनि नन्दजायया ॥ ४७

तया हतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु
द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि[2] शायितेष्वथ ।
द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया
बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः ॥ ४८

ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते
स्वयं व्यवर्यन्त[3] यथा तमो रवेः ।
ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः
शेषोऽन्वगाद् वारि निवारयन् फणैः ॥ ४९

समान तिगुनी वस्तु देनी चाहिये। मेरे सदृश पदार्थके समान मैं ही हूँ। अतएव मैं अपनेको तीन बार इनका पुत्र बनाऊँगा।

१. वा पुनः। २. षु च। ३. शीर्यन्त।

* जिनके नाम-श्रवणमात्रसे असंख्य जन्मार्जित प्रारब्ध-बन्धन ध्वस्त हो जाते हैं, वे ही प्रभु जिसकी गोदमें आ गये, उसकी हथकड़ी-बेड़ी खुल जाय, इसमें क्या आश्चर्य है ?

† बलरामजीने विचार किया कि मैं बड़ा भाई बना तो क्या, सेवा ही मेरा मुख्य धर्म है। इसलिये वे अपने शेषरूपसे श्रीकृष्णके छत्र बनकर जलका निवारण करते हुए चले। उन्होंने सोचा कि यदि मेरे रहते मेरे स्वामीको वर्षासे कष्ट पहुँचा तो मुझे धिक्कार है। इसलिये उन्होंने अपना सिर आगे कर दिया। अथवा उन्होंने यह सोचा कि ये विष्णुपद (आकाश) वासी मेघ परोपकारके लिये अधःपतित होना स्वीकार कर लेते हैं, इसलिये बलिके समान सिरसे वन्दनीय हैं।

‡ १. श्रीकृष्ण शिशुको अपनी ओर आते देखकर यमुनाजीने विचार किया—अहा! जिनके चरणोंकी धूलि सत्पुरुषोंके

मघोनि वर्षत्यसकृद् यमानुजा
गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ।
भयानकावर्तशताकुला नदी
मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः ॥ ५०

नन्दव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान्
गोपान् प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया ।
सुतं[1] यशोदाशयने निधाय त-
त्सुतामुपादाय[2] पुनर्गृहानगात् ॥ ५१

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् ।
प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥ ५२

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत[3] ।
न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥ ५३

गहरा और तेज हो गया था। तरल तरङ्गोंके कारण जलपर फेन-ही-फेन हो रहा था। सैकड़ों भयानक भँवर पड़ रहे थे। जैसे सीतापति भगवान् श्रीरामजीको समुद्रने मार्ग दे दिया था, वैसे ही यमुनाजीने भगवान्‌को मार्ग दे दिया * ॥ ५० ॥ वसुदेवजीने नन्दबाबाके गोकुलमें जाकर देखा कि सब-के-सब गोप नींदसे अचेत पड़े हुए हैं। उन्होंने अपने पुत्रको यशोदाजीकी शय्यापर सुला दिया और उनकी नवजात कन्या लेकर वे बंदीगृहमें लौट आये ॥ ५१ ॥ जेलमें पहुँचकर वसुदेवजीने उस कन्याको देवकीकी शय्यापर सुला दिया और अपने पैरोंमें बेड़ियाँ डाल लीं तथा पहलेकी तरह वे बंदीगृहमें बंद हो गये ॥ ५२ ॥ उधर नन्दपत्नी यशोदाजीको इतना तो मालूम हुआ कि कोई सन्तान हुई है, परन्तु वे यह न जान सकीं कि पुत्र है या पुत्री। क्योंकि एक तो उन्हें बड़ा परिश्रम हुआ था और दूसरे योगमायाने उन्हें अचेत कर दिया था † ॥ ५३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे[4]
कृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

१. शिशुं। २. सुतां समादा०। ३. पुत्रम०। ४. कृष्णावतारे तृतीयो०।

मानस-ध्यानका विषय है, वे ही आज मेरे तटपर आ रहे हैं। वे आनन्द और प्रेमसे भर गयीं, आँखोंसे इतने आँसू निकले कि बाढ़ आ गयी।

२. मुझे यमराजकी बहिन समझकर श्रीकृष्ण अपनी आँख न फेर लें, इसलिये वे अपने विशाल जीवनका प्रदर्शन करने लगीं।

३. ये गोपालनके लिये गोकुलमें जा रहे हैं, ये सहस्र-सहस्र लहरियाँ गौएँ ही तो हैं। ये उन्हींके समान इनका भी पालन करें।

४. एक कालियनाग तो मुझमें पहलेसे ही है, यह दूसरे शेषनाग आ रहे हैं। अब मेरी क्या गति होगी—यह सोचकर यमुनाजी अपने थपेड़ोंसे उनका निवारण करनेके लिये बढ़ गयीं।

* १. एकाएक यमुनाजीके मनमें विचार आया कि मेरे अगाध जलको देखकर कहीं श्रीकृष्ण यह न सोच ले कि मैं इसमें खेलूँगा कैसे, इसलिये वे तुरंत कहीं कण्ठभर, कहीं नाभिभर और कहीं घुटनोंतक जलवाली हो गयीं।

२. जैसे दुःखी मनुष्य दयालु पुरुषके सामने अपना मन खोलकर रख देता है, वैसे ही कालियनागसे त्रस्त अपने हृदयका दुःख निवेदन कर देनेके लिये यमुनाजीने भी अपना दिल खोलकर श्रीकृष्णके सामने रख दिया।

३. मेरी नीरसता देखकर श्रीकृष्ण कहीं जलक्रीडा करना और पटरानी बनाना अस्वीकार न कर दें, इसलिये वे उच्छृङ्खलता छोड़कर बड़ी विनयसे अपने हृदयकी सङ्कोचपूर्ण रसरीति प्रकट करने लगीं।

४. जब इन्होंने सूर्यवंशमें रामावतार ग्रहण किया, तब मार्ग न देनेपर चन्द्रमाके पिता समुद्रको बाँध दिया था। अब ये चन्द्रवंशमें प्रकट हुए हैं और मैं सूर्यकी पुत्री हूँ। यदि मैं इन्हें मार्ग न दूँगी तो ये मुझे भी बाँध देंगे। इस डरसे मानो यमुनाजी दो भागोंमें बँट गयीं।

५. सत्पुरुष कहते हैं कि हृदयमें भगवान्‌के आ जानेपर अलौकिक सुख होता है। मानो उसीका उपभोग करनेके लिये यमुनाजीने भगवान्‌को अपने भीतर ले लिया।

६. मेरा नाम कृष्णा, मेरा जल कृष्ण, मेरे बाहर श्रीकृष्ण हैं। फिर मेरे हृदयमें ही उनकी स्फूर्ति क्यों न हो ? ऐसा सोचकर मार्ग देनेके बहाने यमुनाजीने श्रीकृष्णको अपने हृदयमें ले लिया।

† भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रसङ्गमें यह प्रकट किया कि जो मुझे प्रेमपूर्वक अपने हृदयमें धारण करता है, उसके बन्धन खुल जाते हैं, जेलसे छुटकारा मिल जाता है, बड़े-बड़े फाटक टूट जाते हैं, पहरेदारोंका पता नहीं चलता, भव-नदीका जल सूख जाता है, गोकुल (इन्द्रिय-समुदाय) की वृत्तियाँ लुप्त हो जाती हैं और माया हाथमें आ जाती है।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

कंसके हाथसे छूटकर योगमायाका आकाशमें जाकर भविष्यवाणी करना

श्रीशुक उवाच

बहिरन्तःपुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ।
ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १

ते तु तूर्णमुपव्रज्य[1] देवक्या गर्भजन्म तत् ।
आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥ २

स तल्पात् तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ।
सूतीगृहमगात् तूर्णं प्रस्खलन् मुक्तमूर्धजः ॥ ३

तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ।
स्नुषेयं तव कल्याण[2] स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥ ४

बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः ।
त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥ ५

नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ।
दातुमर्हसि मन्दाया अङ्गेमां चरमां प्रजाम् ॥ ६

श्रीशुक उवाच

उपगुह्यात्मजामेवं रुदत्या दीनदीनवत् ।
याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७

तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ।
अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥ ८

सा तद्धस्तात् समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता ।
अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब वसुदेवजी लौट आये, तब नगरके बाहरी और भीतरी सब दरवाजे अपने-आप ही पहलेकी तरह बंद हो गये। इसके बाद नवजात शिशुके रोनेकी ध्वनि सुनकर द्वारपालोंकी नींद टूटी ॥ १ ॥ वे तुरन्त भोजराज कंसके पास गये और देवकीको सन्तान होनेकी बात कही। कंस तो बड़ी आकुलता और घबराहटके साथ इसी बातकी प्रतीक्षा कर रहा था ॥ २ ॥ द्वारपालोंकी बात सुनते ही वह झटपट पलँगसे उठ खड़ा हुआ और बड़ी शीघ्रतासे सूतिकागृहकी ओर झपटा। इस बार तो मेरे कालका ही जन्म हुआ है, यह सोचकर वह विह्वल हो रहा था और यही कारण है कि उसे इस बातका भी ध्यान न रहा कि उसके बाल बिखरे हुए हैं। रास्तेमें कई जगह वह लड़खड़ाकर गिरते-गिरते बचा ॥ ३ ॥ बंदीगृहमें पहुँचनेपर सती देवकीने बड़े दुःख और करुणाके साथ अपने भाई कंससे कहा—'मेरे हितैषी भाई ! यह कन्या तो तुम्हारी पुत्रवधूके समान है। स्त्रीजातिकी है; तुम्हें स्त्रीकी हत्या कदापि नहीं करनी चाहिये ॥ ४ ॥ भैया ! तुमने दैववश मेरे बहुत-से अग्निके समान तेजस्वी बालक मार डाले। अब केवल यही एक कन्या बची है, इसे तो मुझे दे दो ॥ ५ ॥ अवश्य ही मैं तुम्हारी छोटी बहिन हूँ। मेरे बहुत-से बच्चे मर गये हैं, इसलिये मैं अत्यन्त दीन हूँ। मेरे प्यारे और समर्थ भाई ! तुम मुझ मन्दभागिनीको यह अन्तिम सन्तान अवश्य दे दो' ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कन्याको अपनी गोदमें छिपाकर देवकीजीने अत्यन्त दीनताके साथ रोते-रोते याचना की। परन्तु कंस बड़ा दुष्ट था। उसने देवकीजीको झिड़ककर उनके हाथसे वह कन्या छीन ली ॥ ७ ॥ अपनी उस नन्हीं-सी नवजात भानजीके पैर पकड़कर कंसने उसे बड़े जोरसे एक चट्टानपर दे मारा। स्वार्थने उसके हृदयसे सौहार्दको समूल उखाड़ फेंका था ॥ ८ ॥ परन्तु श्रीकृष्णकी वह छोटी बहिन साधारण कन्या तो थी नहीं, देवी थी; उसके हाथसे छूटकर तुरन्त आकाशमें चली गयी और अपने बड़े-बड़े आठ हाथोंमें आयुध लिये हुए दीख पड़ी ॥ ९ ॥

---

१. शीघ्रमु० । २. णी ।

दिव्यस्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता ।
धनुःशूलेषुचर्मासिशङ्खचक्रगदाधरा ॥ १०

सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ।
उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ।
यत्र क्व[1] वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥ १२

इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ।
बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥ १३

तयाभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ।
देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥ १४

अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पाप्मना ।
पुरुषाद इवापत्यं बहवो[2] हिंसिताः सुताः ॥ १५

स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत् खलः ।
कांल्लोकान् वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥ १६

दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् ।
यद्विश्रम्भादहं पापः स्वसुर्निहतवाञ्छिशून् ॥ १७

मा शोचतं महाभागावात्मजान् स्वकृतम्भुजः[3] ।
जन्तवो न सदैकत्र दैवाधीनास्तदासते ॥ १८

भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्यपयान्ति च ।
नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥ १९

वह दिव्य माला, वस्त्र, चन्दन और मणिमय आभूषणोंसे विभूषित थी । उसके हाथोंमें धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, तलवार, शङ्ख, चक्र और गदा—ये आठ आयुध थे ॥ १० ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और नागगण बहुत-सी भेंटकी सामग्री समर्पित करके उसकी स्तुति कर रहे थे । उस समय देवीने कंससे यह कहा— ॥ ११ ॥ 'रे मूर्ख ! मुझे मारनेसे तुझे क्या मिलेगा ? तेरे पूर्वजन्मका शत्रु तुझे मारनेके लिये किसी स्थानपर पैदा हो चुका है । अब तू व्यर्थ निर्दोष बालकोंकी हत्या न किया कर' ॥ १२ ॥ कंससे इस प्रकार कहकर भगवती योगमाया वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं और पृथ्वीके अनेक स्थानोंमें विभिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हुईं ॥ १३ ॥

देवीकी यह बात सुनकर कंसको असीम आश्चर्य हुआ । उसने उसी समय देवकी और वसुदेवको कैदसे छोड़ दिया और बड़ी नम्रतासे उनसे कहा— ॥ १४ ॥ 'मेरी प्यारी बहिन और बहनोईजी ! हाय-हाय, मैं बड़ा पापी हूँ । राक्षस जैसे अपने ही बच्चोंको मार डालता है, वैसे ही मैंने तुम्हारे बहुत-से लड़के मार डाले । इस बातका मुझे बड़ा खेद है * ॥ १५ ॥ मैं इतना दुष्ट हूँ कि करुणाका तो मुझमें लेश भी नहीं है । मैंने अपने भाई-बन्धु और हितैषियोंतकका त्याग कर दिया । पता नहीं, अब मुझे किस नरकमें जाना पड़ेगा । वास्तवमें तो मैं ब्रह्मघातीके समान जीवित होनेपर भी मुर्दा ही हूँ ॥ १६ ॥ केवल मनुष्य ही झूठ नहीं बोलते, विधाता भी झूठ बोलते हैं । उसीपर विश्वास करके मैंने अपनी बहिनके बच्चे मार डाले । ओह ! मैं कितना पापी हूँ ॥ १७ ॥ तुम दोनों महात्मा हो । अपने पुत्रोंके लिये शोक मत करो । उन्हें तो अपने कर्मका ही फल मिला है । सभी प्राणी प्रारब्धके अधीन हैं । इसीसे वे सदा-सर्वदा एक साथ नहीं रह सकते ॥ १८ ॥ जैसे मिट्टीके बने हुए पदार्थ बनते और बिगड़ते रहते हैं, परन्तु मिट्टीमें कोई अदल-बदल नहीं होती—वैसे ही शरीरका तो बनना-बिगड़ना होता ही रहता है; परन्तु आत्मापर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ॥ १९ ॥

---

१. क्वचिद्वा० । २. सुहृदो । ३. सुकृतं ।

* जिनके गर्भमें भगवान्‌ने निवास किया, जिन्हें भगवान्‌के दर्शन हुए, उन देवकी-वसुदेवके दर्शनका ही यह फल है कि कंसके हृदयमें विनय, विचार, उदारता आदि सद्गुणोंका उदय हो गया । परन्तु जबतक वह उनके सामने रहा तभीतक ये सद्गुण रहे । दुष्ट मन्त्रियोंके बीचमें जाते ही वह फिर ज्यों-का-त्यों हो गया !

यथानेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः ।
देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्तते ॥ २०

तस्माद् भद्रे स्वतनयान् मया व्यापादितानपि ।
मानुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः ॥ २१

यावद्धतोऽस्मि हन्तास्मीत्यात्मानं मन्यतेऽस्वदृक्[1] ।
तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥ २२

क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः[2] ।
इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्रोरथाग्रहीत् ॥ २३

मोचयामास[3] निगडाद् विश्रब्धः कन्यकागिरा ।
देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४

भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षान्त्वा रोषं च देवकी ।
व्यसृजद् वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥ २५

एवमेतन्महाभाग[4] यथा वदसि देहिनाम् ।
अज्ञानप्रभवाहंधीः स्वपरेति भिदा यतः ॥ २६

शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ।
मिथो घ्नन्तं न पश्यन्ति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥ २७

श्रीशुक उवाच

कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः ।
देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद् गृहम् ॥ २८

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः ।
तेभ्य आचष्ट तत् सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥ २९

जो लोग इस तत्त्वको नहीं जानते, वे इस अनात्मा शरीरको ही आत्मा मान बैठते हैं। यही उलटी बुद्धि अथवा अज्ञान है। इसीके कारण जन्म और मृत्यु होते हैं। और जबतक यह अज्ञान नहीं मिटता, तबतक सुख-दुःखरूप संसारसे छुटकारा नहीं मिलता ॥ २० ॥ मेरी प्यारी बहिन ! यद्यपि मैंने तुम्हारे पुत्रोंको मार डाला है, फिर भी तुम उनके लिये शोक न करो। क्योंकि सभी प्राणियोंको विवश होकर अपने कर्मोंका फल भोगना पड़ता है ॥ २१ ॥ अपने स्वरूपको न जाननेके कारण जीव जबतक यह मानता रहता है कि 'मैं मारनेवाला हूँ या मारा जाता हूँ', तबतक शरीरके जन्म और मृत्युका अभिमान करनेवाला वह अज्ञानी बाध्य और बाधक-भावको प्राप्त होता है। अर्थात् वह दूसरोंको दुःख देता है और स्वयं दुःख भोगता है ॥ २२ ॥ मेरी यह दुष्टता तुम दोनों क्षमा करो; क्योंकि तुम बड़े ही साधुस्वभाव और दीनोंके रक्षक हो।' ऐसा कहकर कंसने अपनी बहिन देवकी और वसुदेवजीके चरण पकड़ लिये। उसकी आँखोंसे आँसू बह-बहकर मुँहतक आ रहे थे ॥ २३ ॥ इसके बाद उसने योगमायाके वचनोंपर विश्वास करके देवकी और वसुदेवको कैदसे छोड़ दिया और वह तरह-तरहसे उनके प्रति अपना प्रेम प्रकट करने लगा ॥ २४ ॥ जब देवकीजीने देखा कि भाई कंसको पश्चात्ताप हो रहा है, तब उन्होंने उसे क्षमा कर दिया। वे उसके पहले अपराधोंको भूल गयीं और वसुदेवजीने हँसकर कंससे कहा— ॥ २५ ॥ 'मनस्वी कंस ! आप जो कहते हैं, वह ठीक वैसा ही है। जीव अज्ञानके कारण ही शरीर आदिको 'मैं' मान बैठते हैं। इसीसे अपने परायेका भेद हो जाता है ॥ २६ ॥ और यह भेददृष्टि हो जानेपर तो वे शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह और मदसे अन्धे हो जाते हैं। फिर तो उन्हें इस बातका पता ही नहीं रहता कि सबके प्रेरक भगवान् ही एक भावसे दूसरे भावका, एक वस्तुसे दूसरी वस्तुका नाश करा रहे हैं' ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब वसुदेव और देवकीने इस प्रकार प्रसन्न होकर निष्कपटभावसे कंसके साथ बातचीत की, तब उनसे अनुमति लेकर वह अपने महलमें चला गया ॥ २८ ॥ वह रात्रि बीत जानेपर कंसने अपने मन्त्रियोंको बुलाया और योगमायाने जो कुछ कहा था, वह सब उन्हें कह सुनाया ॥ २९ ॥

---

१. सुदृक् । २. बन्धुव० । ३. क्षया० । ४. राज ।

आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ।
देवान् प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥३०

एवं चेत्तर्हि भोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु ।
अनिर्दशान् निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥३१

किमुद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समरभीरवः ।
नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥३२

अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः ।
जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥३३

केचित् प्राञ्जलयो दीना[1] न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ।
मुक्तकच्छशिखाः केचिद् भीताः स्म इति वादिनः ॥३४

न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान् विरथान् भयसंवृतान् ।
हंस्यन्यासक्तविमुखान् भग्नचापानयुध्यतः ॥३५

किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः ।
रहोजुषा किं[2] हरिणा शम्भुना वा वनौकसा ।
किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥३६

तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ।
ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्ष्वास्माननुव्रतान् ॥३७

यथाऽऽमयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभि-
र्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ।
यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा
रिपुर्महान् बद्धबलो न चाल्यते ॥३८

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ।
तस्य च ब्रह्म गोविप्रास्तपो यज्ञाः सदक्षिणाः ॥३९

कंसके मन्त्री पूर्णतया नीतिनिपुण नहीं थे। दैत्य होनेके कारण स्वभावसे ही वे देवताओंके प्रति शत्रुताका भाव रखते थे। अपने स्वामी कंसकी बात सुनकर वे देवताओंपर और भी चिढ़ गये और कंससे कहने लगे—॥ ३० ॥ 'भोजराज ! यदि ऐसी बात है तो हम आज ही बड़े-बड़े नगरोंमें, छोटे-छोटे गाँवोंमें, अहीरोंकी बस्तियोंमें और दूसरे स्थानोंमें जितने बच्चे हुए हैं, वे चाहे दस दिनसे अधिकके हों या कमके, सबको आज ही मार डालेंगे ॥ ३१ ॥ समरभीरु देवगण युद्धोद्योग करके ही क्या करेंगे ? वे तो आपके धनुषकी टङ्कार सुनकर ही सदा-सर्वदा घबराये रहते हैं ॥ ३२ ॥ जिस समय युद्धभूमिमें आप चोट-पर-चोट करने लगते हैं, बाण-वर्षासे घायल होकर अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये समराङ्गण छोड़कर देवतालोग पलायन-परायण होकर इधर-उधर भाग जाते हैं ॥ ३३ ॥ कुछ देवता तो अपने अस्त्र-शस्त्र जमीनपर डाल देते हैं और हाथ जोड़कर आपके सामने अपनी दीनता प्रकट करने लगते हैं। कोई-कोई अपनी चोटीके बाल तथा कच्छ खोलकर आपकी शरणमें आकर कहते हैं कि—'हम भयभीत हैं, हमारी रक्षा कीजिये' ॥ ३४ ॥ आप उन शत्रुओंको नहीं मारते जो अस्त्र-शस्त्र भूल गये हों, जिनका रथ टूट गया हो, जो डर गये हों, जो लोग युद्ध छोड़कर अन्यमनस्क हो गये हों, जिनका धनुष टूट गया हो या जिन्होंने युद्धसे अपना मुख मोड़ लिया हो—उन्हें भी आप नहीं मारते ॥ ३५ ॥ देवता तो बस वहीं वीर बनते हैं, जहाँ कोई लड़ाई-झगड़ा न हो। रणभूमिके बाहर वे बड़ी-बड़ी डींग हाँकते हैं। उनसे तथा एकान्तवासी विष्णु, वनवासी शङ्कर, अल्पवीर्य इन्द्र और तपस्वी ब्रह्मासे भी हमें क्या भय हो सकता है ॥ ३६ ॥ फिर भी देवताओंकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये—ऐसी हमारी राय है। क्योंकि हैं तो वे शत्रु ही। इसलिये उनकी जड़ उखाड़ फेंकनेके लिये आप हम-जैसे विश्वासपात्र सेवकोंको नियुक्त कर दीजिये ॥ ३७ ॥ जब मनुष्यके शरीरमें रोग हो जाता है और उसकी चिकित्सा नहीं की जाती—उपेक्षा कर दी जाती है, तब रोग अपनी जड़ जमा लेता है और फिर वह असाध्य हो जाता है। अथवा जैसे इन्द्रियोंकी उपेक्षा कर देनेपर उनका दमन असम्भव हो जाता है, वैसे ही यदि पहले शत्रुकी उपेक्षा कर दी जाय और वह अपना पाँव जमा ले, तो फिर उसको हराना कठिन हो जाता है ॥ ३८ ॥ देवताओंकी जड़ है विष्णु और वह वहाँ रहता है, जहाँ सनातनधर्म है। सनातनधर्मकी जड़ हैं—वेद, गौ, ब्राह्मण, तपस्या और वे यज्ञ, जिनमें दक्षिणा दी जाती है ॥ ३९ ॥

१. भीता। २. वा।

तस्मात् सर्वात्मना राजन् ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ।
तपस्विनो यज्ञशीलान् गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥ ४०

विप्रा गावश्च वेदाश्च[1] तपः सत्यं दमः शमः ।
श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥ ४१

स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड् गुहाशयः ।
तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः ।
अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२

श्रीशुक उवाच

एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह सम्मन्त्र्य दुर्मतिः ।
ब्रह्महिंसां हितं[2] मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥ ४३

सन्दिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ।
कामरूपधरान् दिक्षु दानवान् गृहमाविशत् ॥ ४४

ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः ।
सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥ ४५

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६

इसलिये भोजराज ! हमलोग वेदवादी ब्राह्मण, तपस्वी, याज्ञिक और यज्ञके लिये घी आदि हविष्य पदार्थ देनेवाली गायोंका पूर्णरूपसे नाश कर डालेंगे ॥ ४० ॥ ब्राह्मण, गौ, वेद, तपस्या, सत्य, इन्द्रियदमन, मनोनिग्रह, श्रद्धा, दया, तितिक्षा और यज्ञ विष्णुके शरीर हैं ॥ ४१ ॥ वह विष्णु ही सारे देवताओंका स्वामी तथा असुरोंका प्रधान द्वेषी है। परन्तु वह किसी गुफामें छिपा रहता है। महादेव, ब्रह्मा और सारे देवताओंकी जड़ वही है। उसको मार डालनेका उपाय यह है कि ऋषियोंको मार डाला जाय' ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक तो कंसकी बुद्धि स्वयं ही बिगड़ी हुई थी; फिर उसे मन्त्री ऐसे मिले थे, जो उससे भी बढ़कर दुष्ट थे। इस प्रकार उनसे सलाह करके कालके फंदेमें फँसे हुए असुर कंसने यही ठीक समझा कि ब्राह्मणोंको ही मार डाला जाय ॥ ४३ ॥ उसने हिंसाप्रेमी राक्षसोंको संतपुरुषोंकी हिंसा करनेका आदेश दे दिया। वे इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। जब वे इधर-उधर चले गये, तब कंसने अपने महलमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ उन असुरोंकी प्रकृति थी रजोगुणी। तमोगुणके कारण उनका चित्त उचित और अनुचितके विवेकसे रहित हो गया था। उनके सिरपर मौत नाच रही थी। यही कारण है कि उन्होंने सन्तोंसे द्वेष किया ॥ ४५ ॥ परीक्षित् ! जो लोग महान् सन्त पुरुषोंका अनादर करते हैं, उनका वह कुकर्म उनकी आयु, लक्ष्मी, कीर्ति, धर्म, लोक-परलोक, विषय-भोग और सब-के-सब कल्याणके साधनोंको नष्ट कर देता है ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे[3] चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

गोकुलमें भगवान्‌का जन्ममहोत्सव

श्रीशुक उवाच

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलङ्कृतः ॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! नन्दबाबा बड़े मनस्वी और उदार थे। पुत्रका जन्म होनेपर तो उनका हृदय विलक्षण आनन्दसे भर गया। उन्होंने स्नान किया और पवित्र होकर सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये।

१. देवाश्च । २. हितं । ३. असुरमन्त्रणं नाम चतु० ।

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।
कारयामास विधिवत्[1] पितृदेवार्चनं तथा ॥ २

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलङ्कृते ।
तिलाद्रीन् सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥ ३

कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ।
शुध्यन्ति दानैः सन्तुष्ट्या द्रव्याण्यात्माऽऽत्मविद्यया ॥ ४

सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधवन्दिनः ।
गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः ॥ ५

व्रजः सम्मृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः ।
चित्रध्वजपताकास्त्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥ ६

गावो वृषा[2] वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ।
विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः ॥ ७

महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः ।
गोपाः समाययू राजन् नानोपायनपाणयः ॥ ८

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ।
आत्मानं भूषयाञ्चक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ॥ ९

नवकुङ्कुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः ।
बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥ १०

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्य-
श्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ।
नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजु-
र्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ॥ ११

फिर वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलवाकर स्वस्तिवाचन और अपने पुत्रका जातकर्म-संस्कार करवाया। साथ ही देवता और पितरोंकी विधिपूर्वक पूजा भी करवायी ॥ १-२ ॥ उन्होंने ब्राह्मणोंको वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जित दो लाख गौएँ दान कीं। रत्नों और सुनहले वस्त्रोंसे ढके हुए तिलके सात पहाड़ दान किये ॥ ३ ॥ (संस्कारोंसे ही गर्भशुद्धि होती है—यह प्रदर्शित करनेके लिये अनेक दृष्टान्तोंका उल्लेख करते हैं—) समयसे (नूतनजल, अशुद्ध भूमि आदि), स्नानसे (शरीर आदि), प्रक्षालनसे (वस्त्रादि), संस्कारोंसे (गर्भादि), तपस्यासे (इन्द्रियादि), यज्ञसे (ब्राह्मणादि), दानसे (धन-धान्यादि) और संतोषसे (मन आदि) द्रव्य शुद्ध होते हैं। परन्तु आत्माकी शुद्धि तो आत्मज्ञानसे ही होती है ॥ ४ ॥ उस समय ब्राह्मण, सूत,[1] मागध[2] और वंदीजन[3] मङ्गलमय आशीर्वाद देने तथा स्तुति करने लगे। गायक गाने लगे। भेरी और दुन्दुभियाँ बार-बार बजने लगीं ॥ ५ ॥ व्रजमण्डलके सभी घरोंके द्वार, आँगन और भीतरी भाग झाड़-बुहार दिये गये; उनमें सुगन्धित जलका छिड़काव किया गया; उन्हें चित्र-विचित्र ध्वजा-पताका, पुष्पोंकी मालाओं, रंग-बिरंगे वस्त्र और पल्लवोंकी बन्दनवारोंसे सजाया गया ॥ ६ ॥ गाय, बैल और बछड़ोंके अङ्गोंमें हल्दी-तेलका लेप कर दिया गया और उन्हें गेरू आदि रंगीन धातुएँ, मोरपंख, फूलोंके हार, तरह-तरहके सुन्दर वस्त्र और सोनेकी जंजीरोंसे सजा दिया गया ॥ ७ ॥ परीक्षित्! सभी ग्वाल बहुमूल्य वस्त्र, गहने, अँगरखे और पगड़ियोंसे सुसज्जित होकर और अपने हाथोंमें भेंटकी बहुत-सी सामग्रियाँ ले-लेकर नन्दबाबाके घर आये ॥ ८ ॥

यशोदाजीके पुत्र हुआ है, यह सुनकर गोपियोंको भी बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, आभूषण और अञ्जन आदिसे अपना शृङ्गार किया ॥ ९ ॥ गोपियोंके मुखकमल बड़े ही सुन्दर जान पड़ते थे। उनपर लगी हुई कुङ्कुम ऐसी लगती मानो कमलकी केशर हो। उनके नितम्ब बड़े-बड़े थे। वे भेंटकी सामग्री ले-लेकर जल्दी-जल्दी यशोदाजीके पास चलीं। उस समय उनके पयोधर हिल रहे थे ॥ १० ॥ गोपियोंके कानोंमें चमकती हुई मणियोंके कुण्डल झिलमिला रहे थे। गलेमें सोनेके हार (हैकल या हुमेल) जगमगा रहे थे। वे बड़े सुन्दर-सुन्दर रंग-बिरंगे वस्त्र पहने हुए थीं। मार्गमें उनकी चोटियोंमें गुँथे हुए फूल बरसते जा रहे थे। हाथोंमें जड़ाऊ कंगन अलग ही चमक रहे थे। उनके कानोंके कुण्डल, पयोधर और हार हिलते जाते थे।

---

१. धिना पितृ० । २. षाः सवत्साश्च हरि० ।

१. पौराणिक। २. वंशका वर्णन करनेवाले। ३. समयानुसार उक्तियोंसे स्तुति करनेवाले भाट। जैसा कि कहा है—
'सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसकाः। वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः ॥'

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति[1] बालके ।
हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः ॥ १२

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ।
कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य[2] व्रजमागते ॥ १३

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः ।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥ १४

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कारगोधनम्[3] ।
सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥ १५

तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ।
विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥ १६

रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता ।
व्यचरद् दिव्यवासःस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥ १७

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥ १८

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥ १९

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम् ।
ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥ २०

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम् ।
प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥ २१

पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वानामयमादृतः[4] ।
प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशाम्पते ॥ २२

इस प्रकार नन्दबाबाके घर जाते समय उनकी शोभा बड़ी अनूठी जान पड़ती थी ॥ ११ ॥ नन्दबाबाके घर जाकर वे नवजात शिशुको आशीर्वाद देतीं 'यह चिरजीवी हो, भगवन्! इसकी रक्षा करो।' और लोगोंपर हल्दी-तेलसे मिला हुआ पानी छिड़क देतीं तथा ऊँचे स्वरसे मङ्गलगान करती थीं ॥ १२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जगत्के एकमात्र स्वामी हैं। उनके ऐश्वर्य, माधुर्य, वात्सल्य—सभी अनन्त हैं। वे जब नन्दबाबाके व्रजमें प्रकट हुए, उस समय उनके जन्मका महान् उत्सव मनाया गया। उसमें बड़े-बड़े विचित्र और मङ्गलमय बाजे बजाये जाने लगे ॥ १३ ॥ आनन्दसे मतवाले होकर गोपगण एक-दूसरेपर दही, दूध, घी और पानी उड़ेलने लगे। एक-दूसरेके मुँहपर मक्खन मलने लगे और मक्खन फेंक-फेंककर आनन्दोत्सव मनाने लगे ॥ १४ ॥ नन्दबाबा स्वभावसे ही परम उदार और मनस्वी थे। उन्होंने गोपोंको बहुत-से वस्त्र, आभूषण और गौएँ दीं। सूत-मागध-वंदीजनों, नृत्य, वाद्य आदि विद्याओंसे अपना जीवन-निर्वाह करनेवालों तथा दूसरे गुणीजनोंको भी नन्दबाबाने प्रसन्नतापूर्वक उनकी मुँहमाँगी वस्तुएँ देकर उनका यथोचित सत्कार किया। यह सब करनेमें उनका उद्देश्य यही था कि इन कर्मोंसे भगवान् विष्णु प्रसन्न हों और मेरे इस नवजात शिशुका मङ्गल हो ॥ १५-१६ ॥ नन्दबाबाके अभिनन्दन करनेपर परम सौभाग्यवती रोहिणीजी दिव्य वस्त्र, माला और गलेके भाँति-भाँतिके गहनोंसे सुसज्जित होकर गृहस्वामिनी-की भाँति आने-जानेवाली स्त्रियोंका सत्कार करती हुई विचर रही थीं ॥ १७ ॥ परीक्षित्! उसी दिनसे नन्दबाबाके व्रजमें सब प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियाँ अठखेलियाँ करने लगीं और भगवान् श्रीकृष्णके निवास तथा अपने स्वाभाविक गुणोंके कारण वह लक्ष्मीजीका क्रीडास्थल बन गया ॥ १८ ॥

परीक्षित्! कुछ दिनोंके बाद नन्दबाबाने गोकुलकी रक्षाका भार तो दूसरे गोपोंको सौंप दिया और वे स्वयं कंसका वार्षिक कर चुकानेके लिये मथुरा चले गये ॥ १९ ॥ जब वसुदेवजीको यह मालूम हुआ कि हमारे भाई नन्दजी मथुरामें आये हैं और राजा कंसको उसका कर भी दे चुके हैं, तब वे जहाँ नन्दबाबा ठहरे हुए थे, वहाँ गये ॥ २० ॥ वसुदेवजीको देखते ही नन्दजी सहसा उठकर खड़े हो गये मानो मृतक शरीरमें प्राण आ गया हो। उन्होंने बड़े प्रेमसे अपने प्रियतम वसुदेवजीको दोनों हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लिया। नन्दबाबा उस समय प्रेमसे विह्वल हो रहे थे ॥ २१ ॥ परीक्षित्! नन्दबाबाने वसुदेवजीका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। वे आदरपूर्वक आरामसे बैठ गये। उस समय उनका चित्त अपने पुत्रोंमें लग रहा था। वे नन्दबाबासे कुशल-

१. जीवेति । २. नन्दव्रजमुपेयुषि । ३. धनैः । ४. मात्मनः ।

दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ।
प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत ॥ २३

दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन् वर्तमानः पुनर्भवः ।
उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥ २४

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ।
ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥ २५

कच्चित् पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम् ।
बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः ॥ २६

भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ।
तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७

पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः ।
न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥ २८

नन्द उवाच

अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ।
एकावशिष्टावरजा कन्या सापि दिवं गता ॥ २९

नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ।
अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥ ३०

वसुदेव उवाच

करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे[1] दृष्टा वयं च वः ।
नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युपाताश्च गोकुले ॥ ३१

मङ्गल पूछकर कहने लगे ॥ २२ ॥

[वसुदेवजीने कहा—] 'भाई ! तुम्हारी अवस्था ढल चली थी और अबतक तुम्हें कोई सन्तान नहीं हुई थी । यहाँतक कि अब तुम्हें सन्तानकी कोई आशा भी न थी । यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि अब तुम्हें सन्तान प्राप्त हो गयी ॥ २३ ॥ यह भी बड़े आनन्दका विषय है कि आज हमलोगोंका मिलना हो गया । अपने प्रेमियोंका मिलना भी बड़ा दुर्लभ है । इस संसारका चक्र ही ऐसा है । इसे तो एक प्रकारका पुनर्जन्म ही समझना चाहिये ॥ २४ ॥ जैसे नदीके प्रबल प्रवाहमें बहते हुए बेड़े और तिनके सदा एक साथ नहीं रह सकते, वैसे ही सगे-सम्बन्धी और प्रेमियोंका भी एक स्थानपर रहना सम्भव नहीं है—यद्यपि वह सबको प्रिय लगता है । क्योंकि सबके प्रारब्धकर्म अलग-अलग होते हैं ॥ २५ ॥ आजकल तुम जिस महावनमें अपने भाई-बन्धु और स्वजनोंके साथ रहते हो, उसमें जल, घास और लता-पत्रादि तो भरे-पूरे हैं न ? वह वन पशुओंके लिये अनुकूल और सब प्रकारके रोगोंसे तो बचा है ? ॥ २६ ॥ भाई ! मेरा लड़का अपनी मा (रोहिणी) के साथ तुम्हारे व्रजमें रहता है । उसका लालन-पालन तुम और यशोदा करते हो, इसलिये वह तो तुम्हींको अपने पिता-माता मानता होगा । वह अच्छी तरह है न ? ॥ २७ ॥ मनुष्यके लिये वे ही धर्म, अर्थ और काम शास्त्रविहित हैं, जिनसे उसके स्वजनोंको सुख मिले । जिनसे केवल अपनेको ही सुख मिलता है; किन्तु अपने स्वजनोंको दुःख मिलता है, वे धर्म, अर्थ और काम हितकारी नहीं हैं' ॥ २८ ॥

नन्दबाबाने कहा—भाई वसुदेव ! कंसने देवकीके गर्भसे उत्पन्न तुम्हारे कई पुत्र मार डाले । अन्तमें एक सबसे छोटी कन्या बच रही थी, वह भी स्वर्ग सिधार गयी ॥ २९ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि प्राणियोंका सुख-दुःख भाग्यपर ही अवलम्बित है । भाग्य ही प्राणीका एकमात्र आश्रय है । जो जान लेता है कि जीवनके सुख-दुःखका कारण भाग्य ही है, वह उनके प्राप्त होनेपर मोहित नहीं होता ॥ ३० ॥

वसुदेवजीने कहा—भाई ! तुमने राजा कंसको उसका सालाना कर चुका दिया । हम दोनों मिल भी चुके । अब तुम्हें यहाँ अधिक दिन नहीं ठहरना चाहिये; क्योंकि आजकल गोकुलमें बड़े-बड़े उत्पात हो रहे हैं ॥ ३१ ॥

---

१. राज्ञो ।

श्रीशुक उवाच

इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ।
अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब वसुदेवजीने इस प्रकार कहा, तब नन्द आदि गोपोंने उनसे अनुमति ले, बैलोंसे जुते हुए छकड़ोंपर सवार होकर गोकुलकी यात्रा की ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे[1]
नन्दवसुदेवसङ्गमो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

पूतना-उद्धार

श्रीशुक उवाच

नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् ।
हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! नन्दबाबा जब मथुरासे चले, तब रास्तेमें विचार करने लगे कि वसुदेवजीका कथन झूठा नहीं हो सकता । इससे उनके मनमें उत्पात होनेकी आशङ्का हो गयी । तब उन्होंने मन-ही-मन 'भगवान् ही शरण हैं, वे ही रक्षा करेंगे' ऐसा निश्चय किया ॥ १ ॥

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी[2] ।
शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥ २

पूतना नामकी एक बड़ी क्रूर राक्षसी थी । उसका एक ही काम था—बच्चोंको मारना । कंसकी आज्ञासे वह नगर, ग्राम और अहीरोंकी बस्तियोंमें बच्चोंको मारनेके लिये घूमा करती थी ॥ २ ॥

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि[3] स्वकर्मसु ।
कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥ ३

जहाँके लोग अपने प्रतिदिनके कामोंमें राक्षसोंके भयको दूर भगानेवाले भक्तवत्सल भगवान्‌के नाम, गुण और लीलाओंका श्रवण, कीर्तन और स्मरण नहीं करते—वहीं ऐसी राक्षसियोंका बल चलता है ॥ ३ ॥

सा खेचर्येकदोपेत्य[4] पूतना नन्दगोकुलम् ।
योषित्वा मायया ऽऽत्मानं प्राविशत् कामचारिणी ॥ ४

वह पूतना आकाशमार्गसे चल सकती थी और अपनी इच्छाके अनुसार रूप भी बना लेती थी । एक दिन नन्दबाबाके गोकुलके पास आकर उसने मायासे अपनेको एक सुन्दरी युवती बना लिया और गोकुलके भीतर घुस गयी ॥ ४ ॥

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां
बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ।
सुवाससं कम्पितकर्णभूषण-
त्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम् ॥ ५

उसने बड़ा सुन्दर रूप बनाया था । उसकी चोटियोंमें बेलेके फूल गुँथे हुए थे । सुन्दर वस्त्र पहने हुए थी । जब उसके कर्णफूल हिलते थे, तब उनकी चमकसे मुखकी ओर लटकी हुई अलकें और भी शोभायमान हो जाती थीं । उसके नितम्ब और कुच-कलश ऊँचे-ऊँचे थे और कमर पतली थी ॥ ५ ॥

वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितै-
र्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम् ।
अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं
गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥ ६

वह अपनी मधुर मुसकान और कटाक्षपूर्ण चितवनसे व्रजवासियोंका चित्त चुरा रही थी । उस रूपवती रमणीको हाथमें कमल लेकर आते देख गोपियाँ ऐसी उत्प्रेक्षा करने लगीं, मानो स्वयं लक्ष्मीजी अपने पतिका दर्शन करनेके लिये आ रही हैं ॥ ६ ॥

---

१. नन्दवसुदेवसमागमः पञ्च० । २. माकरादि० । ३. धानाश्च । ४. दोत्पत्य ।

बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्
यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम्।
बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं
ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि॥ ७

पूतना बालकोंके लिये ग्रहके समान थी। वह इधर-उधर बालकोंको ढूँढ़ती हुई अनायास ही नन्दबाबाके घरमें घुस गयी। वहाँ उसने देखा कि बालक श्रीकृष्ण शय्यापर सोये हुए हैं। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण दुष्टोंके काल हैं। परन्तु जैसे आग राखकी ढेरीमें अपनेको छिपाये हुए हो, वैसे ही उस समय उन्होंने अपने प्रचण्ड तेजको छिपा रखा था॥ ७॥

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं
चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षणः।
अनन्तमारोपयदङ्कमन्तकं
यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः॥ ८

भगवान् श्रीकृष्ण चर-अचर सभी प्राणियोंके आत्मा हैं। इसलिये उन्होंने उसी क्षण जान लिया कि यह बच्चोंको मार डालनेवाला पूतना-ग्रह है और अपने नेत्र बंद कर लिये।* जैसे कोई पुरुष भ्रमवश सोये हुए साँपको रस्सी समझकर उठा ले, वैसे ही अपने कालरूप भगवान् श्रीकृष्णको पूतनाने अपनी गोदमें उठा लिया॥ ८॥

---

* पूतनाको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने नेत्र बंद कर लिये, इसपर भक्त कवियों और टीकाकारोंने अनेकों प्रकारकी उत्प्रेक्षाएँ की हैं, जिनमें कुछ ये हैं—

१. श्रीमद्वल्लभाचार्यने सुबोधिनीमें कहा है—अविद्या ही पूतना है। भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि मेरी दृष्टिके सामने अविद्या टिक नहीं सकती, फिर लीला कैसे होगी, इसलिये नेत्र बन्द कर लिये।

२. यह पूतना बाल-घातिनी है 'पूतानपि नयति'। यह पवित्र बालकोंको भी ले जाती है। ऐसा जघन्य कृत्य करनेवालीका मुँह नहीं देखना चाहिये, इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

३. इस जन्ममें तो इसने कुछ साधन किया नहीं है। संभव है मुझसे मिलनेके लिये पूर्व जन्ममें कुछ किया हो। मानो पूतनाके पूर्व-पूर्व जन्मोंके साधन देखनेके लिये ही श्रीकृष्णने नेत्र बंद कर लिये।

४. भगवान्‌ने अपने मनमें विचार किया कि मैंने पापिनीका दूध कभी नहीं पिया है। अब जैसे लोग आँख बंद करके चिरायतेका काढ़ा पी जाते हैं, वैसे ही इसका दूध भी पी जाऊँ। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

५. भगवान्‌के उदरमें निवास करनेवाले असंख्य कोटि ब्रह्माण्डोंके जीव यह जानकर घबरा गये कि श्यामसुन्दर पूतनाके स्तनमें लगा हलाहल विष पीने जा रहे हैं। अतः उन्हें समझानेके लिये ही श्रीकृष्णने नेत्र बंद कर लिये।

६. श्रीकृष्णशिशुने विचार किया कि मैं गोकुलमें यह सोचकर आया था कि माखन-मिश्री खाऊँगा। सो छठीके दिन ही विष पीनेका अवसर आ गया। इसलिये आँख बंद करके मानो शङ्करजीका ध्यान किया कि आप आकर अपना अभ्यस्त विष-पान कीजिये, मैं दूध पीऊँगा।

७. श्रीकृष्णके नेत्रोंने विचार किया कि परम स्वतन्त्र ईश्वर इस दुष्टाको अच्छी-बुरी चाहे जो गति दे दें, परन्तु हम दोनों इसे चन्द्रमार्ग अथवा सूर्यमार्ग दोनोंमेंसे एक भी नहीं देंगे। इसलिये उन्होंने अपने द्वार बंद कर लिये।

८. नेत्रोंने सोचा पूतनाके नेत्र हैं तो हमारी जातिके; परन्तु ये इस क्रूर राक्षसीकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इसलिये अपने होनेपर भी ये दर्शनके योग्य नहीं हैं। इसलिये उन्होंने अपनेको पलकोंसे ढक लिया।

९. श्रीकृष्णके नेत्रोंमें स्थित धर्मात्मा निमिने उस दुष्टाको देखना उचित न समझकर नेत्र बंद कर लिये।

१०. श्रीकृष्णके नेत्र राज-हंस हैं। उन्हें बकी पूतनाके दर्शन करनेकी कोई उत्कण्ठा नहीं थी। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

११. श्रीकृष्णने विचार किया कि बाहरसे तो इसने माताका-सा रूप धारण कर रखा है, परन्तु हृदयमें अत्यन्त क्रूरता भरे हुए हैं। ऐसी स्त्रीका मुँह न देखना ही उचित है। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

१२. उन्होंने सोचा कि मुझे निडर देखकर कहीं यह ऐसा न समझ जाय कि इसके ऊपर मेरा प्रभाव नहीं चला और फिर कहीं लौट न जाय। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

१३. बाल-लीलाके प्रारम्भमें पहले-पहल स्त्रीसे ही मुठभेड़ हो गयी, इस विचारसे विरक्तिपूर्वक नेत्र बंद कर लिये।

१४. श्रीकृष्णके मनमें यह बात आयी कि करुणा-दृष्टिसे देखूँगा तो इसे मारूँगा कैसे, और उग्र दृष्टिसे देखूँगा तो यह अभी भस्म हो जायगी। लीलाकी सिद्धिके लिये नेत्र बंद कर लेना ही उत्तम है। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां
वीक्ष्यान्तरा कोशपरिच्छदासिवत्।
वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते
निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम्॥ ९

तस्मिन् स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं
घोराङ्कमादाय शिशोर्ददावथ।
गाढं कराभ्यां भगवान् प्रपीड्य तत्
प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत्॥ १०

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी
निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि ।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः[1]
प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह॥ ११

मखमली म्यानके भीतर छिपी हुई तीखी धारवाली तलवारके समान पूतनाका हृदय तो बड़ा कुटिल था; किन्तु ऊपरसे वह बहुत मधुर और सुन्दर व्यवहार कर रही थी। देखनेमें वह एक भद्र महिलाके समान जान पड़ती थी। इसलिये रोहिणी और यशोदाजीने उसे घरके भीतर आयी देखकर भी उसकी सौन्दर्यप्रभासे हतप्रतिभ-सी होकर कोई रोक-टोक नहीं की, चुपचाप खड़ी-खड़ी देखती रहीं॥ ९॥ इधर भयानक राक्षसी पूतनाने बालक श्रीकृष्णको अपनी गोदमें लेकर उनके मुँहमें अपना स्तन दे दिया, जिसमें बड़ा भयङ्कर और किसी प्रकार भी पच न सकनेवाला विष लगा हुआ था। भगवान्‌ने क्रोधको अपना साथी बनाया और दोनों हाथोंसे उसके स्तनोंको जोरसे दबाकर उसके प्राणोंके साथ उसका दूध पीने लगे (वे उसका दूध पीने लगे और उनका साथी क्रोध प्राण पीने लगा!)* ॥ १०॥ अब तो पूतनाके प्राणोंके आश्रयभूत सभी मर्मस्थान फटने लगे। वह पुकारने लगी—'अरे छोड़ दे, छोड़ दे, अब बस कर!' वह बार-बार अपने हाथ और पैर पटक-पटककर रोने लगी। उसके नेत्र उलट गये। उसका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया॥ ११॥

---

१५. यह धात्रीका वेष धारण करके आयी है, मारना उचित नहीं है। परन्तु यह और ग्वालबालोंको मारेगी। इसलिये इसका यह वेष देखे बिना ही मार डालना चाहिये। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

१६. बड़े-से-बड़ा अनिष्ट योगसे निवृत्त हो जाता है। उन्होंने नेत्र बंद करके मानो योगदृष्टि सम्पादित की।

१७. पूतना यह निश्चय करके आयी थी कि मैं व्रजके सारे शिशुओंको मार डालूँगी, परन्तु भक्तरक्षापरायण भगवान्‌की कृपासे व्रजका एक भी शिशु उसे दिखायी नहीं दिया और बालकोंको खोजती हुई वह लीलाशक्तिकी प्रेरणासे सीधी नन्दालयमें आ पहुँची, तब भगवान्‌ने सोचा कि मेरे भक्तका बुरा करनेकी बात तो दूर रही, जो मेरे भक्तका बुरा सोचता है, उस दुष्टका मैं मुँह नहीं देखता; व्रज-बालक सभी श्रीकृष्णके सखा हैं, परम भक्त हैं, पूतना उनको मारनेका सङ्कल्प करके आयी है, इसलिये उन्होंने नेत्र बंद कर लिये।

१८. पूतना अपनी भीषण आकृतिको छिपाकर राक्षसी मायासे दिव्य रमणी रूप बनाकर आयी है। भगवान्‌की दृष्टि पड़नेपर माया रहेगी नहीं और इसका असली भयानकरूप प्रकट हो जायगा। उसे सामने देखकर यशोदा मैया डर जायँ और पुत्रकी अनिष्टाशङ्कासे कहीं उनके हठात् प्राण निकल जायँ, इस आशङ्कासे उन्होंने नेत्र बंद कर लिये।

१९. पूतना हिंसापूर्ण हृदयसे आयी है, परन्तु भगवान् उसकी हिंसाके लिये उपयुक्त दण्ड न देकर उसका प्राण-वधमात्र करके परम कल्याण करना चाहते हैं। भगवान् समस्त सद्गुणोंके भण्डार हैं। उनमें धृष्टता आदि दोषोंका लेश भी नहीं है, इसीलिये पूतनाके कल्याणार्थ भी उसका प्राण-वध करनेमें उन्हें लज्जा आती है। इस लज्जासे ही उन्होंने नेत्र बंद कर लिये।

२०. भगवान् जगत्पिता हैं—असुर-राक्षसादि भी उनकी सन्तान ही हैं। पर वे सर्वथा उच्छृङ्खल और उद्दण्ड हो गये हैं, इसलिये उन्हें दण्ड देना आवश्यक है। स्नेहमय माता-पिता जब अपने उच्छृङ्खल पुत्रको दण्ड देते हैं, तब उनके मनमें दुःख होता है। परन्तु वे उसे भय दिखलानेके लिये उसे बाहर प्रकट नहीं करते। इसी प्रकार भगवान् भी जब असुरोंको मारते हैं, तब पिताके नाते उनको भी दुःख होता है; पर दूसरे असुरोंको भय दिखलानेके लिये वे उसे प्रकट नहीं करते। भगवान् अब पूतनाको मारनेवाले हैं, परन्तु उसकी मृत्युकालीन पीड़ाको अपनी आँखों देखना नहीं चाहते, इसीसे उन्होंने नेत्र बंद कर लिये।

२१. छोटे बालकोंका स्वभाव है कि वे अपनी माके सामने खूब खेलते हैं, पर किसी अपरिचितको देखकर डर जाते हैं और नेत्र मूँद लेते हैं। अपरिचित पूतनाको देखकर इसीलिये बाल-लीला-विहारी भगवान्‌ने नेत्र बंद कर लिये। यह उनकी बाललीलाका माधुर्य है।

१. हुर्निःस्विन्न०।

* भगवान् रोषके साथ पूतनाके प्राणोंके सहित स्तन-पान करने लगे, इसका यह अर्थ प्रतीत होता है कि रोष (रोषाधिष्ठातृ-देवता रुद्र) ने प्राणोंका पान किया और श्रीकृष्णने स्तनका।

तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा
साद्रिर्महीद्यौश्च चचाल सग्रहा ।
रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः
पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशङ्क्या ॥ १२

निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसु-
र्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि ।
प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता
वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥ १३

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् ।
चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत्तदद्भुतम् ॥ १४

ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम् ।
गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥ १५

अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ।
बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ॥ १६

सन्त्रस्तुः स्म तद् वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् ।
पूर्वं तु तन्निःस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥ १७

बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम् ।
गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसम्भ्रमाः ॥ १८

उसकी चिल्लाहटका वेग बड़ा भयङ्कर था। उसके प्रभावसे पहाड़ोंके साथ पृथ्वी और ग्रहोंके साथ अन्तरिक्ष डगमगा उठा। सातों पाताल और दिशाएँ गूँज उठीं। बहुत-से लोग वज्रपातकी आशङ्कासे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १२ ॥ परीक्षित्! इस प्रकार निशाचरी पूतनाके स्तनोंमें इतनी पीड़ा हुई कि वह अपनेको छिपा न सकी, राक्षसीरूपमें प्रकट हो गयी। उसके शरीरसे प्राण निकल गये, मुँह फट गया, बाल बिखर गये और हाथ-पाँव फैल गये। जैसे इन्द्रके वज्रसे घायल होकर वृत्रासुर गिर पड़ा था, वैसे ही वह बाहर गोष्ठमें आकर गिर पड़ी ॥ १३ ॥

राजेन्द्र! पूतनाके शरीरने गिरते-गिरते भी छः कोसके भीतरके वृक्षोंको कुचल डाला। यह बड़ी ही अद्भुत घटना हुई ॥ १४ ॥ पूतनाका शरीर बड़ा भयानक था, उसका मुँह हलके समान तीखी और भयङ्कर दाढ़ोंसे युक्त था। उसके नथुने पहाड़की गुफाके समान गहरे थे और स्तन पहाड़से गिरी हुई चट्टानोंकी तरह बड़े-बड़े थे। लाल-लाल बाल चारों ओर बिखरे हुए थे ॥ १५ ॥ आँखें अंधे कूएँके समान गहरी नितम्ब नदीके कगारकी तरह भयङ्कर; भुजाएँ, जाँघें और पैर नदीके पुलके समान तथा पेट सूखे हुए सरोवरकी भाँति जान पड़ता था ॥ १६ ॥ पूतनाके उस शरीरको देखकर सब-के-सब ग्वाल और गोपी डर गये। उसकी भयङ्कर चिल्लाहट सुनकर उनके हृदय, कान और सिर तो पहले ही फट-से रहे थे॥ १७ ॥ जब गोपियोंने देखा कि बालक श्रीकृष्ण उसकी छातीपर निर्भय होकर खेल रहे हैं, * तब वे बड़ी घबराहट और उतावलीके साथ झटपट वहाँ पहुँच गयीं तथा श्रीकृष्णको उठा लिया ॥ १८ ॥

---

* पूतनाके वक्षःस्थलपर क्रीडा करते हुए मानो मन-ही-मन कह रहे थे—

स्तनन्धयस्य स्तन एव जीविका दत्तस्त्वया स स्वयमानने मम।
मया च पीतो म्रियते यदि त्वया किं वा ममागः स्वयमेव कथ्यताम् ॥

'मैं दुधमुँहा शिशु हूँ, स्तनपान ही मेरी जीविका है। तुमने स्वयं अपना स्तन मेरे मुँहमें दे दिया और मैंने पिया। इससे यदि तुम मर जाती हो तो स्वयं तुम्हीं बताओ इसमें मेरा क्या अपराध है।'

राजा बलिकी कन्या थी रत्नमाला। यज्ञशालामें वामन भगवान्‌को देखकर उसके हृदयमें पुत्रस्नेहका भाव उदय हो आया। वह मन-ही-मन अभिलाषा करने लगी कि यदि मुझे ऐसा बालक हो और मैं उसे स्तन पिलाऊँ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। वामन भगवान्‌ने अपने भक्त बलिकी पुत्रीके इस मनोरथका मन-ही-मन अनुमोदन किया। वही द्वापरमें पूतना हुई और श्रीकृष्णके स्पर्शसे उसकी लालसा पूर्ण हुई।

यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः[1] ।
रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १९

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसार्भकम्[2] ।
रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशाङ्गेषु नामभिः ॥ २०

गोप्यः संस्पृष्टसलिला अङ्गेषु करयोः पृथक् ।
न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥ २१

अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिमांस्तव जान्वथोरू
यज्ञोऽच्युतः[3] कटितटं जठरं हयास्यः ।
हृत् केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं
विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥ २२

चक्रयग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्
त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाजनश्च ।
कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्युपेन्द्र-
स्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥ २३

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणोऽवतु ।
श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥ २४

पृश्निगर्भस्तु[4] ते बुद्धिमात्मानं भगवान् परः ।
क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः[5] ॥ २५

व्रजन्तमव्याद् वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः ।
भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयङ्करः ॥ २६

डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७

कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः ।
उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥ २८

इसके बाद यशोदा और रोहिणीके साथ गोपियोंने गायकी पूँछ घुमाने आदि उपायोंसे बालक श्रीकृष्णके अङ्गोंकी सब प्रकारसे रक्षा की ॥ १९ ॥ उन्होंने पहले बालक श्रीकृष्णको गोमूत्रसे स्नान कराया, फिर सब अङ्गोंमें गो-रज लगायी और फिर बारहों अङ्गोंमें गोबर लगाकर भगवान्‌के केशव आदि नामोंसे रक्षा की ॥ २० ॥ इसके बाद गोपियोंने आचमन करके 'अज' आदि ग्यारह बीज-मन्त्रोंसे अपने शरीरोंमें अलग-अलग अङ्गन्यास एवं करन्यास किया और फिर बालकके अङ्गोंमें बीजन्यास किया ॥ २१ ॥

वे कहने लगीं—'अजन्मा भगवान् तेरे पैरोंकी रक्षा करें, मणिमान् घुटनोंकी, यज्ञपुरुष जाँघोंकी, अच्युत कमरकी, हयग्रीव पेटकी, केशव हृदयकी, ईश वक्षःस्थलकी, सूर्य कण्ठकी, विष्णु बाँहोंकी, उरुक्रम मुखकी और ईश्वर सिरकी रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधर भगवान् रक्षाके लिये तेरे आगे रहें, गदाधारी श्रीहरि पीछे, क्रमशः धनुष और खड्ग धारण करनेवाले भगवान् मधुसूदन और अजन दोनों बगलमें, शङ्खधारी उरुगाय चारों कोनोंमें, उपेन्द्र ऊपर, हलधर पृथ्वीपर और भगवान् परमपुरुष तेरे सब ओर रक्षाके लिये रहें ॥ २३ ॥ हृषीकेशभगवान् इन्द्रियोंकी और नारायण प्राणोंकी रक्षा करें । श्वेतद्वीपके अधिपति चित्तकी और योगेश्वर मनकी रक्षा करें ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भ तेरी बुद्धिकी और परमात्मा भगवान् तेरे अहङ्कारकी रक्षा करें । खेलते समय गोविन्द रक्षा करें, सोते समय माधव रक्षा करें ॥ २५ ॥ चलते समय भगवान् वैकुण्ठ और बैठते समय भगवान् श्रीपति तेरी रक्षा करें । भोजनके समय समस्त ग्रहोंको भयभीत करनेवाले यज्ञभोक्ता भगवान् तेरी रक्षा करें ॥ २६ ॥ डाकिनी, राक्षसी और कूष्माण्डा आदि बालग्रह; भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस और विनायक, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृका आदि; शरीर, प्राण तथा इन्द्रियोंका नाश करनेवाले उन्माद (पागलपन) एवं अपस्मार (मृगी) आदि रोग; स्वप्नमें देखे हुए महान् उत्पात, वृद्धग्रह और बालग्रह आदि—

---

१. सर्वशः । २. सा सुतम् । ३. जङ्घे । ४. र्भस्तनो । ५. केशवः ।

स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये ।
सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९

श्रीशुक उवाच

इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम् ।
पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥ ३०

तावन्नन्दादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः ।
विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥ ३१

नूनं बतर्षिः संजातो योगेशो वा समास सः ।
स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥ ३२

कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा तत्ते व्रजौकसः ।
दूरे क्षिप्त्वावयवशो न्यदहन्[1] काष्ठधिष्ठितम् ॥ ३३

दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः ।
उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥ ३४

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाऽऽप सद्गतिम् ॥ ३५

किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ।
यच्छन् प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा ॥ ३६

पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः ।
अङ्गं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत् स्तनम् ॥ ३७

यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् ।
कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावो नु मातरः ॥ ३८

ये सभी अनिष्ट भगवान् विष्णुका नामोच्चारण करनेसे भयभीत होकर नष्ट हो जायँ* ॥ २७—२९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार गोपियोंने प्रेमपाशमें बँधकर भगवान् श्रीकृष्णकी रक्षा की । माता यशोदाने अपने पुत्रको स्तन पिलाया और फिर पालनेपर सुला दिया ॥ ३० ॥ इसी समय नन्दबाबा और उनके साथी गोप मथुरासे गोकुलमें पहुँचे । जब उन्होंने पूतनाका भयङ्कर शरीर देखा, तब वे आश्चर्यचकित हो गये ॥ ३१ ॥ वे कहने लगे—'यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है, अवश्य ही वसुदेवके रूपमें किसी ऋषिने जन्म ग्रहण किया है । अथवा सम्भव है वसुदेवजी पूर्व-जन्ममें कोई योगेश्वर रहे हों; क्योंकि उन्होंने जैसा कहा था, वैसा ही उत्पात यहाँ देखनेमें आ रहा है ॥ ३२ ॥ तबतक व्रजवासियोंने कुल्हाड़ीसे पूतनाके शरीरको टुकड़े-टुकड़े कर डाला और गोकुलसे दूर ले जाकर लकड़ियोंपर रखकर जला दिया ॥ ३३ ॥ जब उसका शरीर जलने लगा, तब उसमेंसे ऐसा धूँआ निकला, जिसमेंसे अगरकी-सी सुगन्ध आ रही थी । क्यों न हो, भगवान्‌ने जो उसका दूध पी लिया था—जिससे उसके सारे पाप तत्काल ही नष्ट हो गये थे ॥ ३४ ॥ पूतना एक राक्षसी थी । लोगोंके बच्चोंको मार डालना और उनका खून पी जाना—यही उसका काम था । भगवान्‌को भी उसने मार डालनेकी इच्छासे ही स्तन पिलाया था । फिर भी उसे वह परमगति मिली, जो सत्पुरुषोंको मिलती है ॥ ३५ ॥ ऐसी स्थितिमें जो परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको श्रद्धा और भक्तिसे माताके समान अनुरागपूर्वक अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तु और उनको प्रिय लगनेवाली वस्तु समर्पित करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ ३६ ॥ भगवान्‌के चरणकमल सबके वन्दनीय ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवताओंके द्वारा भी वन्दित हैं । वे भक्तोंके हृदयकी पूँजी हैं । उन्हीं चरणोंसे भगवान्‌ने पूतनाका शरीर दबाकर उसका स्तनपान किया था ॥३७॥ माना कि वह राक्षसी थी, परन्तु उसे उत्तम-से-उत्तम गति—जो माताको मिलनी चाहिये—प्राप्त हुई । फिर जिनके स्तनका दूध भगवान्‌ने बड़े प्रेमसे पिया, उन गौओं और माताओंकी † तो बात ही क्या है ॥ ३८ ॥

---

१. निर्दहुः ।

* इस प्रसङ्गको पढ़कर भावुक भक्त भगवान्‌से कहता है—'भगवन् ! जान पड़ता है, आपकी अपेक्षा भी आपके नाममें शक्ति अधिक है; क्योंकि आप त्रिलोकीकी रक्षा करते हैं और नाम आपकी रक्षा कर रहा है ।'

† जब ब्रह्माजी ग्वालबाल और बछड़ोंको हर ले गये, तब भगवान् स्वयं ही बछड़े और ग्वालबाल बन गये, उस समय अपने विभिन्न रूपोंसे उन्होंने अपने साथी अनेकों गोप और बत्सोंकी माताओंका स्तनपान किया । इसीलिये यहाँ बहुवचनका प्रयोग किया गया है ।

पयांसि यासामपिबत् पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ।
भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥ ३९

तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ।
न पुनः कल्पते राजन् संसारोऽज्ञानसम्भवः ॥ ४०

कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ।
किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययुः ॥ ४१

ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ।
श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन् सुविस्मिताः ॥ ४२

नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः ।
मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥ ४३

य एतत् पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ।
शृणुयाच्छ्रद्धया[1] मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥ ४४

परीक्षित् ! देवकीनन्दन भगवान् कैवल्य आदि सब प्रकारकी मुक्ति और सब कुछ देनेवाले हैं। उन्होंने व्रजकी गोपियों और गौओंका वह दूध, जो भगवान्‌के प्रति पुत्र-भाव होनेसे वात्सल्य-स्नेहकी अधिकताके कारण स्वयं ही झरता रहता था, भरपेट पान किया ॥ ३९ ॥ राजन् ! वे गौएँ और गोपियाँ, जो नित्य-निरन्तर भगवान् श्रीकृष्णको अपने पुत्रके ही रूपमें देखती थीं, फिर जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें कभी नहीं पड़ सकतीं; क्योंकि यह संसार तो अज्ञानके कारण ही है ॥ ४० ॥

नन्दबाबाके साथ आनेवाले व्रजवासियोंकी नाकमें जब चिताके धूएँकी सुगन्ध पहुँची, तब 'यह क्या है ? कहाँसे ऐसी सुगन्ध आ रही है ?' इस प्रकार कहते हुए वे व्रजमें पहुँचे ॥ ४१ ॥ वहाँ गोपोंने उन्हें पूतनाके आनेसे लेकर मरनेतकका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वे लोग पूतनाकी मृत्यु और श्रीकृष्णके कुशलपूर्वक बच जानेकी बात सुनकर बड़े ही आश्चर्यचकित हुए ॥ ४२ ॥ परीक्षित् ! उदारशिरोमणि नन्दबाबाने मृत्युके मुखसे बचे हुए अपने लालाको गोदमें उठा लिया और बार-बार उसका सिर सूँघकर मन-ही-मन बहुत आनन्दित हुए ॥ ४३ ॥ यह 'पूतना-मोक्ष' भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत बाल-लीला है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रेम प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

—★—

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे[2] षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

—★—

अथ सप्तमोऽध्यायः

शकट-भञ्जन और तृणावर्त-उद्धार

राजोवाच

येन येनावतारेण भगवान् हरिरीश्वरः ।
करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥ १

यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा
सत्त्वं च शुद्ध्यत्यचिरेण पुंसः ।

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—प्रभो ! सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि अनेकों अवतार धारण करके बहुत-सी सुन्दर एवं सुननेमें मधुर लीलाएँ करते हैं। वे सभी मेरे हृदयको बहुत प्रिय लगती हैं ॥ १ ॥ उनके श्रवणमात्रसे भगवत्-सम्बन्धी कथासे अरुचि और विविध विषयोंकी तृष्णा भाग जाती है। मनुष्यका अन्तःकरण शीघ्र-से-शीघ्र शुद्ध हो जाता है। भगवान्‌के चरणोंमें भक्ति और उनके भक्तजनोंसे प्रेम भी प्राप्त हो जाता है। यदि आप

१. निशम्य श्रद्धया । २. पूतनामोक्षः ।

भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं
तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥ २

अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ।
मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः ॥ ३

श्रीशुक उवाच

कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे
जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ।
वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकै-
श्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥ ४

नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं
विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः ।
अन्नाद्यवासःस्रगभीष्टधेनुभिः
संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥ ५

औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी
समागतान् पूजयती व्रजौकसः ।
नैवाशृणोद् वै रुदितं सुतस्य सा
रुदन् स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥ ६

अधः शयानस्य शिशोरनोऽल्पक-
प्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत ।
विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं
व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥ ७

मुझे उनके श्रवणका अधिकारी समझते हों, तो भगवान्‌की उन्हीं मनोहर लीलाओंका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने मनुष्य-लोकमें प्रकट होकर मनुष्य-जातिके स्वभावका अनुसरण करते हुए जो बाललीलाएँ की हैं अवश्य ही वे अत्यन्त अद्भुत हैं, इसलिये आप अब उनकी दूसरी बाल-लीलाओंका भी वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक बार* भगवान् श्रीकृष्णके करवट बदलनेका अभिषेक-उत्सव मनाया जा रहा था। उसी दिन उनका जन्मनक्षत्र भी था। घरमें बहुत-सी स्त्रियोंकी भीड़ लगी हुई थी। गाना-बजाना हो रहा था। उन्हीं स्त्रियोंके बीचमें खड़ी हुई सती साध्वी यशोदाजीने अपने पुत्रका अभिषेक किया। उस समय ब्राह्मणलोग मन्त्र पढ़कर आशीर्वाद दे रहे थे ॥ ४ ॥ नन्दरानी यशोदाजीने ब्राह्मणोंका खूब पूजन-सम्मान किया। उन्हें अन्न, वस्त्र, माला, गाय आदि मुँहमाँगी वस्तुएँ दीं। जब यशोदाने उन ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर स्वयं बालकके नहलाने आदिका कार्य सम्पन्न कर लिया, तब यह देखकर कि मेरे लल्लाके नेत्रोंमें नींद आ रही है, अपने पुत्रको धीरेसे शय्यापर सुला दिया ॥ ५ ॥ थोड़ी देरमें श्यामसुन्दरकी आँखें खुलीं, तो वे स्तन-पानके लिये रोने लगे। उस समय मनस्विनी यशोदाजी उत्सवमें आये हुए व्रजवासियोंके स्वागत-सत्कारमें बहुत ही तन्मय हो रही थीं। इसलिये उन्हें श्रीकृष्णका रोना सुनायी नहीं पड़ा। तब श्रीकृष्ण रोते-रोते अपने पाँव उछालने लगे ॥ ६ ॥ शिशु श्रीकृष्ण एक छकड़ेके नीचे सोये हुए थे। उनके पाँव अभी लाल-लाल कोंपलोंके समान बड़े ही कोमल और नन्हे-नन्हे थे। परन्तु वह नन्हा-सा पाँव लगते ही विशाल छकड़ा उलट गया †। उस छकड़ेपर दूध-दही आदि अनेक रसोंसे भरी हुई मटकियाँ और दूसरे बर्तन रखे हुए थे। वे सब-के-सब फूट-फाट गये और छकड़ेके पहिये तथा धुरे अस्त-व्यस्त हो गये, उसका जूआ फट गया ॥ ७ ॥

---

* यहाँ कदाचित् (एक बार) से तात्पर्य है तीसरे महीनेके जन्मनक्षत्रयुक्त कालसे। उस समय श्रीकृष्णकी झाँकीका ऐसा वर्णन मिलता है—

स्निग्धाः पश्यति सेष्मयीति भुजयोर्युग्मं मुहुश्चालयन्नत्यल्पं मधुरं च कूजति परिश्रम्भाय चाकाङ्क्षति ।
लाभालाभवशादमुष्य लसति क्रन्दत्यपि क्वाप्यसौ पीतस्तन्यतया स्वपित्यपि पुनर्जाग्रन्मुदं यच्छति ॥

'स्नेहसे तर गोपियोंको आँख उठाकर देखते हैं और मुसकराते हैं। दोनों भुजाएँ बार-बार हिलाते हैं। बड़े मधुर स्वरसे थोड़ा-थोड़ा कूजते हैं। गोदमें आनेके लिये ललकते हैं। किसी वस्तुको पाकर उससे खेलने लग जाते हैं और न मिलनेसे क्रन्दन करते हैं। कभी-कभी दूध पीकर सो जाते हैं और फिर जागकर आनन्दित करते हैं।'

† हिरण्याक्षका पुत्र था उत्कच। वह बहुत बलवान् एवं मोटा-तगड़ा था। एक बार यात्रा करते समय उसने लोमश ऋषिके आश्रमके वृक्षोंको कुचल डाला। लोमश ऋषिने क्रोध करके शाप दे दिया—'अरे दुष्ट ! जा, तू देहरहित हो जा।'

दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय
औत्थानिके कर्मणि याः समागताः ।
नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः
कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥ ८

ऊचुरव्यवसितमतीन् गोपान् गोपीश्च बालकाः ।
रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ ९

न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत ।
अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥ १०

रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशङ्किता ।
कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥ ११

पूर्ववत् स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ।
विप्रा हुत्वार्चयाञ्चक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥ १२

येऽसूयानृतदम्भेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः ।
न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥ १३

इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः ।
जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥ १४

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः ।
हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥ १५

गावः सर्वगुणोपेता वासःस्रग्वुक्ममालिनीः ।
आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्वयुञ्जत ॥ १६

करवट बदलनेके उत्सवमें जितनी भी स्त्रियाँ आयी हुई थीं, वे सब और यशोदा, रोहिणी, नन्दबाबा और गोपगण इस विचित्र घटनाको देखकर व्याकुल हो गये। वे आपसमें कहने लगे—'अरे, यह क्या हो गया? यह छकड़ा अपने-आप कैसे उलट गया?' ॥ ८ ॥ वे इसका कोई कारण निश्चित न कर सके। वहाँ खेलते हुए बालकोंने गोपों और गोपियोंसे कहा कि 'इस कृष्णने ही तो रोते-रोते अपने पाँवकी ठोकरसे इसे उलट दिया है, इसमें कोई सन्देह नहीं' ॥ ९ ॥ परन्तु गोपोंने उसे 'बालकोंकी बात' मानकर उसपर विश्वास नहीं किया। ठीक ही है, वे गोप उस बालकके अनन्त बलको नहीं जानते थे ॥ १० ॥

यशोदाजीने समझा यह किसी ग्रह आदिका उत्पात है। उन्होंने अपने रोते हुए लाड़ले लालको गोदमें लेकर ब्राह्मणोंसे वेदमन्त्रोंके द्वारा शान्तिपाठ कराया और फिर वे उसे स्तन पिलाने लगीं ॥ ११ ॥ बलवान् गोपोंने छकड़ेको फिर सीधा कर दिया। उसपर पहलेकी तरह सारी सामग्री रख दी गयी। ब्राह्मणोंने हवन किया और दही अक्षत, कुश तथा जलके द्वारा भगवान् और उस छकड़ेकी पूजा की ॥ १२ ॥ जो किसीके गुणोंमें दोष नहीं निकालते, झूठ नहीं बोलते, दम्भ, ईर्ष्या और हिंसा नहीं करते तथा अभिमानसे रहित हैं—उन सत्यशील ब्राह्मणोंका आशीर्वाद कभी विफल नहीं होता ॥ १३ ॥ यह सोचकर नन्दबाबाने बालकको गोदमें उठा लिया और ब्राह्मणोंसे साम, ऋक् और यजुर्वेदके मन्त्रोंद्वारा संस्कृत एवं पवित्र ओषधियोंसे युक्त जलसे अभिषेक कराया ॥ १४ ॥ उन्होंने बड़ी एकाग्रतासे स्वस्त्ययनपाठ और हवन कराकर ब्राह्मणोंको अति उत्तम अन्नका भोजन कराया ॥ १५ ॥ इसके बाद नन्दबाबाने अपने पुत्रकी उन्नति और अभिवृद्धिकी कामनासे ब्राह्मणोंको सर्वगुणसम्पन्न बहुत-सी गौएँ दीं। वे गौएँ वस्त्र, पुष्पमाला और सोनेके हारोंसे सजी हुई थीं। ब्राह्मणोंने उन्हें आशीर्वाद दिया ॥ १६ ॥

उसी समय साँपके केंचुलके समान उसका शरीर गिरने लगा। वह धड़ामसे लोमश ऋषिके चरणोंपर गिर पड़ा और प्रार्थना की—'कृपासिन्धो! मुझपर कृपा कीजिये। मुझे आपके प्रभावका ज्ञान नहीं था। मेरा शरीर लौटा दीजिये।' लोमशजी प्रसन्न हो गये। महात्माओंका शाप भी वर हो जाता है। उन्होंने कहा—'वैवस्वत मन्वन्तरमें श्रीकृष्णके चरण-स्पर्शसे तेरी मुक्ति हो जायगी।' वही असुर छकड़ेमें आकर बैठ गया था और भगवान् श्रीकृष्णके चरणस्पर्शसे मुक्त हो गया।

विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाऽऽशिषः ।
ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥ १७

यह बात स्पष्ट है कि जो वेदवेत्ता और सदाचारी ब्राह्मण होते हैं, उनका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता ॥ १७ ॥

एकदाऽऽरोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती ।
गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥ १८

एक दिनकी बात है, सती यशोदाजी अपने प्यारे लल्लाको गोदमें लेकर दुलार रही थीं । सहसा श्रीकृष्ण चट्टानके समान भारी बन गये । वे उनका भार न सह सकीं ॥ १८ ॥ उन्होंने भारसे पीड़ित होकर श्रीकृष्णको पृथ्वीपर बैठा दिया। इस नयी घटनासे वे अत्यन्त चकित हो रही थीं। इसके बाद उन्होंने भगवान् पुरुषोत्तमका स्मरण किया और घरके काममें लग गयीं ॥ १९ ॥

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ।
महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥ १९

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः[1] ।
चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥ २०

तृणावर्त नामका एक दैत्य था। वह कंसका निजी सेवक था। कंसकी प्रेरणासे ही बवंडरके रूपमें वह गोकुलमें आया और बैठे हुए बालक श्रीकृष्णको उड़ाकर आकाशमें ले गया ॥ २० ॥ उसने व्रजरजसे सारे गोकुलको ढक दिया और लोगोंकी देखनेकी शक्ति हर ली। उसके अत्यन्त भयङ्कर शब्दसे दसों दिशाएँ काँप उठीं ॥ २१ ॥ सारा व्रज दो घड़ीतक रज और तमसे ढका रहा। यशोदाजीने अपने पुत्रको जहाँ बैठा दिया था, वहाँ जाकर देखा तो श्रीकृष्ण वहाँ नहीं थे ॥ २२ ॥ उस समय तृणावर्तने बवंडररूपसे इतनी बालू उड़ा रखी थी कि सभी लोग अत्यन्त उद्विग्न और बेसुध हो गये थे। उन्हें अपना-पराया कुछ भी नहीं सूझ रहा था ॥ २३ ॥ उस जोरकी आँधी और धूलकी वर्षामें अपने पुत्रका पता न पाकर यशोदाको बड़ा शोक हुआ। वे अपने पुत्रकी याद करके बहुत ही दीन हो गयीं और बछड़ेके मर जानेपर गायकी जो दशा हो जाती है, वही दशा उनकी हो गयी। वे पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ २४ ॥ बवंडरके शान्त होनेपर जब धूलकी वर्षाका वेग कम हो गया, तब यशोदाजीके रोनेका शब्द सुनकर दूसरी गोपियाँ वहाँ दौड़ आयीं। नन्दनन्दन श्यामसुन्दर श्रीकृष्णको न देखकर उनके हृदयमें भी बड़ा संताप हुआ, आँखोंसे आँसूकी धारा बहने लगी। वे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ २५ ॥

गोकुलं सर्वमावृण्वन् मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ।
ईरयन् सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः[2] ॥ २१

मुहूर्तमभवद् गोष्ठं रजसा तमसाऽऽवृतम् ।
सुतं यशोदा नापश्यत्तस्मिन् न्यस्तवती यतः ॥ २२

नापश्यत् कञ्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ।
तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥ २३

इति खरपवनचक्रपांसुवर्षे
सुतपदवीमबलाविलक्ष्य माता ।
अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद्
भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥ २४

रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो
भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ।
रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं
पवन उपारतपांसुवर्षवेगे ॥ २५

तृणावर्तः शान्तरयो वात्यारूपधरो हरन् ।
कृष्णं नभोगतो गन्तुं नाशक्नोद् भूरिभारभृत् ॥ २६

इधर तृणावर्त बवंडररूपसे जब भगवान् श्रीकृष्णको आकाशमें उठा ले गया, तब उनके भारी बोझको न सँभाल सकनेके कारण उसका वेग शान्त हो गया। वह अधिक चल न सका ॥ २६ ॥

---

१. प्रचो० । २. दश ।

तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ।
गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥ २७

गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ।
अव्यक्तरावो न्यपतत् सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥ २८

तमन्तरिक्षात् पतितं शिलायां
विशीर्णसर्वावयवं करालम् ।
पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं
स्त्रियो रुदत्यो ददृशुः समेताः ॥ २९

प्रादाय मात्रे प्रतिहृत्य[1] विस्मिताः
कृष्णं च तस्योरसि लम्बमानम् ।
तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं
विहायसा मृत्युमुखात् प्रमुक्तम् ।
गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या
लब्ध्वा पुनः[2] प्रापुरतीव मोदम् ॥ ३०

अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा
बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात् पुनः ।
हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः
साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते ॥ ३१

किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं
पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ।
यत्संपरेतः पुनरेव बालको
दिष्ट्या स्वबन्धून् प्रणयन्नुपस्थितः ॥ ३२

दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने ।
वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥ ३३

तृणावर्त अपनेसे भी भारी होनेके कारण श्रीकृष्णको नीलगिरिकी चट्टान समझने लगा । उन्होंने उसका गला ऐसा पकड़ा कि वह उस अद्भुत शिशुको अपनेसे अलग नहीं कर सका ॥ २७ ॥ भगवान्‌ने इतने जोरसे उसका गला पकड़ रखा था कि वह असुर निश्चेष्ट हो गया । उसकी आँखें बाहर निकल आयीं। बोलती बंद हो गयी। प्राण-पखेरू उड़ गये और बालक श्रीकृष्णके साथ वह व्रजमें गिर पड़ा * ॥ २८ ॥ वहाँ जो स्त्रियाँ इकट्ठी होकर रो रही थीं, उन्होंने देखा कि वह विकराल दैत्य आकाशसे एक चट्टानपर गिर पड़ा और उसका एक-एक अङ्ग चकनाचूर हो गया—ठीक वैसे ही, जैसे भगवान् शङ्करके बाणोंसे आहत हो त्रिपुरासुर गिरकर चूर-चूर हो गया था ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण उसके वक्षःस्थलपर लटक रहे थे । यह देखकर गोपियाँ विस्मित हो गयीं। उन्होंने झटपट वहाँ जाकर श्रीकृष्णको गोदमें ले लिया और लाकर उन्हें माताको दे दिया । बालक मृत्युके मुखसे सकुशल लौट आया । यद्यपि उसे राक्षस आकाशमें उठा ले गया था, फिर भी वह बच गया । इस प्रकार बालक श्रीकृष्णको फिर पाकर यशोदा आदि गोपियों तथा नन्द आदि गोपोंको अत्यन्त आनन्द हुआ ॥ ३० ॥ वे कहने लगे—'अहो ! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है । देखो तो सही, यह कितनी अद्भुत घटना घट गयी ! यह बालक राक्षसके द्वारा मृत्युके मुखमें डाल दिया गया था, परन्तु फिर जीता-जागता आ गया और उस हिंसक दुष्टको उसके पाप ही खा गये ! सच है, साधुपुरुष अपनी समतासे ही सम्पूर्ण भयोंसे बच जाता है ॥ ३१ ॥ हमने ऐसा कौन-सा तप, भगवान्‌की पूजा, प्याऊ-पौसला, कूआँ-बावली, बाग-बगीचे आदि पूर्त, यज्ञ, दान अथवा जीवोंकी भलाई की थी, जिसके फलसे हमारा यह बालक मरकर भी अपने स्वजनोंको सुखी करनेके लिये फिर लौट आया ? अवश्य ही यह बड़े सौभाग्यकी बात है' ॥ ३२ ॥ जब नन्दबाबाने देखा कि महावनमें बहुत-सी अद्भुत घटनाएँ घटित हो रही हैं, तब आश्चर्यचकित होकर उन्होंने वसुदेवजीकी बातका बार-बार समर्थन किया ॥ ३३ ॥

---

१. गृह्य । २. सुतं ।

* पाण्डुदेशमें सहस्राक्ष नामके एक राजा थे । वे नर्मदा-तटपर अपनी रानियोंके साथ विहार कर रहे थे । उधरसे दुर्वासा ऋषि निकले, परन्तु उन्होंने प्रणाम नहीं किया । ऋषिने शाप दिया—'तू राक्षस हो जा ।' जब वह उनके चरणोंपर गिरकर गिड़गिड़ाया, तब दुर्वासाजीने कह दिया—'भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहका स्पर्श होते ही तू मुक्त हो जायगा ।' वही राजा तृणावर्त होकर आया था और श्रीकृष्णका संस्पर्श प्राप्त करके मुक्त हो गया ।

एकदार्भकमादाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी ।
प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ ३४

एक दिनकी बात है, यशोदाजी अपने प्यारे शिशुको अपनी गोदमें लेकर बड़े प्रेमसे स्तन-पान करा रही थीं। वे वात्सल्य-स्नेहसे इस प्रकार सराबोर हो रही थीं कि उनके स्तनोंसे अपने-आप ही दूध झरता जा रहा था ॥ ३४ ॥

पीतप्रायस्य जननी सा[1] तस्य रुचिरस्मितम् ।
मुखं लालयती राजञ्जृम्भतो ददृशे इदम् ॥ ३५

जब वे प्रायः दूध पी चुके और माता यशोदा उनके रुचिर मुसकानसे युक्त मुखको चूम रही थीं उसी समय श्रीकृष्णको जँभाई आ गयी और माताने उनके मुखमें यह देखा * ॥ ३५ ॥

खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः
सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च ।
द्वीपान् नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि
भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ॥ ३६

उसमें आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन और समस्त चराचर प्राणी स्थित हैं ॥ ३६ ॥

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन् सञ्जातवेपथुः ।
सम्मील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत् सुविस्मिता ॥ ३७

परीक्षित् ! अपने पुत्रके मुँहमें इस प्रकार सहसा सारा जगत् देखकर मृगशावकनयनी यशोदाजीका शरीर काँप उठा। उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें बन्द कर लीं † । वे अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गयीं ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे[2]
तृणावर्तमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

नामकरण-संस्कार और बाललीला

श्रीशुक[3] उवाच

गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां सुमहातपाः ।
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! यदुवंशियोंके कुल-पुरोहित थे श्रीगर्गाचार्यजी। वे बड़े तपस्वी थे। वसुदेवजीकी प्रेरणासे वे एक दिन नन्दबाबाके गोकुलमें आये ॥ १ ॥

---

१. सुतस्य । २. शकटतृणावर्तवधः । ३. बादरायणिरुवाच ।

* स्नेहमयी जननी और स्नेहके सदा भूखे भगवान् ! उन्हें दूध पीनेसे तृप्ति ही नहीं होती थी। माँके मनमें शङ्का हुई—कहीं अधिक पीनेसे अपच न हो जाय। प्रेम सर्वदा अनिष्टकी आशङ्का उत्पन्न करता है। श्रीकृष्णने अपने मुखमें विश्वरूप दिखाकर कहा—'अरी मैया ! तेरा दूध मैं अकेले ही नहीं पीता हूँ। मेरे मुखमें बैठकर सम्पूर्ण विश्व ही इसका पान कर रहा है। तू घबरावे मत'—

स्तन्यं कियत् पिबसि भूर्यलमर्भकेति वर्तिष्यमाणवचनां जननीं विभाव्य ।
विश्वं विभागि पयसोऽस्य न केवलोऽहमस्माददर्शि हरिणा किमु विश्वमास्ये ॥

† वात्सल्यमयी यशोदा माता अपने लालके मुखमें विश्व देखकर डर गयीं, परन्तु वात्सल्य-प्रेमरस-भावित हृदय होनेसे उन्हें विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने यह विचार किया कि यह विश्वका बखेड़ा लालके मुँहमें कहाँसे आया ? हो-न-हो यह मेरी इन निगोड़ी आँखोंकी ही गड़बड़ी है। मानो इसीसे उन्होंने अपने नेत्र बंद कर लिये।

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
आनर्चाधोक्षजधिया[1] प्रणिपातपुरःसरम् ॥ २

सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ।
नन्दयित्वाब्रवीद् ब्रह्मन् पूर्णस्य करवाम किम् ॥ ३

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् ।
निःश्रेयसाय[2] भगवन् कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥ ४

ज्योतिषामयनं साक्षाद् यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम् ।
प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद परावरम् ॥ ५

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान् कर्तुमर्हसि ।
बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥ ६

गर्ग उवाच

यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वतः ।
सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥ ७

कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ।
देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥ ८

इति सञ्चिन्तयञ्छ्रुत्वा देवक्या दारिकावचः ।
अपि हन्ताऽऽगताशङ्कस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत्[3] ॥ ९

नन्द उवाच

अलक्षितोऽस्मिन् रहसि मामकैरपि गोव्रजे ।
कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १०

श्रीशुक उवाच

एवं सम्प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ।
चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥ ११

उन्हें देखकर नन्दबाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए। उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके बाद 'ये स्वयं भगवान् ही हैं'—इस भावसे उनकी पूजा की ॥ २ ॥ जब गर्गाचार्यजी आरामसे बैठ गये और विधिपूर्वक उनका आतिथ्य-सत्कार हो गया, तब नन्दबाबाने बड़ी ही मधुर वाणीसे उनका अभिनन्दन किया और कहा—'भगवन्! आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं, फिर मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥ ३ ॥ आप-जैसे महात्माओंका हमारे-जैसे गृहस्थोंके घर आ जाना ही हमारे परम कल्याणका कारण है। हम तो घरोंमें इतने उलझ रहे हैं और इन प्रपञ्चोंमें हमारा चित्त इतना दीन हो रहा है कि हम आपके आश्रमतक जा भी नहीं सकते। हमारे कल्याणके सिवा आपके आगमनका और कोई हेतु नहीं है ॥ ४ ॥ प्रभो! जो बात साधारणतः इन्द्रियोंकी पहुँचके बाहर है अथवा भूत और भविष्यके गर्भमें निहित है, वह भी ज्यौतिष-शास्त्रके द्वारा प्रत्यक्ष जान ली जाती है। आपने उसी ज्यौतिष-शास्त्रकी रचना की है ॥ ५ ॥ आप ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये मेरे इन दोनों बालकोंके नामकरणादि संस्कार आप ही कर दीजिये; क्योंकि ब्राह्मण जन्मसे ही मनुष्यमात्रका गुरु है' ॥ ६ ॥

गर्गाचार्यजीने कहा—नन्दजी! मैं सब जगह यदुवंशियोंके आचार्यके रूपमें प्रसिद्ध हूँ। यदि मैं तुम्हारे पुत्रके संस्कार करूँगा, तो लोग समझेंगे कि यह तो देवकीका पुत्र है ॥ ७ ॥ कंसकी बुद्धि बुरी है, वह पाप ही सोचा करती है। वसुदेवजीके साथ तुम्हारी बड़ी घनिष्ठ मित्रता है। जबसे देवकीकी कन्यासे उसने यह बात सुनी है कि उसको मारनेवाला और कहीं पैदा हो गया है, तबसे वह यही सोचा करता है कि देवकीके आठवें गर्भसे कन्याका जन्म नहीं होना चाहिये। यदि मैं तुम्हारे पुत्रका संस्कार कर दूँ और वह इस बालकको वसुदेवजीका लड़का समझकर मार डाले, तो हमसे बड़ा अन्याय हो जायगा ॥ ८-९ ॥

नन्दबाबाने कहा—आचार्यजी! आप चुपचाप इस एकान्त गोशालामें केवल स्वस्तिवाचन करके इस बालकका द्विजातिसमुचित नामकरण-संस्कारमात्र कर दीजिये। औरोंकी कौन कहे, मेरे सगे-सम्बन्धी भी इस बातको न जानने पावें ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—गर्गाचार्यजी तो संस्कार करना चाहते ही थे। जब नन्दबाबाने उनसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब उन्होंने एकान्तमें छिपकर गुप्तरूपसे दोनों बालकोंका नामकरण-संस्कार कर दिया ॥ ११ ॥

---

१. अभ्यर्चाधो० । २. नैःश्रे० । ३. महान् ।

गर्ग उवाच

अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन् सुहृदो गुणैः ।
आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद् बलं विदुः ।
यदूनामपृथग्भावात् सङ्कर्षणमुशन्त्युत ॥ १२

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १३

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ।
वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ १४

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।
गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १५

एष वः श्रेय आधास्यद् गोपगोकुलनन्दनः ।
अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १६

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ।
अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥ १७

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ १८

तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥ १९

इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ।
नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥ २०

कालेन व्रजताल्पेन[1] गोकुले रामकेशवौ ।
जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः ॥ २१

गर्गाचार्यजीने कहा—'यह रोहिणीका पुत्र है। इसलिये इसका नाम होगा रौहिणेय। यह अपने सगे-सम्बन्धी और मित्रोंको अपने गुणोंसे अत्यन्त आनन्दित करेगा। इसलिये इसका दूसरा नाम होगा 'राम'। इसके बलकी कोई सीमा नहीं है, अतः इसका एक नाम 'बल' भी है। यह यादवोंमें और तुमलोगोंमें कोई भेदभाव नहीं रखेगा और लोगोंमें फूट पड़नेपर मेल करावेगा, इसलिये इसका एक नाम 'सङ्कर्षण' भी है॥ १२॥ और यह जो साँवला-साँवला है, यह प्रत्येक युगमें शरीर ग्रहण करता है। पिछले युगोंमें इसने क्रमशः श्वेत, रक्त और पीत—ये तीन विभिन्न रंग स्वीकार किये थे। अबकी यह कृष्णवर्ण हुआ है। इसलिये इसका नाम 'कृष्ण' होगा॥ १३॥ नन्दजी! यह तुम्हारा पुत्र पहले कभी वसुदेवजीके घर भी पैदा हुआ था, इसलिये इस रहस्यको जाननेवाले लोग इसे 'श्रीमान् वासुदेव' भी कहते हैं॥ १४॥ तुम्हारे पुत्रके और भी बहुत-से नाम हैं तथा रूप भी अनेक हैं। इसके जितने गुण हैं और जितने कर्म, उन सबके अनुसार अलग-अलग नाम पड़ जाते हैं। मैं तो उन नामोंको जानता हूँ, परन्तु संसारके साधारण लोग नहीं जानते॥ १५॥ यह तुमलोगोंका परम कल्याण करेगा। समस्त गोप और गौओंको यह बहुत ही आनन्दित करेगा। इसकी सहायतासे तुमलोग बड़ी-बड़ी विपत्तियोंको बड़ी सुगमतासे पार कर लोगे॥ १६॥ व्रजराज! पहले युगकी बात है। एक बार पृथ्वीमें कोई राजा नहीं रह गया था। डाकुओंने चारों ओर लूट-खसोट मचा रखी थी। तब तुम्हारे इसी पुत्रने सज्जन पुरुषोंकी रक्षा की और इससे बल पाकर उन लोगोंने लुटेरोंपर विजय प्राप्त की॥ १७॥ जो मनुष्य तुम्हारे इस साँवले-सलोने शिशुसे प्रेम करते हैं। वे बड़े भाग्यवान् हैं। जैसे विष्णुभगवान्‌के करकमलोंकी छत्रछायामें रहनेवाले देवताओंको असुर नहीं जीत सकते, वैसे ही इससे प्रेम करनेवालोंको भीतर या बाहर किसी भी प्रकारके शत्रु नहीं जीत सकते॥ १८॥ नन्दजी! चाहे जिस दृष्टिसे देखें—गुणमें, सम्पत्ति और सौन्दर्यमें, कीर्ति और प्रभावमें तुम्हारा यह बालक साक्षात् भगवान् नारायणके समान है। तुम बड़ी सावधानी और तत्परतासे इसकी रक्षा करो'॥ १९॥ इस प्रकार नन्दबाबाको भलीभाँति समझाकर, आदेश देकर गर्गाचार्यजी अपने आश्रमको लौट गये। उनकी बात सुनकर नन्दबाबाको बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने ऐसा समझा कि मेरी सब आशा-लालसाएँ पूरी हो गयीं, मैं अब कृतकृत्य हूँ॥ २०॥

परीक्षित्! कुछ ही दिनोंमें राम और श्याम घुटनों और हाथोंके बल बकैयाँ चल-चलकर गोकुलमें खेलने लगे॥ २१॥

---

१. ता तात गो०।

तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ
घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ।
तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं
मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥ २२

दोनों भाई अपने नन्हें-नन्हें पाँवोंको गोकुलकी कीचड़में घसीटते हुए चलते। उस समय उनके पाँव और कमरके घुँघरू रुनझुन बजने लगते। वह शब्द बड़ा भला मालूम पड़ता। वे दोनों स्वयं वह ध्वनि सुनकर खिल उठते। कभी-कभी वे रास्ते चलते किसी अज्ञात व्यक्तिके पीछे हो लेते। फिर जब देखते कि यह तो कोई दूसरा है, तब झक-से रह जाते और डरकर अपनी माताओं—रोहिणीजी और यशोदाजीके पास लौट आते ॥ २२ ॥ माताएँ यह सब देख-देखकर स्नेहसे भर जातीं। उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगती थी। जब उनके दोनों नन्हें-नन्हें-से शिशु अपने शरीरमें कीचड़का अङ्गराग लगाकर लौटते, तब उनकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती थी। माताएँ उन्हें आते ही दोनों हाथोंसे गोदमें लेकर हृदयसे लगा लेतीं और स्तनपान कराने लगतीं, जब वे दूध पीने लगते और बीच-बीचमें मुसकरा-मुसकराकर अपनी माताओंकी ओर देखने लगते, तब वे उनकी मन्द-मन्द मुसकान, छोटी-छोटी दँतुलियाँ और भोला-भाला मुँह देखकर आनन्दके समुद्रमें डूबने-उतराने लगतीं ॥ २३ ॥ जब राम और श्याम दोनों कुछ और बड़े हुए, तब व्रजमें घरके बाहर ऐसी-ऐसी बाललीलाएँ करने लगे, जिन्हें गोपियाँ देखती ही रह जातीं। जब वे किसी बैठे हुए बछड़ेकी पूँछ पकड़ लेते और बछड़े डरकर इधर-उधर भागते, तब वे दोनों और भी जोरसे पूँछ पकड़ लेते और बछड़े उन्हें घसीटते हुए दौड़ने लगते। गोपियाँ अपने घरका काम-धंधा छोड़कर यही सब देखती रहतीं और हँसते-हँसते लोटपोट होकर परम आनन्दमें मग्न हो जातीं ॥ २४ ॥ कन्हैया और बलदाऊ दोनों ही बड़े चञ्चल और बड़े खिलाड़ी थे। वे कहीं हरिन, गाय आदि सींगवाले पशुओंके पास दौड़ जाते, तो कहीं धधकती हुई आगसे खेलनेके लिये कूद पड़ते। कभी दाँतसे काटनेवाले कुत्तोंके पास पहुँच जाते, तो कभी आँख बचाकर तलवार उठा लेते। कभी कूएँ या गड्ढेके पास जलमें गिरते-गिरते बचते, कभी मोर आदि पक्षियोंके निकट चले जाते और कभी काँटोंकी ओर बढ़ जाते थे। माताएँ उन्हें बहुत बरजतीं, परन्तु उनकी एक न चलती। ऐसी स्थितिमें वे घरका काम-धंधा भी नहीं सँभाल पातीं। उनका चित्त बच्चोंको भयकी वस्तुओंसे बचानेकी चिन्तासे अत्यन्त चञ्चल रहता था ॥ २५ ॥

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ
पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगुह्य[1] दोर्भ्याम् ।
दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य
मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥ २३

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीला-
वन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ।
वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ
प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥ २४

श्रृङ्ग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्यः
क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ।
गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ
शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥ २५

राजर्षे! कुछ ही दिनोंमें यशोदा और रोहिणीके लाड़ले लाल घुटनोंका सहारा लिये बिना अनायास ही खड़े होकर गोकुलमें चलने-फिरने लगे * ॥ २६ ॥

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले[2] ।
अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥ २६

---

१. गृह्य। २. गोव्रजे।

* जब श्यामसुन्दर घुटनोंका सहारा लिये बिना चलने लगे, तब वे अपने घरमें अनेकों प्रकारकी कौतुकमयी लीला करने लगे—

शून्ये चोरयतः स्वयं निजगृहे हैयङ्गवीनं मणिस्तम्भे स्वप्रतिबिम्बमीक्षितवतस्तेनैव सार्द्धं भिया ।
भ्रातर्मा वद मातरं मम समो भागस्तवाप्नीहितो भुङ्क्ष्वेत्यालपतो हरेः कलवचो मात्रा रहः श्रूयते ॥

एक दिन साँवरे-सलोने व्रजराजकुमार श्रीकन्हैयालालजी अपने सूने घरमें स्वयं ही माखन चुरा रहे थे। उनकी दृष्टि मणिके खम्भेमें पड़े

ततस्तु भगवान् कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ।
सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन् मुदम् ॥ २७

ये व्रजवासियोंके कन्हैया स्वयं भगवान् हैं, परम सुन्दर और परम मधुर ! अब वे और बलराम अपनी ही उम्रके ग्वालबालोंको अपने साथ लेकर खेलनेके लिये व्रजमें निकल पड़ते और व्रजकी भाग्यवती गोपियोंको निहाल करते हुए तरह-तरहके खेल खेलते ॥ २७ ॥

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ।
शृण्वत्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥ २८

उनके बचपनकी चञ्चलताएँ बड़ी ही अनोखी होती थीं। गोपियोंको तो वे बड़ी ही सुन्दर और मधुर लगतीं । एक दिन सब-की-सब इकट्ठी होकर नन्दबाबाके घर आयीं और यशोदा माताको सुना-सुनाकर कन्हैयाके करतूत कहने लगीं ॥ २८ ॥

हुए अपने प्रतिबिम्बपर पड़ी। अब तो वे डर गये। अपने प्रतिबिम्बसे बोले—'अरे भैया ! मेरी मैयासे कहियो मत। तेरा भाग भी मेरे बराबर ही मुझे स्वीकार है; ले, खा। खा ले, भैया !' यशोदा माता अपने लालाकी तोतली बोली सुन रही थीं।

उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, वे घरमें भीतर घुस आयीं। माताको देखते ही श्रीकृष्णने अपने प्रतिबिम्बको दिखाकर बात बदल दी—

मातः क एष नवनीतमिदं त्वदीयं लोभेन चोरयितुमद्य गृहं प्रविष्टः ।
मद्वारणं न मनुते मयि रोषभाजि रोषं तनोति न हि मे नवनीतलोभः ॥

'मैया ! मैया ! यह कौन है ? लोभवश तुम्हारा माखन चुरानेके लिये आज घरमें घुस आया है। मैं मना करता हूँ तो मानता नहीं है और मैं क्रोध करता हूँ तो यह भी क्रोध करता है। मैया ! तुम कुछ और मत सोचना। मेरे मनमें माखनका तनिक भी लोभ नहीं है।'

अपने दुध-मुँहे शिशुकी प्रतिभा देखकर मैया वात्सल्य-स्नेहके आनन्दमें मग्न हो गयीं।

× × × × ×

एक दिन श्यामसुन्दर माताके बाहर जानेपर घरमें ही माखन-चोरी कर रहे थे। इतनेमें ही दैवयश यशोदाजी लौट आयीं और अपने लाड़ले लालको न देखकर पुकारने लगीं—

कृष्ण ! क्वासि करोषि किं पितरिति श्रुत्वैव मातुर्वचः साशङ्कं नवनीतचौर्यविरतो विश्रभ्य तामब्रवीत् ।
मातः कङ्कणपद्मरागमहसा पाणिर्ममातप्यते तेनायं नवनीतभाण्डविवरे विन्यस्य निर्वापितः ॥

'कन्हैया ! कन्हैया ! अरे ओ मेरे बाप ! कहाँ है, क्या कर रहा है ?' माताकी यह बात सुनते ही माखनचोर श्रीकृष्ण डर गये और माखन-चोरीसे अलग हो गये। फिर थोड़ी देर चुप रहकर यशोदाजीसे बोले—'मैया, री मैया ! यह जो तुमने मेरे कङ्कणमें पद्मराग जड़ा दिया है, इसकी लपटसे मेरा हाथ जल रहा था। इसीसे मैंने इसे माखनके मटकेमें डालकर बुझाया था।'

माता यह मधुर-मधुर कन्हैयाकी तोतली बोली सुनकर मुग्ध हो गयीं और 'आओ बेटा !' ऐसा कहकर लालाको गोदमें उठा लिया और प्यारसे चूमने लगीं।

× × × × ×

क्षुण्णाभ्यां करकुड्मलेन विगलद्बाष्पाम्बुदृग्भ्यां रुदन् हुं हुं हूमिति रुद्धकण्ठकुहरादस्पष्टवाग्विभ्रमः ।
मात्रासौ नवनीतचौर्यकुतुके प्राग्भर्त्सितः स्वाञ्चलेनामृज्यास्य मुखं तवैतदखिलं वत्सेति कण्ठे कृतः ॥

एक दिन माताने माखनचोरी करनेपर श्यामसुन्दरको धमकाया, डाँटा-फटकारा। बस, दोनों नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। कर-कमलसे आँखें मलने लगे। ऊँ-ऊँ-ऊँ करके रोने लगे। गला रुँध गया। मुँहसे बोला नहीं जाता था। बस, माता यशोदाका धैर्य टूट गया। अपने आँचलसे अपने लाला कन्हैयाका मुँह पोंछा और बड़े प्यारसे गले लगाकर बोलीं—'लाला ! यह सब तुम्हारा ही है, यह चोरी नहीं है।'

एक दिनकी बात है—पूर्णचन्द्रकी चाँदनीसे मणिमय आँगन धुल गया था। यशोदा मैयाके साथ गोपियोंकी गोष्ठी जुड़ रही थी। वहीं खेलते-खेलते कृष्णचन्द्रकी दृष्टि चन्द्रमापर पड़ी। उन्होंने पीछेसे आकर यशोदा मैयाका घूँघट उतार लिया। और अपने कोमल करोंसे उनकी चोटी खोलकर खींचने लगे और बार-बार पीठ थपथपाने लगे। 'मैं लूँगा, मैं लूँगा'—तोतली बोलीसे इतना ही कहते। जब मैयाकी समझमें बात नहीं आयी, तब उसने स्नेहार्द्र दृष्टिसे पास बैठी ग्वालिनोंकी ओर देखा। अब वे विनयसे, प्यारसे फुसलाकर श्रीकृष्णको अपने पास ले आयीं और बोलीं—'लालन ! तुम क्या चाहते हो, दूध !' श्रीकृष्ण-'ना'। 'क्या बढ़िया दही ?' 'ना'। 'क्या

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥ २९
हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै-
श्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं
काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥ ३०

'अरी यशोदा! यह तेरा कान्हा बड़ा नटखट हो गया है। गाय दुहनेका समय न होनेपर भी यह बछड़ोंको खोल देता है और हम डाँटती हैं, तो ठठा-ठठाकर हँसने लगता है। यह चोरीके बड़े-बड़े उपाय करके हमारे मीठे-मीठे दही-दूध चुरा-चुराकर खा जाता है। केवल अपने ही खाता तो भी एक बात थी, यह तो सारा दही-दूध वानरोंको बाँट देता है और जब वे भी पेट भर जानेपर नहीं खा पाते, तब यह हमारे माटोंको ही फोड़ डालता है। यदि घरमें कोई वस्तु इसे नहीं मिलती तो यह घर और घरवालोंपर बहुत खीझता है और हमारे बच्चोंको रुलाकर भाग जाता है ॥ २९ ॥ जब हम दही-दूधको छीकोंपर रख देती हैं और इसके छोटे-छोटे हाथ वहाँतक नहीं पहुँच पाते, तब यह बड़े- बड़े उपाय रचता है। कहीं दो-चार पीढ़ोंको एकके ऊपर एक रख देता है। कहीं ऊखलपर चढ़ जाता है तो कहीं ऊखलपर पीढ़ा रख देता है, (कभी-कभी तो अपने किसी साथीके कंधेपर ही चढ़ जाता है।) जब इतनेपर भी काम नहीं चलता, तब यह नीचेसे ही उन बर्तनोंमें छेद कर देता है। इसे इस बातकी पक्की पहचान रहती है कि किस छीकेपर किस बर्तनमें क्या रखा है। और ऐसे ढंगसे छेद करना जानता है कि किसीको पतातक न चले। जब हम अपनी वस्तुओंको बहुत अँधेरेमें छिपा देती हैं, तब नन्दरानी ! तुमने जो इसे बहुत-से मणिमय आभूषण पहना रखे हैं, उनके प्रकाशसे अपने-आप ही सब कुछ देख लेता है। इसके शरीरमें भी ऐसी ज्योति है कि जिससे इसे सब कुछ दीख जाता है। यह इतना चालाक है कि कब कौन कहाँ रहता है, इसका पता रखता है और जब हम सब घरके काम-धंधोंमें उलझी रहती हैं, तब यह अपना काम बना लेता है ॥ ३० ॥

खुरचन ?' 'ना'। 'मलाई ?' 'ना'। 'ताजा माखन ? 'ना' ग्वालिनोंने कहा-'बेटा ! रूठो मत, रोओ मत। जो माँगोगे सो देंगी।' श्रीकृष्णने धीरेसे कहा—'घरकी वस्तु नहीं चाहिये' और अँगुली उठाकर चन्द्रमाकी ओर संकेत कर दिया। गोपियाँ बोलीं—'ओ मेरे बाप ! यह कोई माखनका लौंदा थोड़े ही है ? हाय ! हाय ! हम यह कैसे देंगी ? यह तो प्यारा-प्यारा हंस आकाशके सरोवरमें तैर रहा है।' श्रीकृष्णने कहा—'मैं भी तो खेलनेके लिये इस हंसको ही माँग रहा हूँ, शीघ्रता करो। पार जानेके पूर्व ही मुझे ला दो।'

अब और भी मचल गये। धरतीपर पाँव पीट-पीटकर और हाथोंसे गला पकड़-पकड़ कर 'दो-दो' कहने लगे और पहलेसे भी अधिक रोने लगे। दूसरी गोपियोंने कहा—'बेटा ! राम-राम। इन्होंने तुमको बहला दिया है। यह राजहंस नहीं है, यह तो आकाशमें ही रहनेवाला चन्द्रमा है।' श्रीकृष्ण हठ कर बैठे—'मुझे तो यही दो; मेरे मनमें इसके साथ खेलनेकी बड़ी लालसा है। अभी दो, अभी दो।' जब बहुत रोने लगे, तब यशोदा माताने गोदमें उठा लिया और प्यार करके बोलीं—'मेरे प्राण ! न यह राजहंस है और न तो चन्द्रमा। है यह माखन ही, परन्तु तुमको देने योग्य नहीं है। देखो, इसमें वह काला-काला विष लगा हुआ है। इससे बढ़िया होनेपर भी इसे कोई नहीं खाता है।' श्रीकृष्णने कहा—'मैया ! मैया ! इसमें विष कैसे लग गया।' बात बदल गयी। मैयाने गोदमें लेकर मधुर-मधुर स्वरसे कथा सुनाना प्रारम्भ किया। मा-बेटेमें प्रश्नोत्तर होने लगे।

यशोदा—'लाला ! एक क्षीरसागर है।'

श्रीकृष्ण—'मैया ! वह कैसा है।'

यशोदा—'बेटा ! यह जो तुम दूध देख रहे हो, इसीका एक समुद्र है।'

एवं धाष्ट्र्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ

स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते ।

इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभि-

र्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥ ३१

ऐसा करके भी ढिठाईकी बातें करता है—उलटे हमें ही चोर बनाता और अपने घरका मालिक बन जाता है। इतना ही नहीं, यह हमारे लिपे-पुते स्वच्छ घरोंमें मूत्र आदि भी कर देता है। तनिक देखो तो इसकी ओर, वहाँ तो चोरीके अनेकों उपाय करके काम बनाता है और यहाँ मालूम हो रहा है मानो पत्थरकी मूर्ति खड़ी हो ! वाह रे भोले-भाले साधु !' इस प्रकार गोपियाँ कहती जातीं और श्रीकृष्णके भीत-चकित नेत्रोंसे युक्त मुखकमलको देखती जातीं। उनकी यह दशा देखकर नन्दरानी यशोदाजी उनके मनका भाव ताड़ लेतीं और उनके हृदयमें स्नेह और आनन्दकी बाढ़ आ जाती। वे इस प्रकार हँसने लगतीं कि अपने लाड़ले कन्हैयाको इस बातका उलाहना भी न दे पातीं, डाँटनेकी बाततक नहीं सोच पातीं * ॥ ३१ ॥

श्रीकृष्ण—'मैया ! कितनी गायोंने दूध दिया होगा जब समुद्र बना होगा।

यशोदा—'कन्हैया ! वह गायका दूध नहीं है।'

श्रीकृष्ण—'अरी मैया ! तू मुझे बहला रही है, भला बिना गायके दूध कैसे ?'

यशोदा—'वत्स ! जिसने गायोंमें दूध बनाया है, वह गायके बिना भी दूध बना सकता है।'

श्रीकृष्ण—'मैया ! वह कौन है?'

यशोदा—'वह भगवान् है; परन्तु अग (उनके पास कोई जा नहीं सकता। अथवा 'ग' कार रहित) है।'

श्रीकृष्ण—'अच्छा ठीक है, आगे कहो।'

यशोदा—'एक बार देवता और दैत्योंमें लड़ाई हुई। असुरोंको मोहित करनेके लिये भगवान्‌ने क्षीरसागरको मथा। मंदराचलकी रई बनी। वासुकि नागकी रस्सी। एक ओर देवता लगे, दूसरी ओर दानव।'

श्रीकृष्ण—'जैसे गोपियाँ दही मथती हैं, क्यों मैया ?'

यशोदा—'हाँ बेटा ! उसीसे कालकूट नामका विष पैदा हुआ।'

श्रीकृष्ण—'मैया ! विष तो साँपोंमें होता है, दूधमें कैसे निकला ?'

यशोदा—'बेटा ! जब शङ्कर भगवान्‌ने वही विष पी लिया, तब उसकी जो फुइयाँ धरतीपर गिर पड़ीं, उन्हें पीकर साँप विषधर हो गये। सो बेटा ! भगवान्‌की ही ऐसी कोई लीला है, जिससे दूधमेंसे विष निकला।'

श्रीकृष्ण—'अच्छा मैया ! यह तो ठीक है।'

यशोदा—'बेटा ! (चन्द्रमाकी ओर दिखाकर) यह मक्खन भी उसीसे निकला है। इसलिये थोड़ा-सा विष इसमें भी लग गया। देखो, देखो, इसीको लोग कलङ्क कहते हैं। सो मेरे प्राण ! तुम घरका ही मक्खन खाओ।'

कथा सुनते-सुनते श्यामसुन्दरकी आँखोंमें नींद आ गयी और मैयाने उन्हें पलङ्गपर सुला दिया।

* भगवान्‌की लीलापर विचार करते समय यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि भगवान्‌का लीलाधाम, भगवान्‌के लीलापात्र, भगवान्‌का लीलाशरीर और उनकी लीला प्राकृत नहीं होती। भगवान्‌में देह-देहीका भेद नहीं है। महाभारतमें आया है—

न भूतसंघसंस्थानो देवस्य परमात्मनः। यो वेत्ति भौतिकं देहं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
स सर्वस्माद् बहिष्कार्यः श्रौतस्मार्तविधानतः। मुखं तस्यावलोक्यापि सचैलः स्नानमाचरेत् ॥

'परमात्माका शरीर भूतसमुदायसे बना हुआ नहीं होता। जो मनुष्य श्रीकृष्ण परमात्माके शरीरको भौतिक जानता-मानता है, उसका समस्त श्रौत-स्मार्त कर्मोंसे बहिष्कार कर देना चाहिये अर्थात् उसका किसी भी शास्त्रीय कर्ममें अधिकार नहीं है। यहाँतक कि उसका मुँह देखनेपर भी सचैल (वस्त्रसहित) स्नान करना चाहिये।'

श्रीमद्भागवतमें ही ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा है—

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि ।

'आपने मुझपर कृपा करनेके लिये ही यह स्वेच्छामय सच्चिदानन्दस्वरूप प्रकट किया है, यह पाञ्चभौतिक कदापि नहीं है।'

इससे यह स्पष्ट है कि भगवान्‌का सभी कुछ अप्राकृत होता है। इसी प्रकार यह माखनचोरीकी लीला भी अप्राकृत—दिव्य ही है।

यदि भगवान्‌के नित्य परम धाममें अभिन्नरूपसे नित्य निवास करनेवाली नित्यसिद्धा गोपियोंकी दृष्टिसे न देखकर केवल साधनसिद्धा गोपियोंकी दृष्टिसे देखा जाय तो भी उनकी तपस्या इतनी कठोर थी, उनकी लालसा इतनी अनन्य थी, उनका प्रेम इतना व्यापक था और उनकी लगन इतनी सच्ची थी कि भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रेमरसमय भगवान् उनके इच्छानुसार उन्हें सुख पहुँचानेके लिये माखनचोरीकी लीला करके उनकी इच्छित पूजा ग्रहण करें, चीरहरण करके उनका रहा-सहा व्यवधानका परदा उठा दें और रासलीला करके उनको दिव्य सुख पहुँचायें तो कोई बड़ी बात नहीं है।

भगवान्‌की नित्यसिद्धा चिदानन्दमयी गोपियोंके अतिरिक्त बहुत-सी ऐसी गोपियाँ और थीं, जो अपनी महान् साधनाके फलस्वरूप भगवान्‌की मुक्तजन-वाञ्छित सेवा करनेके लिये गोपियोंके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं। उनमेंसे कुछ पूर्वजन्मकी देवकन्याएँ थीं, कुछ श्रुतियाँ थीं, कुछ तपस्वी ऋषि थे और कुछ अन्य भक्तजन। इनकी कथाएँ विभिन्न पुराणोंमें मिलती हैं। श्रुतिरूपा गोपियाँ, जो 'नेति-नेति'के द्वारा निरन्तर परमात्माका वर्णन करते रहनेपर भी उन्हें साक्षात्-रूपसे प्राप्त नहीं कर सकतीं, गोपियोंके साथ भगवान्‌के दिव्य रसमय विहारकी बात जानकर गोपियोंकी उपासना करती हैं और अन्तमें स्वयं गोपीरूपमें परिणत होकर भगवान् श्रीकृष्णको साक्षात् अपने प्रियतमरूपसे प्राप्त करती हैं। इनमें मुख्य श्रुतियोंके नाम हैं—उद्गीता, सुगीता, कलगीता, कलकण्ठिका और विपञ्ची आदि।

भगवान्‌के श्रीरामावतारमें उन्हें देखकर मुग्ध होनेवाले—अपने-आपको उनके स्वरूप-सौन्दर्यपर न्योछावर कर देनेवाले सिद्ध ऋषिगण, जिनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें गोपी होकर प्राप्त करनेका वर दिया था, व्रजमें गोपीरूपसे अवतीर्ण हुए थे। इसके अतिरिक्त मिथिलाकी गोपी, कोसलकी गोपी, अयोध्याकी गोपी— पुलिन्दगोपी, रमावैकुण्ठ, श्वेतद्वीप आदिकी गोपियाँ और जालन्धरी गोपी आदि गोपियोंके अनेकों यूथ थे, जिनको बड़ी तपस्या करके भगवान्‌से वरदान पाकर गोपीरूपमें अवतीर्ण होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पद्मपुराणके पातालखण्डमें बहुत-से ऐसे ऋषियोंका वर्णन है, जिन्होंने बड़ी कठिन तपस्या आदि करके अनेकों कल्पोंके बाद गोपीस्वरूपको प्राप्त किया था। उनमेंसे कुछके नाम निम्नलिखित हैं—

१. एक उग्रतपा नामके ऋषि थे। वे अग्निहोत्री और बड़े दृढ़व्रती थे। उनकी तपस्या अद्‌भुत थी। उन्होंने पञ्चदशाक्षर-मन्त्रका जाप और रासोन्मत्त नवकिशोर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका ध्यान किया था। सौ कल्पोंके बाद वे सुनन्द नामक गोपकी कन्या 'सुनन्दा' हुए।

२. एक सत्यतपा नामके मुनि थे। वे सूखे पत्तोंपर रहकर दशाक्षरमन्त्रका जाप और श्रीराधाजीके दोनों हाथ पकड़कर नाचते हुए श्रीकृष्णका ध्यान करते थे। दस कल्पके बाद वे सुभद्र नामक गोपकी कन्या 'सुभद्रा' हुए।

३. हरिधामा नामके एक ऋषि थे। वे निराहार रहकर 'क्लीं' कामबीजसे युक्त विंशाक्षरी मन्त्रका जाप करते थे और माधवीमण्डपमें कोमल-कोमल पत्तोंकी शय्यापर लेटे हुए युगल-सरकारका ध्यान करते थे। तीन कल्पके पश्चात् वे सारङ्ग नामक गोपके घर 'रङ्गवेणी' नामसे अवतीर्ण हुए।

४. जाबालि नामके एक ब्रह्मज्ञानी ऋषि थे, उन्होंने एक बार विशाल वनमें विचरते-विचरते एक जगह बहुत बड़ी बावली देखी। उस बावलीके पश्चिम तटपर बड़के नीचे एक तेजस्विनी युवती स्त्री कठोर तपस्या कर रही थी। वह बड़ी सुन्दर थी। चन्द्रमाकी शुभ्र किरणोंके समान उसकी चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी। उसका बायाँ हाथ अपनी कमरपर था और दाहिने हाथसे वह ज्ञानमुद्रा धारण किये हुए थी। जाबालिके बड़ी नम्रताके साथ पूछनेपर उस तापसीने बतलाया—

ब्रह्मविद्याहमतुला योगीन्द्रैर्या च मृग्यते। साहं हरिपदाम्भोजकाम्यया सुचिरं तपः॥
ब्रह्मानन्देन पूर्णाहं तेनानन्देन तृप्तधीः। चराम्यस्मिन् वने घोरे ध्यायन्ती पुरुषोत्तमम्॥
तथापि शून्यमात्मानं मन्ये कृष्णरतिं विना॥

'मैं वह ब्रह्मविद्या हूँ, जिसे बड़े-बड़े योगी सदा ढूँढ़ा करते हैं। मैं श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी प्राप्तिके लिये इस घोर वनमें उन पुरुषोत्तमका ध्यान करती हुई दीर्घकालसे तपस्या कर रही हूँ। मैं ब्रह्मानन्दसे परिपूर्ण हूँ और मेरी बुद्धि भी उसी आनन्दसे परितृप्त है। परन्तु श्रीकृष्णका प्रेम मुझे अभी प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये मैं अपनेको शून्य देखती हूँ।' ब्रह्मज्ञानी

जवालिने उसके चरणोंपर गिरकर दीक्षा ली और फिर व्रजवीथियोंमें विहरनेवाले भगवान्‌का ध्यान करते हुए वे एक पैरसे खड़े होकर बड़ी कठोर तपस्या करते रहे। नौ कल्पोंके बाद प्रचण्ड नामक गोपके घर वे 'चित्रगन्धा'के रूपमें प्रकट हुए।

५. कुशध्वज नामक ब्रह्मर्षिके पुत्र शुचिश्रवा और सुवर्ण देवतत्त्वज्ञ थे। उन्होंने शीर्षासन करके 'ह्रीं' हंस-मन्त्रका जाप करते हुए और सुन्दर कन्दर्प-तुल्य गोकुलवासी दस वर्षकी उम्रके भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए घोर तपस्या की। कल्पके बाद वे व्रजमें सुधीर नामक गोपके घर उत्पन्न हुए।

इसी प्रकार और भी बहुत-सी गोपियोंके पूर्वजन्मकी कथाएँ प्राप्त होती हैं, विस्तारभयसे उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया। भगवान्‌के लिये इतनी तपस्या करके इतनी लगनके साथ कल्पोंतक साधना करके जिन त्यागी भगवत्प्रेमियोंने गोपियोंका तन-मन प्राप्त किया था, उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये, उन्हें आनन्द-दान देनेके लिये यदि भगवान् उनकी मनचाही लीला करते हैं तो इसमें आश्चर्य और अनाचारकी कौन-सी बात है? रासलीलाके प्रसङ्गमें स्वयं भगवान्‌ने श्रीगोपियोंसे कहा है—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥

(१०।३२।२२)

'गोपियो! तुमने लोक और परलोकके सारे बन्धनोंको काटकर मुझसे निष्कपट प्रेम किया है; यदि मैं तुममेंसे प्रत्येकके लिये अलग-अलग अनन्त कालतक जीवन धारण करके तुम्हारे प्रेमका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और ऋणी ही रहूँगा। तुम मुझे अपने साधुस्वभावसे ऋणरहित मानकर और भी ऋणी बना दो। यही उत्तम है।' सर्वलोकमहेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं जिन महाभागा गोपियोंके ऋणी रहना चाहते हैं, उनकी इच्छा, इच्छा होनेसे पूर्व ही भगवान् पूर्ण कर दें—यह तो स्वाभाविक ही है।

भला विचारिये तो सही श्रीकृष्णगतप्राणा, श्रीकृष्णरसभावितमति गोपियोंके मनकी क्या स्थिति थी। गोपियोंका तन, मन, धन—सभी कुछ प्राणप्रियतम श्रीकृष्णका था। वे संसारमें जीती थीं श्रीकृष्णके लिये, घरमें रहती थीं श्रीकृष्णके लिये और घरके सारे काम करती थीं श्रीकृष्णके लिये। उनकी निर्मल और योगीन्द्रदुर्लभ पवित्र बुद्धिमें श्रीकृष्णके सिवा अपना कुछ था ही नहीं। श्रीकृष्णके लिये ही, श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये ही, श्रीकृष्णकी निज सामग्रीसे ही श्रीकृष्णको पूजकर—श्रीकृष्णको सुखी देखकर वे सुखी होती थीं। प्रातःकाल निद्रा टूटनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक वे जो कुछ भी करती थीं, सब श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये ही करती थीं। यहाँतक कि उनकी निद्रा भी श्रीकृष्णमें ही होती थी। स्वप्न और सुषुप्ति दोनोंमें ही वे श्रीकृष्णकी मधुर और शान्त लीला देखतीं और अनुभव करती थीं। रातको दही जमाते समय श्यामसुन्दरकी माधुरी छविका ध्यान करती हुई प्रेममयी प्रत्येक गोपी यह अभिलाषा करती थी कि मेरा दही सुन्दर जमे, श्रीकृष्णके लिये उसे बिलोकर मैं बढ़िया-सा और बहुत-सा माखन निकालूँ और उसे उतने ही ऊँचे छीकेपर रखूँ, जितनेपर श्रीकृष्णके हाथ आसानीसे पहुँच सकें। फिर मेरे प्राणधन श्रीकृष्ण अपने सखाओंको साथ लेकर हँसते और क्रीड़ा करते हुए घरमें पदार्पण करें, माखन लूटें और अपने सखाओं और बंदरोंको लुटायें, आनन्दमें मत्त होकर मेरे आँगनमें नाचें और मैं किसी कोनेमें छिपकर इस लीलाको अपनी आँखोंसे देखकर जीवनको सफल करूँ और फिर अचानक ही पकड़कर हृदयसे लगा लूँ। सूरदासजीने गाया है—

मैया री, मोहि माखन भावै। जो मेवा पकवान कहति तू, मोहि नहीं रुचि आवै॥
ब्रज-जुवती इक पाछैं ठाढ़ी, सुनत स्यामकी बात। मन-मन कहति कबहुँ अपनैं घर, देखौं माखन खात॥
बैठैं जाइ मथनियाँकें ढिग, मैं तब रहौं छपानी। सूरदास प्रभु अंतरजामी, ग्वालिनि-मन की जानी॥

एक दिन श्यामसुन्दर कह रहे थे, 'मैया! मुझे माखन भाता है; तू मेवा-पकवानके लिये कहती है, परन्तु मुझे तो वे रुचते ही नहीं।' वहीं पीछे एक गोपी खड़ी श्यामसुन्दरकी बात सुन रही थी। उसने मन-ही-मन कामना की—'मैं कब इन्हें अपने घर माखन खाते देखूँगी; ये मथानीके पास जाकर बैठेंगे, तब मैं छिप रहूँगी?' प्रभु तो अन्तर्यामी हैं, गोपीके मनकी जान गये और उसके घर पहुँचे तथा उसके घरका माखन खाकर उसे सुख दिया—'गये स्याम तिहिं ग्वालिनि कै घर।'

उसे इतना आनन्द हुआ कि वह फूली न समायी। सूरदासजी गाते हैं—

फूली फिरति ग्वालि मनमें री। पूछति सखी परस्पर बातैं पायो परयौ कछू कहुँ तैं री?॥
पुलकित रोम-रोम, गदगद मुख बानी कहत न आवै। ऐसौ कहा आहि सो सखि री, हम कौं क्यों न सुनावै॥
तन न्यारा, जिय एक हमारौ, हम तुम एकै रूप। सूरदास कहै ग्वालि सखिनि सौं, देख्यौ रूप अनूप॥

वह खुशीसे छककर फूली-फूली फिरने लगी। आनन्द उसके हृदयमें समा नहीं रहा था। सहेलियोंने पूछा—'अरी, तुझे कहीं कुछ पड़ा धन मिल गया क्या ?' वह तो यह सुनकर और भी प्रेमविह्वल हो गयी। उसका रोम-रोम खिल उठा, वह गद्गद हो गयी, मुँहसे बोली नहीं निकली। सखियोंने कहा—'सखि ! ऐसी क्या बात है, हमें सुनाती क्यों नहीं ? हमारे तो शरीर ही दो हैं, हमारा जी तो एक ही है—हम-तुम दोनों एक ही रूप हैं। भला, हमसे छिपानेकी कौन-सी बात है ?' तब उसके मुँहसे इतना ही निकला—'मैंने आज अनूप रूप देखा है।' बस, फिर वाणी रुक गयी और प्रेमके आँसू बहने लगे ! सभी गोपियोंकी यही दशा थी।

ब्रज घर-घर प्रगटी यह बात। दधि माखन चोरी करि लै हरि, ग्वाल सखा सँग खात॥
ब्रज-बनिता यह सुनि मन हरषित, सदन हमारैं आवैं। माखन खात अचानक पावैं, भुज भरि उरहिं छुपावैं॥
मनहीं मन अभिलाष करति सब हृदय धरति यह ध्यान। सूरदास प्रभु कौं घरमें लै, दैहों माखन खान॥
चली ब्रज घर-घरनि यह बात। नंद-सुत, सँग सखा लीन्हें, चोरि माखन खात॥
कोउ कहति, मेरे भवन भीतर, अबहिं पैठे धाइ। कोउ कहति मोहिं देखि द्वारैं, उतहिं गए पराइ॥
कोउ कहति, किहिं भाँति हरिकौं, देखौं अपने धाम। हेरि माखन देउँ आछौ, खाइ जितनौ स्याम॥
कोउ कहति, मैं देखि पाऊँ, भरि धरौं अँकवार। कोउ कहति, मैं बाँधि राखौं, को सकै निरवार॥
सूर प्रभुके मिलन कारन, करति बिबिध बिचार। जोरि कर बिधि कौं मनावति पुरुष नंदकुमार॥

सती गोपियाँ जाग-जागकर प्रातःकाल होनेकी बाट देखतीं। उनका मन श्रीकृष्णमें लगा रहता। प्रातःकाल जल्दी-जल्दी दही मथकर, माखन निकालकर छीकेपर रखतीं; कहीं प्राणधन आकर लौट न जायँ, इसलिये सब काम छोड़कर वे सबसे पहले यही काम करतीं और श्यामसुन्दरकी प्रतीक्षामें व्याकुल होती हुई मन-ही-मन सोचतीं—'हा ! आज प्राणप्रियतम क्यों नहीं आये ? इतनी देर क्यों हो गयी ? क्या आज इस दासीका घर पवित्र न करेंगे ? क्या आज मेरे समर्पण किये हुए इस तुच्छ माखनका भोग लगाकर स्वयं सुखी होकर मुझे सुख न देंगे ? कहीं यशोदा मैयाने तो उन्हें नहीं रोक लिया ? उनके घर तो नौ लाख गौएँ हैं। माखनकी क्या कमी है। मेरे घर तो वे कृपा करके ही आते हैं !' इन्हीं विचारोंमें आँसू बहाती हुई गोपी क्षण-क्षणमें दौड़कर दरवाजेपर जाती, लाज छोड़कर रास्तेकी ओर देखती, सखियोंसे पूछती। एक-एक निमेष उसके लिये युगके समान हो जाता ! ऐसी भाग्यवती गोपियोंकी मनःकामना भगवान् उनके घर पधारकर पूर्ण करते।

सूरदासजीने गाया है—

प्रथम करी हरि माखन-चोरी। ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज खोरी॥
मनमें यहै बिचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाउँ। गोकुल जनम लियौ सुख-कारन, सबकैं माखन खाउँ॥
बालरूप जसुमति मोहि जानैं, गोपिनि मिलि सुख भोग। सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं ये मेरे ब्रज लोग॥

अपने निजजन व्रजवासियोंको सुखी करनेके लिये ही तो भगवान् गोकुलमें पधारे थे। माखन तो नन्दबाबाके घरपर कम न था। लाख-लाख गौएँ थीं। वे चाहे जितना खाते-लुटाते। परन्तु वे तो केवल नन्दबाबाके ही नहीं; सभी व्रजवासियोंके अपने थे, सभीको सुख देना चाहते थे। गोपियोंकी लालसा पूरी करनेके लिये ही वे उनके घर जाते और चुरा-चुराकर माखन खाते। यह वास्तवमें चोरी नहीं, यह तो गोपियोंकी पूजा-पद्धतिका भगवान्के द्वारा स्वीकार था। भक्तवत्सल भगवान् भक्तकी पूजा स्वीकार कैसे न करें ?

भगवान्की इस दिव्यलीला—माखनचोरीका रहस्य न जाननेके कारण ही कुछ लोग इसे आदर्शके विपरीत बतलाते हैं। उन्हें पहले समझना चाहिये चोरी क्या वस्तु है, वह किसकी होती है और कौन करता है। चोरी उसे कहते हैं जब किसी दूसरेकी कोई चीज, उसकी इच्छाके बिना, उसके अनजानमें और आगे भी वह जान न पाये—ऐसी इच्छा रखकर ले ली जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंके घरसे माखन लेते थे उनकी इच्छासे, गोपियोंके अनजानमें नहीं—उनकी जानमें, उनके देखते-देखते और आगे जनानेकी कोई बात ही नहीं—उनके सामने ही दौड़ते हुए निकल जाते थे। दूसरी बात महत्त्वकी यह है कि संसारमें या संसारके बाहर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो श्रीभगवान्की नहीं है और वे उसकी चोरी करते हैं। गोपियोंका तो सर्वस्व श्रीभगवान्का था ही, सारा जगत् ही उनका है। वे भला, किसकी चोरी कर सकते हैं ? हाँ, चोर तो वास्तवमें वे लोग हैं, जो भगवान्की वस्तुको अपनी मानकर ममता-आसक्तिमें फँसे रहते हैं और दण्डके पात्र बनते हैं। उपर्युक्त सभी दृष्टियोंसे यही सिद्ध होता है कि माखनचोरी चोरी न थी, भगवान्की दिव्य लीला थी। असलमें गोपियोंने प्रेमकी अधिकतासे ही भगवान्का प्रेमका

एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः ।
कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥ ३२

सा[1] गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी ।
यशोदा भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥ ३३

कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः ।
वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥ ३४

श्रीकृष्ण उवाच

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ।
यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥ ३५

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान् हरिः ।
व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६

एक दिन बलराम आदि ग्वालबाल श्रीकृष्णके साथ खेल रहे थे। उन लोगोंने मा यशोदाके पास आकर कहा—'मा ! कन्हैयाने मिट्टी खायी है'* ॥ ३२ ॥ हितैषिणी यशोदाने श्रीकृष्णका हाथ पकड़ लिया †। उस समय श्रीकृष्णकी आँखें डरके मारे नाच रही थीं ‡। यशोदा मैयाने डाँटकर कहा— ॥ ३३ ॥ 'क्यों रे नटखट ! तू बहुत ढीठ हो गया है। तूने अकेलेमें छिपकर मिट्टी क्यों खायी ? देख तो तेरे दलके तेरे सखा क्या कह रहे हैं ! तेरे बड़े भैया बलदाऊ भी तो उन्हींकी ओरसे गवाही दे रहे हैं' ॥ ३४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'मा ! मैंने मिट्टी नहीं खायी। ये सब झूठ बक रहे हैं। यदि तुम इन्हींकी बात सच मानती हो तो मेरा मुँह तुम्हारे सामने ही है, तुम अपनी आँखोंसे देख लो ॥ ३५ ॥ यशोदाजीने कहा—'अच्छी बात। यदि ऐसा है, तो मुँह खोल।' माताके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपना मुँह खोल दिया ॐ। परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णका ऐश्वर्य अनन्त है। वे केवल लीलाके लिये ही मनुष्यके बालक बने हुए हैं ॥ ३६ ॥

नाम 'चोर' रख दिया था, क्योंकि वे उनके चित्तचोर तो थे ही।

जो लोग भगवान् श्रीकृष्णको भगवान् नहीं मानते, यद्यपि उन्हें श्रीमद्भागवतमें वर्णित भगवान्की लीलापर विचार करनेका कोई अधिकार नहीं है, परन्तु उनकी दृष्टिसे भी इस प्रसङ्गमें कोई आपत्तिजनक बात नहीं है। क्योंकि श्रीकृष्ण उस समय लगभग दो-तीन वर्षके बच्चे थे और गोपियाँ अत्यधिक स्नेहके कारण उनके ऐसे-ऐसे मधुर खेल देखना चाहती थीं। आशा है, इससे शंका करनेवालोंको कुछ सन्तोष होगा।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

१. गृहीत्वाथ करे पुत्रमुपा॰ ।

* मृद्-भक्षणके हेतु—

१—भगवान् श्रीकृष्णने विचार किया कि मुझमें शुद्ध सत्त्वगुण ही रहता है और आगे बहुत-से रजोगुणी कर्म करने हैं। उसके लिये थोड़ा-सा 'रज' संग्रह कर लें।

२—संस्कृत-साहित्यमें पृथ्वीका एक नाम 'क्षमा' भी है। श्रीकृष्णने देखा कि ग्वालबाल खुलकर मेरे साथ खेलते हैं; कभी-कभी अपमान भी कर बैठते हैं। उनके साथ क्षमांश धारण करके ही क्रीडा करनी चाहिये, जिससे कोई विघ्न न पड़े।

३—संस्कृत-भाषामें पृथ्वीको 'रसा' भी कहते हैं। श्रीकृष्णने सोचा सब रस तो ले ही चुका हूँ, अब रसा-रसका आस्वादन करूँ।

४—इस अवतारमें पृथ्वीका हित करना है। इसलिये उसका कुछ अंश अपने मुख्य (मुखमें स्थित) द्विजों (दाँतों) को पहले दान कर लेना चाहिये।

५—ब्राह्मण शुद्ध सात्त्विक कर्ममें लग रहे हैं, अब उन्हें असुरोंका संहार करनेके लिये कुछ राजस कर्म भी करने चाहिये। यही सूचित करनेके लिये मानो उन्होंने अपने मुखमें स्थित द्विजोंको (दाँतोंको) रजसे युक्त किया।

६—पहले विष भक्षण किया था, मिट्टी खाकर उसकी दवा की।

७—पहले गोपियोंका मक्खन खाया था, उलाहना देनेपर मिट्टी खा ली, जिससे मुँह साफ हो जाय।

८—भगवान् श्रीकृष्णके उदरमें रहनेवाले कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके जीव व्रज-रज—गोपियोंके चरणोंकी रज— प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हो रहे थे। उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये भगवान्ने मिट्टी खायी।

९—भगवान् स्वयं ही अपने भक्तोंकी चरण-रज मुखके द्वारा अपने हृदयमें धारण करते हैं।

१० —छोटे बालक स्वभावसे ही मिट्टी खा लिया करते हैं।

† यशोदाजी जानती थीं कि इस हाथने मिट्टी खानेमें सहायता की है। चोरका सहायक भी चोर ही है। इसलिये उन्होंने हाथ ही पकड़ा।

‡ भगवान्के नेत्रमें सूर्य और चन्द्रमाका निवास है। वे कर्मके साक्षी हैं। उन्होंने सोचा कि पता नहीं श्रीकृष्ण मिट्टी खाना स्वीकार करेंगे कि मुकर जायँगे। अब हमारा कर्तव्य क्या है। इसी भावको सूचित करते हुए दोनों नेत्र चकराने लगे।

ॐ १-मा ! मिट्टी खानेके सम्बन्धमें ये मुझ अकेलेका ही नाम ले रहे हैं। मैंने खायी, तो सबने खायी, देख लो मेरे मुखमें सम्पूर्ण विश्व !

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिशः ।
साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥ ३७

ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान् वियदेव च ।
वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥ ३८

एतद् विचित्रं सह जीवकाल-
स्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम् ।
सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये
व्रजं सहात्मानमवाप शङ्काम् ॥ ३९

किं स्वप्न एतदुत देवमाया
किं वा मदीयो बत बुद्धिमोहः ।
अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य
यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥ ४०

अथो यथावन्न वितर्कगोचरं
चेतोमनःकर्मवचोभिरञ्जसा ।
यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते
सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम् ॥ ४१

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो
व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ।
गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे
यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥ ४२

इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ।
वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥ ४३

सद्योनष्टस्मृतिर्गोपी साऽऽरोप्यारोहमात्मजम् ।
प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयाऽऽसीद् यथा पुरा ॥ ४४

यशोदाजीने देखा कि उनके मुँहमें चर-अचर सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है । आकाश (वह शून्य जिसमें किसीकी गति नहीं) दिशाएँ, पहाड़, द्वीप, और समुद्रोंके सहित सारी पृथ्वी, बहनेवाली वायु, वैद्युत, अग्नि, चन्द्रमा और तारोंके साथ सम्पूर्ण ज्योतिर्मण्डल, जल, तेज, पवन, वियत् (प्राणियोंके चलने-फिरनेका आकाश), वैकारिक अहङ्कारके कार्य देवता, मन-इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्राएँ और तीनों गुण श्रीकृष्णके मुखमें दीख पड़े ॥ ३७-३८ ॥ परीक्षित् ! जीव, काल, स्वभाव, कर्म, उनकी वासना और शरीर आदिके द्वारा विभिन्न रूपोंमें दीखनेवाला यह सारा विचित्र संसार, सम्पूर्ण व्रज और अपने-आपको भी यशोदाजीने श्रीकृष्णके नन्हेसे खुले हुए मुखमें देखा । वे बड़ी शङ्कामें पड़ गयीं ॥ ३९ ॥ वे सोचने लगीं कि 'यह कोई स्वप्न है या भगवान्‌की माया ? कहीं मेरी बुद्धिमें ही तो कोई भ्रम नहीं हो गया है ? सम्भव है, मेरे इस बालकमें ही कोई जन्मजात योगसिद्धि हो' ॥ ४० ॥ 'जो चित्त, मन, कर्म और वाणीके द्वारा ठीक-ठीक तथा सुगमतासे अनुमानके विषय नहीं होते, यह सारा विश्व जिनके आश्रित है, जो इसके प्रेरक हैं और जिनकी सत्तासे ही इसकी प्रतीति होती है, जिनका स्वरूप सर्वथा अचिन्त्य है—उन प्रभुको मैं प्रणाम करती हूँ ॥ ४१ ॥ यह मैं हूँ और ये मेरे पति तथा यह मेरा लड़का है, साथ ही मैं व्रजराजकी समस्त सम्पत्तियोंकी स्वामिनी धर्मपत्नी हूँ; ये गोपियाँ, गोप और गोधन मेरे अधीन है—जिनकी मायासे मुझे इस प्रकारकी कुमति घेरे हुए है, वे भगवान् ही मेरे एकमात्र आश्रय हैं—मैं उन्हींकी शरणमें हूँ' ॥ ४२ ॥ जब इस प्रकार यशोदा माता श्रीकृष्णका तत्त्व समझ गयीं, तब सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक प्रभुने अपनी पुत्र-स्नेहमयी वैष्णवी योगमायाका उनके हृदयमें संचार कर दिया ॥ ४३ ॥ यशोदाजीको तुरंत वह घटना भूल गयी । उन्होंने अपने दुलारे लालको गोदमें उठा लिया । जैसे पहले उनके हृदयमें प्रेमका समुद्र उमड़ता रहता था, वैसे ही फिर उमड़ने लगा ॥ ४४ ॥

२-श्रीकृष्णने विचार किया कि उस दिन मेरे मुखमें विश्व देखकर माताने अपने नेत्र बंद कर लिये थे । आज भी जब मैं अपना मुँह खोलूँगा, तब यह अपने नेत्र बंद कर लेगी । इस विचारसे मुख खोल दिया ।

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ।
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम् ॥ ४५

सारे वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग और भक्तजन जिनके माहात्म्यका गीत गाते-गाते अघाते नहीं—उन्हीं भगवान्‌को यशोदाजी अपना पुत्र मानती थीं ॥ ४५ ॥

राजोवाच

नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् ।
यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ४६

पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ।
गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! नन्दबाबाने ऐसा कौन-सा बहुत बड़ा मङ्गलमय साधन किया था ? और परम-भाग्यवती यशोदाजीने भी ऐसी कौन-सी तपस्या की थी, जिसके कारण स्वयं भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे उनका स्तनपान किया ॥ ४६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी वे बाल-लीलाएँ, जो वे अपने ऐश्वर्य और महत्ता आदिको छिपाकर ग्वालबालोंमें करते हैं, इतनी पवित्र हैं कि उनका श्रवण-कीर्तन करनेवाले लोगोंके भी सारे पाप-ताप शान्त हो जाते हैं । त्रिकालदर्शी ज्ञानी पुरुष आज भी उनका गान करते रहते हैं । वे ही लीलाएँ उनके जन्मदाता माता-पिता देवकी-वसुदेवजीको तो देखनेतकको न मिलीं और नन्द-यशोदा उनका अपार सुख लूट रहे हैं । इसका क्या कारण है ? ॥ ४७ ॥

श्रीशुक उवाच

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ।
करिष्यमाण आदेशान् ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥ ४८

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! नन्दबाबा पूर्वजन्ममें एक श्रेष्ठ वसु थे । उनका नाम था द्रोण और उनकी पत्नीका नाम था धरा । उन्होंने ब्रह्माजीके आदेशोंका पालन करनेकी इच्छासे उनसे कहा—॥ ४८ ॥

जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ।
भक्तिः स्यात् परमा लोके ययाञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥ ४९

'भगवन् ! जब हम पृथ्वीपर जन्म लें, तब जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें हमारी अनन्य प्रेममयी भक्ति हो—जिस भक्तिके द्वारा संसारमें लोग अनायास ही दुर्गतियोंको पार कर जाते हैं' ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजीने कहा—'ऐसा ही होगा ।' वे ही परमयशस्वी भगवन्मय द्रोण व्रजमें पैदा हुए और उनका नाम हुआ नन्द । और वे ही धरा इस जन्ममें यशोदाके नामसे उनकी पत्नी हुई ॥ ५० ॥ परीक्षित् ! अब इस जन्ममें जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ानेवाले भगवान् उनके पुत्र हुए और समस्त गोप-गोपियोंकी अपेक्षा इन पति-पत्नी नन्द और यशोदाजीका उनके प्रति अत्यन्त प्रेम हुआ ॥ ५१ ॥ ब्रह्माजीकी बात सत्य करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ व्रजमें रहकर समस्त व्रजवासियोंको अपनी बाल-लीलासे आनन्दित करने लगे ॥ ५२ ॥

अस्त्वित्युक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणो महायशाः ।
जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत् ॥ ५०

ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते[1] जनार्दने ।
दम्पत्योर्नितरामासीद् गोपगोपीषु भारत ॥ ५१

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ।
सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२

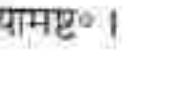

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे[2]
विश्वरूपदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

१. पुत्रभूते । २. बालक्रीडायामष्ट० ।